भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित नवीन पाठ्यक्रमानुसार

अभिनव शालाक्य विज्ञान

(अक्षि, शिर, कर्ण, नासिका एवं कण्ठ रोग)

संशोधित परिवर्तित संस्करण

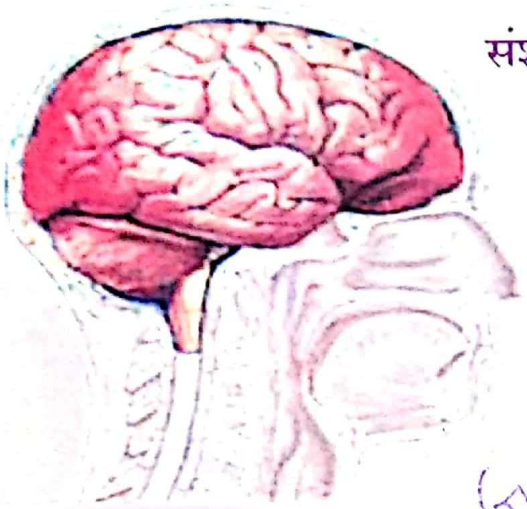

GL KUMAWAT
(SSSB Renwal)

डॉ. अपर्णा शर्मा

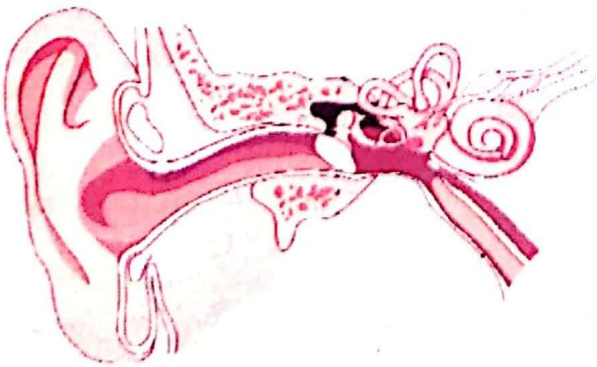

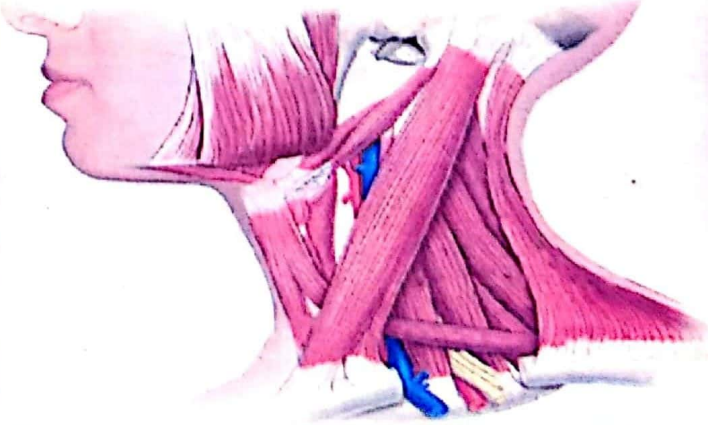

GL KUMAWAT

Scanned with CamScanner

SCAN BY-GL kumawat
9660968952

अनुक्रमणिका

'खण्ड – क'

अक्षि रोग

अध्याय – 1

शालाक्य तन्त्र– परिचय एवम् इतिहास 1–2

1.1	शालाक्य तंत्र की निरुक्ति	1
1.2	शालाक्य तंत्र का परिचय	1
1.3	शालाक्य तंत्र का इतिहास	1
1.4	वेदों में शालाक्य तंत्र	2
1.5	शालाक्य तंत्र के प्रमुख आचार्य	2

अध्याय – 2

नेत्र शारीर 3–19

2.1	नेत्र रचना शारीर	3
2.2	नेत्र क्रिया शारीर	9
2.3	नेत्र परीक्षा (Examination of Eye)	12

अध्याय – 3

नेत्ररोग निदान 20–27

3.1	नेत्र रोग हेतु	20
3.2	नेत्र रोग पूर्वरूप	21
3.3.	नेत्र रोगों की सामान्य चिकित्सा	21
3.4	नेत्र रोग संख्या	21
3.5	नेत्र रोगों का वर्गीकरण	22

अध्याय–4

संधिगत रोग 28–43

4.1	संधिगत रोग संख्या	28
4.1.1	पूयालस	28
4.1.2	उपनाह	33
4.1.3.–4.1.6	नेत्र स्राव	33
4.1.7	पर्वणिका	36
4.1.8	अलजी	38
4.1.9	कृमिग्रन्थि	38

अध्याय – 5

वर्त्मगत रोग 44–68

5.1	वर्त्मगत रोग संख्या	44
5.1.1	उत्सङ्गिनी	46
5.1.2	कुम्भिकपिड़का	48
5.1.3	पोथकी	48
5.1.4	वर्त्मशर्करा	51
5.1.5	अर्शोवर्त्म	52
5.1.6	शुष्कार्श	52
5.1.7	अंजननामिका	52
5.1.8	बहलवर्त्म	54

GL KUMAWAT 9660968952

Scanned with CamScanner

5.1.9	वर्त्मबन्ध	54
5.1.10	क्लिष्टवर्त्म	54
5.1.11	वर्त्मकर्दम	55
5.1.12	श्यामवर्त्म	55
5.1.13	क्लिन्नवर्त्म	55
5.1.14	अक्लिन्नवर्त्म	56
5.1.15	वातहतवर्त्म	57
5.1.16	निमेष	58
5.1.17	वर्त्मार्बुद	59
5.1.18	वर्त्मार्श	59
5.1.19	लगण	60
5.1.20	विसवर्त्म	60
5.1.21	पक्ष्मकोप	61
5.1.22	Ectropion	63
5.1.23	Blepharospasm	64
5.1.24	वाग्भटोक्त अतिरिक्त वर्त्मगत रोग	64
5.1.25	Tumours of lid	68

अध्याय – 6

शुक्लगत रोग **69–83**

6.1	शुक्लगत रोग संख्या	69
6.2	अर्म	69
6.2.1	प्रस्तारि अर्म	69
6.2.2	शुक्लार्म	70
6.2.3	लोहितार्म	70
6.2.4	अधिमांसजार्म	70
6.2.5	स्नायु अर्म	70
6.2.6	शुक्तिका	73
6.2.7	अर्जुन	76
6.2.8	पिष्टक	77
6.2.9	सिराजाल	78
6.2.10	सिराजपिडका	81
6.2.11	बलासग्रथित	81

अध्याय–7

कृष्णगत रोग **84–96**

7.1	कृष्णगत रोग संख्या	84
7.1.1	सव्रण शुक्र	84
7.1.2	अव्रण शुक्र	90
7.1.3	अक्षिपाकात्यय	91
7.1.4	अजकाजात	93
7.2	सिराशुक्र	94
7.3	Corneal transplant	95
7.4	Eye Bank	95
7.5	Panophthalmitis	96

अध्याय–8

सर्वगत रोग **97–123**

8.1	सर्वगत रोग संख्या	97
8.1.1	वातज अभिष्यन्द	98
8.1.2	पैत्तिक अभिष्यन्द	98
8.1.3	कफज अभिष्यन्द	98
8.1.4	रक्तज अभिष्यन्द	99
8.1.5	वातज अधिमन्थ	106
8.1.6	पित्तज अधिमन्थ	107
8.1.7	कफज अधिमन्थ	107
8.1.8	रक्तज अधिमन्थ	107
8.1.9	सशोफ अक्षिपाक	113
8.1.10	अशोफ अक्षिपाक	114
8.1.11	हताधिमन्थ	116

GL KUMAWAT 9660968952

Scanned with CamScanner

8.1.12	वातपर्याय	118
8.1.13	शुष्काक्षिपाक	119
8.1.14	अन्यतोवात	121
8.1.15	अम्लाध्युषित	121
8.1.16	सिरोत्पात	122
8.1.17	सिराहर्ष	122

अध्याय– 9

दृष्टिगत रोग 124–156

9.1	दृष्टिगत रोग संख्या	124
9.1.1	वातज तिमिर	127
9.1.2	पित्तज तिमिर	127
9.1.3	कफज तिमिर	128
9.1.4	रक्तज तिमिर	128
9.1.5	सन्निपातज तिमिर	129
9.1.6	संसर्गज तिमिर (परिम्लायि)	129
9.1.7–9.1.12	षडविध काच लक्षण	129
9.1.13–9.1.18	षडविधलिङ्गनाश लक्षण	130
9.1.19	पित्तविदग्ध दृष्टि	138
9.1.20	श्लेष्मविदग्ध दृष्टि	139
9.1.21	धूमदर्शी	141
9.1.22	ह्रस्वजाड्य	142
9.1.23	नकुलान्ध्य	142
9.1.24	गम्भीरिका	143
9.1.25	सनिमित्त लिङ्गनाश	144
9.1.26	अनिमित्त लिङ्गनाश	144
9.1.27	दोषान्ध	145
9.1.28	अम्लविदग्ध दृष्टि	145
9.1.29	अभिघातज लिङ्गनाश	145
9.1.30	उष्ण विदग्ध दृष्टि	145
9.1.31	Squint	146
9.1.32	Ambylopia	147
9.2	रेटिना के रोगों का ज्ञान	148

अध्याय– 10

अंधता निवारण प्रभृति 157–171

10.1	परावर्तन जन्य विकार	157
10.2	Care of the eyes	161
10.3	Common surgical / parasurgical procedures in ophthalmology	163
10.4	राष्ट्रीय अन्धत्व निवारण कार्यक्रम	164
10.5	नयनाभिघात	167

अध्याय–11

क्रिया कल्प 172–185

11.1	तर्पण	172
11.2	पुटपाक	174
11.3	सेक	176
11.4	आश्च्योतन	177
11.5	अंजन	179

अध्याय–12

शालाक्य चिकित्सा में पंचकर्म 186–187

अध्याय– 13

शालाक्य में उपक्रम 188–189

अध्याय– 14

उपसर्गज नेत्र रोग 190–191

नेत्र चिकित्सा एवं परीक्षा में उपयोगी यंत्र 192–194

Scanned with CamScanner

अध्याय-1

शालाक्य तंत्र परिचय एवम् इतिहास

1.1 शालाक्य तंत्र की निरुक्ति

सुश्रुत टीकाकार डल्हण ने शालाक्य की निरुक्ति दी है।

शलाकया यत्कर्म क्रियते तच्छालाक्यम, शलाकाप्रधानं कर्म शालाक्यम्, तत्प्रधान तन्त्रमपि शालाक्यम्। (डल्हण)

शलाका द्वारा कर्म किये जाने के कारण इसे शालाक्य कहते हैं। शलाका प्रधान कर्म को शलाक्य कहते हैं, इसका प्रमुख तंत्र भी शालाक्य कहलाता है।

दृष्टि विशारदाः शालाकिनः। (डल्हण)

नेत्र विद्या के चिकित्सकों को शलाकिन कहते हैं।

1.2 शालाक्य तंत्र का परिचय

आदिकाल से ही आयुर्वेद विशेषज्ञ परक चिकित्सा का पालन करता आया है। इसी कारण आयुर्वेद को आठ विशिष्ट योग्यताओं में विभाजित किया गया। इन आठ अंगों में शालाक्य तंत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। सुश्रुत संहिता में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। वाग्भट ने इसका "उर्ध्वाङग" के नाम से उल्लेख किया है। सुश्रुत ने 76 नेत्र रोग, 31 नासा रोगा, 28 कर्ण रोग, 11 शिरोरोग तथा 65 मुखरोगों का वर्णन किया है। नेत्र, कर्ण, नासा तथा शिरोरोगों का वर्णन उत्तर तंत्र में किया गया है। प्रथम 18 अध्याय में नेत्र रोगों तथा उनकी चिकित्सा का वर्णन है। 19 वें अध्याय में नयनाभिघात का वर्णन है। उत्तर तंत्र के प्रथम 26 अध्यायों में शालाक्य तंत्र (नेत्र, कर्ण, नासा, शिर रोगों) का वर्णन किया गया है।

मुख रोगों का वर्णन निदान स्थान के 16 वें अध्याय में किया गया है तथा मुख रोगों की चिकित्सा का वर्णन चिकित्सा स्थान के 22 वें अध्याय में मिलता है। वाग्भट ने उत्तर तंत्र में अध्याय 8 से 24 तक शालाक्य तंत्र का वर्णन किया है।

शालाक्य तंत्र की परिभाषा

"शालाक्यं नामोर्ध्वजत्रुगतानां श्रवणनयन वदनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम्॥"

(सु.सू. 1/10)

जत्रु के ऊपर स्थित कान, आंख, मुख, नाक आदि स्थानों में उत्पन्न व्याधियों की चिकित्सा जिस विशेष विज्ञान में होती है उसे 'शालाक्य तंत्र' कहते हैं।

Scanned with CamScanner

1.3 शालाक्य तंत्र का इतिहास

शालाक्य का विस्तृत विवरण सुश्रुत में मिलता है। शालाक्य तंत्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। श्रीमद्भागवत् 9 स्कन्ध, अ. 13 की कथा में निमि को इक्ष्वाकु का पुत्र कहा गया है। सूर्यवंशी अवध नरेश महाराज इक्ष्वाकु के कनिष्ठ पुत्र राजकुमार निमि अपने बड़े भाई ककुस्थ के राज्यभिषेक के समय अपने पिता का विशेष झुकाव अपने बड़े भाई की ओर देखकर विरक्त हो उठे तथा अवध को छोड़कर तिरहुत प्रदेश के महर्षि गौतम के आश्रम में पहुँच गए। उस समय तक तिरहुत प्रान्त लंकापति रावण द्वारा जीता जा चुका था। रावण ने ऋषियों के यज्ञादि पावन कर्मों में व्यवधान उत्पन्न कर रखा था। इस समय निमि को देख मुनिगण खुश हो गए। महर्षि गौतम ने निमि को दीक्षित कर लिया और तिरहुत के मुखिया महामुनि यमदग्नि ने उन्हें तिरहुत का प्रथम राजा घोषित कर दिया।

सभी राक्षस डर गए और मुनिगण निश्चिन्त होकर तपस्या में लग गए। एक समय इक्ष्वाकु पुत्र महाराज निमि ने अपने राज्य में महायज्ञ का आयोजन किया। निमि ने वशिष्ठ जी को विशेष निमंत्रण दिया किन्तु वह इन्द्र द्वारा पहले ही आमंत्रित होने के कारण समय नहीं दे पाए तथा प्रतीक्षा करने को कहा। निमि ने कुछ काल बाद यज्ञारम्भ कर दिया। यह देखकर वशिष्ठ जी ने निमि को नष्ट होने का शाप दे दिया। यज्ञ में उपस्थित देवताओं ने पुनः जीवित कर दिया परन्तु निमि ने देह धारण से इन्कार कर दिया, तो देवताओं ने नेत्रों की पलकों पर रहने का आदेश दिया। इसी कारण निमेष शब्द भी निमिपरक् माना गया है क्योंकि पलकों के खोलने व बन्द करने को निमेष कहते हैं।

रामायण में तुलसीदास जी ने कहा है **'भरी विलोचन चारू अचन्चल। मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल।'** जानकी जी जब राम को देख रहे थे तो लज्जावश पलक निवासी निमि वहां से कुछ देर के लिए हट गए।

महर्षियों ने निमि की देह को मथा, तब उनके शरीर से एक बालक उत्पन्न हुआ, जो जनक कहलाया, विदेह से उत्पन्न होने के कारण वैदेह और मन्थन करके उत्पन्न होने से मिथिल कहा गया जिसने मिथिलापुरी बनाई।

एक अन्य पौराणिक कथा शालाक्य के इतिहास के बारे में मिलती है जिसमें कि बताया है कि विदेह के राजा ने महायज्ञ आरम्भ किया। उनको यज्ञ करते देखकर भगवान अंशुमाली उनके ऊपर कुपित हो गए तथा उनकी दृष्टि शक्ति को नष्ट कर दिया, इसके बाद राजा जनक ने कठोर तपस्या की। भगवान सूर्य ने प्रसन्न होकर उन्हें नेत्र रोग विज्ञान प्रदान किया।

1.4 वेदों में शालाक्य तंत्र

सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के आदि स्रोत चतुर्वेद ही आयुर्वेद व शालाक्य तंत्र के भी उद्गम हैं। वेदों में यत्र तत्र शालाक्य परक विषयों का वर्णन उपलब्ध है। ऋग्वेद में आश्विनिद्वौ द्वारा रुजस्वक का अक्षि प्रत्यारोपण (Eye transplant) करना, कण्व को दृष्टि प्रदान करना, दधीचि के कटे सिर को जोड़ना आदि उद्धरण प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद में अर्म व मुखपाक रोगों का वर्णन मिलता है। सूर्य साधक मंत्रों से नेत्रशक्ति वर्धन का उल्लेख नेत्रोपनिषद् में आया है। अग्निपुराण में नासागत रक्तस्राव चिकित्सा हेतु दूर्वा स्वरस नस्य का वर्णन आया है।

नस्य द्वारा जीर्णशिरोरोग का उपचार बौद्धकालीन चिकित्सक जीवक द्वारा वर्णित है। यह वर्णन महावाग में उपलब्ध है।

1.5 प्रमुख आचार्य

निमि- शालाक्य तंत्र पर प्रथम विशेष ग्रंथ का लेखन आचार्य निमि द्वारा किया गया। यह संहिता निमि तंत्र वा विदेह तंत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इतिहासकार निमि का काल चरक सुश्रुत से पूर्व का मानते हैं क्योंकि कतिपय स्थानों पर निमि के उद्धरणों की प्राप्ति सुश्रुत संहिता में होती है। इसी प्रकार चरक संहिता में भी शारीरस्थान व सूत्रस्थान में राजा विदेह का संदर्भ प्राप्त होता है।

निमि के अतिरिक्त प्रमुख आचार्य कराल, भद्रक, शौनक, चक्षुष्येण, सात्यकि, भोज, कांकायण इत्यादि हैं।

अध्याय-2

नेत्र शारीर

2.1 नेत्र रचना शारीर

सिरा - अष्टौ नेत्रयोः - (सु. शा. 7/7)
नेत्रों में आठ शिरायें होती है।

संधि - द्वौ वर्त्मण्डलजौ नेत्रश्रयौ। (सु. शा. 5/30)
नेत्राश्रित वर्त्ममण्डल में दो संधिया होती है।

पेशी - द्वे नेत्रयोः। (सु. शा. 5/48)
आँखों में दो पेशियाँ होती है।

धमनी - द्वे चाश्रुवाहिन्यौ। (सु. शा. 9/5)
दो धमनियां अश्रुओं को वहन करती है।

मर्म - (1) अपांग मर्म

भ्रु पुच्छान्तयोरयोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ, तत्राभ्यं दृष्टि उपधातो वा। (सु. शा. 6/28)
दो अपांग मर्म भ्रूपुच्छों के सिरों के नीचे और आँखों के बाह्य भाग पर रहते हैं। उनके विद्ध होने से अंधता हो जाती है; यह सिरा मर्म है।

(2) आवर्त मर्म

भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ नाम, तत्रप्याभ्यं दृष्टयुपघातो वा। (सु. शा. 6/28)
दो आवर्त मर्म भौहों के ऊपर निम्न भागों पर रहते हैं तथा उन पर आघात होने से अंधता हो जाती है। यह संधि मर्म है।

(3) स्थपनी मर्म

भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी, तत्रोत्क्षेपवत्। (सु. शा. 6/28)
भ्रकुटियों के मध्य में स्थपनी मर्म होता है, इस पर आघात होने से उत्क्षेपवत लक्षण होते हैं अर्थात् विशल्यघ्न मर्म होने के कारण शल्य निर्हरण प्राणघातक होता है।

(4) शृङ्गाटक मर्म

घ्राण- श्रोता अक्षि- जिह्वा-संतर्पणीनां सिराणां मध्ये सिरा सन्निपातः शृङ्गाटकानि, तानि चत्वारि मर्माणि तत्रापि सद्यो मरणम्। (सु. शा. 6/28)
चार शृंगाटक मर्म घ्राणेन्द्रिय, कर्ण, नेत्र व जिह्वा का संतर्पण करने वाली शिराओं के मध्य में स्थित होते हैं। यह शिरा मर्म हैं व सद्यमारक हैं।

Scanned with CamScanner

विद्याद् द्वयङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदर सम्मितम्। द्वयङ्गुलं सर्वत सार्द्धं भिषङ्नयनबुद्बुदम्॥
सुवृतं गोस्तनाकारं सर्वभूतगुणोद्भवम्। पलं भुवोऽग्नितो रक्तं वातात् कृष्णं सितं जलात्॥
आकाशादाश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे॥ (सु. उ. त. 1/10-11)

नयनबुदबुद् को अपने अंगुष्ठ के उदर (मध्य भाग) के प्रमाणानुसार दो अंगुल बाहुल्य वाला जानें। नेत्र को आयाम और विस्तार ढाई अंगुल है। नेत्रगोलक सुवृत (गोलाकार) तथा इसका आकार गौ के स्तन की तरह है तथा पंचमहाभूतों से इसकी उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी से मांसल भाग की, अग्नि से रक्त भाग की, वात से कृष्ण भाग, जल तत्व से नेत्र का शुक्लभाग तथा आकाश महाभूत से अश्रुमार्ग की उत्पत्ति होती है।

सुश्रुत टीकाकार डल्हण ने बाहुल्य से अन्तः प्रवेश प्रमाण लिया है तथा अन्तः प्रवेश प्रमाण को दो अंगुल तथा आयाम और विस्तार को ढाई अंगुल माना है। अन्तः प्रवेश से Anteroposterior Diameter का बोध होता है।

सर्वत से Circumference ले सकते है जो कि 3½ अंगुल है।

विस्तार से Horizontal Diametre ले सकते हैं।

आयाम से Vertical diameter ले सकते हैं।

नेत्र शारीर-----द्वयङ्गुलं सार्धमिति

इस पदानुसार डल्हण ने अक्षिगोलक का बाहुल्य (Anteroposterior) 2 अंगुल, आयाम (Vertical) 2½ अंगुल, सर्वत (Circumference) 3½ अंगुल व विस्तार (Horizontal) माप 2½ अंगुल माना है। आधुनिक (Anatomy) के मापों से यह प्रमाण भिन्न नहीं हैं, केवल सर्वत में अधिक अंतर दिखता है। आधुनिक Anatomy Circumference को 75mm के लगभग मानती है जो कि Anteroposterior, vertical, Horizontal से लगभग 3 गुणा है। आयुर्वेदीय शालाक्य तंत्र सर्वत को 3½ अंगुल ही मानता है।

अक्षिमध्यं चतुरङ्गुलम (च. वि. 8/117)

दोनों नेत्रों के बीच का स्थान 4 अंगुल होता है।

मण्डलानि च सन्धींश्च पटलानि च लोचने। यथाक्रमं विजानीयात् पञ्च षट् च षडेव च॥

(सु.उ.त. 1/14)

नेत्र में मण्डल, सन्धियां और पटल यथाक्रम से 5, 6 और 6 होते हैं।

नेत्र मण्डल– 5

पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु। अनुपूर्वन्तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्या यथोत्तरम्॥

(सु.उ.त. 1/15)

पक्ष्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण और दृष्टि मण्डल नेत्र में होते हैं। ये मण्डल यथापूर्व भीतर की ओर अवस्थित ते हैं अर्थात् सबसे बाहर पक्ष्ममण्डल, इसके बाद भीतर की ओर वर्त्ममण्डल इसके आगे श्वेतमण्डल, फिर ष्णमण्डल तथा सबसे भीतर दृष्टिमण्डल है।

मण्डल से Circles ले सकते हैं।

1. **पक्ष्मण्डल – Eye-lashes**
2. **वर्त्म मण्डल – Eye-lids**
3. **श्वेत मण्डल – Conjunctival sac**
4. **कृष्ण मण्डल – Cornea**
5. **दृष्टि मण्डल – Pupil को कह सकते हैं।**

नेत्र संधि–6

पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः। शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपरः॥
ततः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गः स्मृतः॥ (सु. उ. त. 1/16)

बाहर से भीतर की ओर सन्धियां 6 होती हैं–पक्ष्मवर्त्मगत सन्धि, वर्त्मशुक्लगत सन्धि, शुक्लकृष्णगत सन्धि, कृष्णदृष्टिगत सन्धि, कनीनकगत सन्धि और अपाङ्गगत सन्धि।

सन्धि से Junctions लिया जा सकता है।

1.पक्ष्मवर्त्मगत सन्धि – Lid Margin
2.वर्त्मशुक्लगत सन्धि – Fornix
3.शुक्लकृष्णगत सन्धि – Limbus
4.कृष्णदृष्टिगत सन्धि – Pupillary Margin
5.कनीनक सन्धि – Inner Canthus
6.अपाङ्ग सन्धि – Outer Canthus को कह सकते हैं।

नेत्रायामत्रिभागन्तु कृष्णमण्डलमुच्यते। कृष्णात् सप्तममिच्छन्ति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः॥

(सु.उ.त. 1/13)

नेत्र के आयाम का तृतीयांश कृष्णमण्डल होता है तथा कृष्णमण्डल का सातवां भाग दृष्टि मंडल होती है ऐसा नेत्र के विद्वानों का कथन है। आचार्य डल्हण ने कनीनकसंधि को नासासमीपस्थित कहा है तथा अपाङ्ग संधि को भ्रूपुच्छान्त बताया है।

नेत्र पटल

द्वे वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्य्यन्यानि चाक्षिणि। जायते तिमिरं येषु व्याधिः परमदारुणः॥
तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम्। मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितन्त्वस्थि चापरम्॥
पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते॥ (सु. उ. त. 1/17-18)

दो पटल वर्त्मगत तथा चार पटल अक्षिगोलक में होते हैं। इन्हीं चार पटलों में दुश्चिकित्स्य तिमिर रोग होता है। प्रथम पटल तेजोजलाश्रित होता है। दूसरा पटल मांसाश्रित है। तृतीय पटल मेदोऽाश्रित तथा चतुर्थ पटल अस्थि के आश्रित होता है। इन चारों पटलों की स्थूलता दृष्टि के पंचम भाग के बराबर है।

पटल	धातु
प्रथम	तेजो जलाश्रित
द्वितीय	मांसाश्रित
तृतीय	मदोऽऽश्रित
चतुर्थ	अस्थ्याश्रित

बाह्य पटल तेज और जल के आश्रित है।

डल्हण मतानुसार प्रथम पटल रक्त से बना है।

आचार्य वाग्भट मतानुसार नेत्र के कृष्ण मण्डल के उत्पत्ति रक्तवह स्रोतस से होती है एवम् श्वेत मण्डल की उत्पत्ति कफवह स्रोतस् से होती है। शरीरगत रक्त तेज का प्रतिनिधि करता है जबकि कफ जल का बोध कराता है।

Scanned with CamScanner

यह तथ्य कृष्ण मण्डल (Cornea) एवम् श्वेत मण्डल (Sclera) की ओर इंगित करता है।

प्रथम पटल से Sclera और Cornea को ले सकते हैं। सुश्रुत ने बताया है कि जब दोष प्रथम पटल में व्यवस्थित होते हैं, तो रोगी सभी पदार्थों को अव्यक्त देखता है।

नेत्र के आकार प्रमाण में त्रुटि से भी रोगी अस्पष्ट देखता है जिससे की परावर्तनजन्य विकार जैसे Myopia, Astigmatism होते हैं।

Refractive errors may be produced by change in the axis and curvature of the cornea.

द्वितीय पटल मांस के आश्रित है। सुश्रुत मतानुसार एक पटल के बाद दूसरा पटल आता है अर्थात् पहले पटल के भीतर द्वितीय पटल स्थित होगा अर्थात् द्वितीय पटल Cornea, Sclera के भीतर होगा जो कि Uveal tissue है।

मांस में बन्धन गुण होता है जोकि Uveal tissue में होता है। मांस शरीर की पुष्टि करता है। नेत्र की त्रुटि Uveal tissue करता है। मांस में संकुचन और विस्फारण का गुण होता है। Uveal tissue have properties of constriction and dilatation.

द्वितीय पटल में दोष स्थित होने पर दृष्टि दुर्बल हो जाती है।

i.e. Dimness of vision.

There are accommodation anomalies. Accommodation is brought about by ciliary body and physical component of the iris.

Pathology in 2nd Patala leads to scotoma or blind area. In modern, scotoma can be due to inflammation in the posterior part of uveal tract.

Symptoms of invasion of doshas in second patala are:

- Diplopia
- Micropsia, Metamorphopsia
- Visual field defect

मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं। (सु.उ. 1/18)

द्वितीय पटल के भीतर तृतीय पटल है जो मेद धातु के आश्रित है।

The part of eye inner to uveal tract is Cortical part of lens is having Meda like properties i.e. viscous, lipoproteinaceous in nature and whitish in colour. Clinical features of third Patala anomaly are similar to opacity of cortical part of lens.

तृतीय पटल में दोष स्थित होने पर निम्न लक्षण पाए जाते हैं:

1. दृष्टि मण्डल का रंजन होना।
2. दृष्टि का क्रमशः मन्द होना।
3. बड़ी वस्तुओं का दिखाई न देना।
4. एक वस्तु के दो, तीन या अनेक रूप दिखते हैं।
5. दोष स्थिति अनुसार दृष्टि क्षेत्र में विकृति।

'यथा दोषश्च रज्येत' (सु.उ.त. 7/12)

i.e. Change in the colour of the lens can be due to opacity in cortical part of lens. The visual symptoms due to cataract depend on the site of lens opacity and degree of opacification of lens. Patients complains of polyopia i.e. doubling or trebling of objects.

All the above features indicate that third patala is the cortical part of the lens.

पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम्।। (सु.उ.त. 1/18)

चतुर्थ पटल तृतीय के अन्दर स्थित होता है जो अस्थि धातु के आश्रित है।

It is constituted by Asthi i.e. hard tissue which is supportive in nature. Inner to cortical part of lens, hard supportive structure is nuclear part of the lens. Moreever clinical features of fourth patala points toward nuclear part of lens. Complete loss of vision occurs if doshas are situated in the fourth patala; however, patient can view bright object if the condition is not serious. Thus, the fourth patala is nucleus of the lens.

Anatomy of the eye

The eye, organ of sight is situated in quadrilateral bony cavity known as orbit. The bony orbits are quadrangular pyramids situated between anterior cranial fossa above and the maxillary sinuses below. Each orbit is about 40 mm in height, width and depth and is formed by seven bones:

(i) Frontal (ii) Maxilla (iii) Zygomatic
(iv) Sphenoid (v) Palatine (vi) Ethmoid
(vii) Lacrimal

It has four walls [medial, lateral, superior and inferior], base and an apex. Base of the orbit is the anterior open end of orbit. The orbital apex is the posterior end of the orbit which transmits optic nerve and ophthalmic artery.

Each eye ball is suspended by extraocular muscles. The central point on the maximal convexities of the anterior and posterior curvatures of the eyeball is called the anterior and posterior pole. The equator of the eye ball lies at the mid plane between the two poles.

Dimensions of an adult eyeball

Anteroposterior diameter	24 mm
Horizontal diameter	23.5 mm
Vertical diameter	23 mm
Circumference	75 mm
Volume	6.5 ml
Weight	7 gm

Coats of the eyeball

The eyeball is formed of following tunics

1. Outer fibrous coat
2. Middle vascular coat
3. Inner nervous coat

Fibrous coat: It is outer dense wall and consists of anterior one-sixth transparent cornea and posterior five sixth opaque sclera. Junction of cornea and sclera is called limbus.

Vascular part (Uveal tissue): It supplies nutrition to the various structures of the eyeball. It consists of three part which from anterior to posterior are : iris, ciliary body and choroid.

Iris is coloured circular diaphragm with an aperture in the centre the pupil. Pupil divides the anterior segment of eye into anterior and posterior chamber which contains aqueous humour secreted by the ciliary body.

Ciliary body: Ciliary body is triangular in shape with base forward. The iris is attached to the middle of the base. It consists of two main parts namely: **Pars plicata and Pars plana.**

It contains muscle called ciliary muscle which is responsible for accommodation. On the inner surface of the ciliary body, there are about 60 to 70 radially placed projections known as ciliary processes which secrete aqueous humour into the posterior chamber of the eye-ball.

Scanned with CamScanner

3. Choroid: It is dark brown, highly vascular layer situated between sclera and retina. It extends from the ora serrata upto the aperture of optic nerve in the sclera. The function of choroid is to supply nourishment to the outer layers of the retina which lies on it inner surface.

Nervous coat (Retina): It is concerned with visual functions.

Retina is composed of ten layers of nerve cells.

1. Layer of pigment epithelium
2. Layer of rods and cones
3. External limiting membrane
4. Outer nuclear layer
5. Outer plexiform layer
6. Inner nuclear layer
7. Inner plexiform layer
8. Layer of ganglion cells
9. Nerve fibre layer
10. Internal limiting membrane.

Retina lines about 3/4th of the eye-ball. Macula lutea is a yellow area of the retina situated in the posterior part with a central depression called Fovea centralis. It is most sensitive part of the retina.

Cavity of eyeball

The eyeball is divided into two compartments by crystalline lens : Anterior and posterior compartment. Anterior compartment is divided into two chambers anterior and posterior chamber by iris and contains aqueous humour. The posterior compartment contains transparent jelly like structure vitreous humour.

Anterior chamber: It is bounded anteriorly by the back of cornea and posteriorly by the iris and part of ciliary body. The normal depth is about 2.5 mm in the centre. It contains about 0.25 ml of the aqueous humour.

Posterior chamber: It is bounded anteriorly by the posterior surface of iris and part of ciliary body, posteriorly by the crystalline lens and laterally by the ciliary body and contains 0.06 ml of aqueous humour.

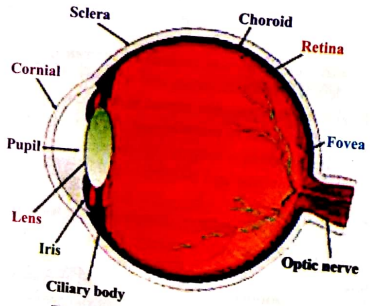

Fig. 1 - Section View of Human Eye

Anterior segment: It includes the lens and structures anterior to it.

Posterior segment: It includes the structures posterior to the lens.

Optic disc: It is circular, pink coloured disk of 1.5 mm in diameter. It has only nerve fibre layer so it does not excite any visual response. It is known as blind spot.

The optic nerve: It extends from the lamina cribrosa (sieve like membrane where the sclera becomes thin) upto the optic chiasma. The total length of optic nerve is 5 cm and it has four parts:

i. Intraocular - 1 mm
ii. Intra orbital - 25 mm
iii. Intra osseous - 4-10 mm
iv. Intra cranial - 10 mm

Interior of the Eyeball

Aqueous Humor: Both anterior and posterior chamber is filled with a watery fluid called the aqueous (aqua-water) humor that is continually filtered from the blood capillaries in the ciliary processes posterior to iris. It passes into anterior chamber through the pupil. From the anterior chamber, aqueous humor drains into scleral venous sinus (Canal of Schlemm) and then into the blood.

Lens: Lens is transparent, circular, biconvex structure lying immediately behind the pupil. It is suspended from the ciliary body by the suspensory ligament or Zonule of Zinns

Vitreous: It is transparent colourless inert gel which fills the posterior 4/5th of the eye-ball. It contains a few hyalocytes and wandering leucocytes. It consists of 99% water, some salts and mucoproteins.

Arterial supply

- Ophthalmic artery; branch of internal carotid artery.
- Central retinal artery.

Venous Drainage

➢ Ciliary veins. ➢ Anterior ciliary veins. ➢ Central retinal vein.

Nerve supply

Sensory nerve supply

By ophthalmic division of the trigeminal nerve.

Motor Nerve Supply

➢ Oculomotor Nerve. ➢ Trochlear Nerve. ➢ Abducens Nerve.
➢ Facial Nerve.

2.2 नेत्र क्रिया शारीर

आत्मेन्द्रिय मनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते। व्यक्ता तदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरुच्यते।

(च. सू. 11-20)

प्रत्यक्ष ज्ञानोप्लब्धि में इंद्रियार्थ, इंद्रिय, मन व आत्मा में संबंध स्थापित होना आवश्यक है।

दृष्टिस्थं पित्तं रूपालोचनात् अन्तः तारकयोः स्थिततदायत्तरूपग्रहण शक्तित्वात् आलोचकमुच्यते।

(अ. ह. सू. 12/16)

Scanned with CamScanner

अक्षि में स्थित पित्त जिसका व्यापार रूपालोचन (Image analysis) का है व जो तारक (Pupil) में रहता है, रूप ग्रहण शक्ति के कारण आलोचक पित्त कहलाता है।

आलोचक पित्त के दो प्रकार निम्न है-

स द्विविधः चक्षुर्वैशेषिको बुद्धिवैशेषिकः चेति। (भेल शारीर 4-4)

(1) चक्षु वैशेषिक - (Organic vision)

(2) बुद्धि वैशेषिक - (Outlook towards life & situations).

आत्मा, मन, इंद्रिय व अर्थ के संयोग से चक्षुर्वैशेषिक आलोचक पित्त द्वारा रूप का प्रत्यक्ष होता है। बुद्धि वैशेषिक आलोचक पित्त का कार्य प्रत्यक्ष रूप दर्शन न हो कर बुद्धि व्यापार रूपेण विभिन्न परिस्थितियों पर व्यक्ति का दृष्टिकोण होता है। एक नेत्रहीन व्यक्ति में चक्षु वैशेषिक आलोचक पित्त की हानि पायी जाती है तथा एक मूर्ख या बुद्धिहीन व्यक्ति में बुद्धि वैशेषिक आलोचक पित्त की क्रिया हानि मिलती है। भेलानुसार बुद्धि वैशेषिक भ्रुवमध्यस्थित श्रृंगाटक में स्थित होता है तथा सूक्ष्म अर्थ, अध्ययन, ज्ञान ग्रहण, स्मृति आदि में कारण होता है। योजना, ध्यान, एकाग्रता भी बुद्धि वैशेषिक आलोचक पित्ताधीन हैं। इंद्रियोपक्रमणीयाध्याय में चरक द्वारा ज्ञानोप्लब्धि में पंचपंचक निमित्त कहे गये हैं। रुपोप्लब्धि में यह निम्न प्रकारेण हैं-

इंद्रिय	-	चक्षु	इंद्रिय द्रव्य	-	तेज
इंद्रियाधिष्ठान	-	नेत्र	इंद्रियार्थ	-	रूप
इंद्रिय बुद्धि	-	रूप ज्ञान			

चरक द्वारा प्रत्यक्ष अनुपलब्धि के 8 कारण माने हैं (च. सू. 11/8) बहुत समीप होने से, बहुत दूर होना, आवरण के कारण, करण (दृष्टि) दौर्बल्य, ध्यान अन्यत्र होने से, समानत्व के कारण, अन्य कारणों से गौण हो जाने से एवं अतिसूक्ष्म होने के कारण समक्ष उपलब्ध इंद्रियार्थों का प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है।

प्राकृत दृष्टि हेतु दोषसाम्य आवश्यक है। चरक ने वातव्याधि चिकित्सा में वात प्रकोप को अक्षिहृण्डन (क्रिया हानि) करने वाला माना है। पित्त दोष में आलोचक पित्त विशेषतः दृष्टिबल निर्णायक है। इसी प्रकार तर्पण के द्वारा कफ भी दृष्टि को अनुग्रहीत करता है। इसी प्रकार उत्तम धातु व सार रहने पर इंद्रियाँ विशेष स्वस्थ व मुदा रहती हैं।

धातुक्षय या मलभूत वृद्धि होने पर अक्षि आदि इंद्रियाधिष्ठान तत् तत् विकार को दर्शाते हैं।

Physiology of vision

In order to see, light rays must be focussed on retina. The resulting nerve impulses must be transmitted to visual areas of cerebral cortex in the brain. Refraction of light rays take place in following pathway of structure:

1. Cornea 2. Aqueous humour 3. Lens 4. Vitreous humour

Lens is only adjustable part of refractive system. When looking at near object, ciliary muscle contract, lens bulges in middle having greater refractive power. While looking at distant object, ciliary muscles relax and lens elongates. The retina is the light sensitive portion of the eye that contains (1) The cones which are responsible for color vision and (2) The rods, which are responsible for vision in the dark. When light falls upon the retina, photochemical and electrical changes occur.

The photochemical changes occur in the pigments of the rods and cones.

In rods, rhodopsin breaks into scotopsin, and retinal (vitamin A derivative). This chemical reaction generates electrical impulse. Rhodopsin is then resynthesized.

Impulses from rods and cones are transmitted to ganglion neurons, which converge at optic disk to become optic nerve, passing posteriorly through eyeball. Optic nerve converge at optic chiasma, which is in front of pituitary gland. Here, medial fibres of each optic nerve cross to the other side. Crossing permits each visual area to receive impulses from both eyes important for binocular vision.

The retina stimulates photoreceptors that transduce light stimulus into receptor potential that passes through bipolar cells, ganglion cells, thalamus and to visual cortex. The visual pathway consists of:

1. The optic nerve.
2. The optic chiasma.
3. The optic tract.
4. The lateral geniculate body.
5. The optic radiation.
6. The occipital cortex.

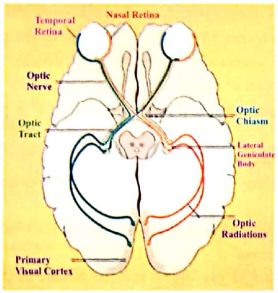

Fig. 2 - Visual Pathway of Eye

The visual nerve pathway consists of three parts:

1. **The neurons of first order** is the bipolar cells in the retina. The rods and cones are sensory end organs.

2. **The neurons of second order** is the ganglion cells in the retina, the process of which pass along the optic nerve, optic chiasma and optic tract to the lateral geniculate body.

3. **The neurons of third order** lie in seniculate body takes up the impulses via the optic radiation to the occipital lobe, Area 17 (Visual centre).

The outer segment of rodes and cones convert light stimulus into an electrical signal. This is done by absorption of light "Visual Pigment" proteins which are arranged in folds in Rods and Cones. All visual photopigments contain a glycoprotein called "Opsin" and a derivative of Vitamin A, called "Retinal". This retinal is the light absorbing portion of visual photo pigments. The opsins with small variations in amino acid sequences absorb different wavelengths and account for colour acquity; rods better absorb dark colours and cones better sense light colours.

In darkness, Retina has a bent shaped "Cis-Retinal" whch fits into "Opsin" portion of photopigment. When light falls on cis retinal, it becomes straight, now called "Trans Retinal". This conversion is called "ISOMERIZATION". Then in few minutes Trans retinal separates from opsin; opsin now looks colourless so the process is called "Bleaching of Photopigments".

Scanned with CamScanner

In darkness an enzyme 'Retinal Isomerase' converts Trans Retinal back to "Cis Retinal". This cis retinal binds with opsin and gains colour. This process is called' "Regeneration". This process of regeneration needs Vitamin A, so the deficiency leads to "Night blindness".

Bleaching is a quicker process than Regeneration so it takes lesser time to accommodate when entering to bright light but it takes longer to adapt when one enters from bright light to a dark area.

2.3 नेत्र परीक्षा (Examination of the Eye)

A complete examination of the eye includes recording of visual acuity, colour vision, examination of ocular appendages (eye brows, lids and lacrimal apparatus) and examination of internal structures. Prior to examination, it is essential to hear the complaints of the patient. Defective vision, discharge from the eye, redness, photophobia, itching, burning or foreign body sensation and ocular pain are some of the common complaints of the eye patient. Any history of trauma or retained foreign body is taken as these cases require emergency intervention. The age of the patient is an important factor. Senile cataract and glaucoma are common in fourth and fifth decade. People in the young age group shows an increase in the progression of myopia.

Examination of Head posture: Head posture is abnormal in paralysis of extraocular muscles and drooping of the lids.

Examination of forehead

Complete loss of wrinkling on one half of the forehead denotes lower motor neuron facial palsy.

Increased wrinkling, a sign of frontalis overaction is seen in patient of ptosis.

Examination of eyebrows

Cilia of lateral one-third of eye brows may be absent in patients with myxoedema and leprosy.

Examination of eyelids

Restricted movement is seen in symblepharon.

Drooping of upper lid occurs in ptosis.

Examination of lacrimal apparatus

A thorough examination of a patient having watering should be done to locate the site of obstruction in lacrimal passage.

Lacrimal sac becomes swollen in acute dacrocystitis.

A hard painless swelling of lacrimal sac gives suspicion of malignancy.

Regurgitation test: Lacrimal sac area is pressed just medial to medial canthus and regurgitation of any discharge is noted. Normally it is negative. A positive regurgitation test indicates dacryocystitis.

Examination of Conjunctiva

The lower palpebral conjunctiva is exposed by pulling down the lower eyelid. Inspection of upper palpebral conjunctiva requires eversion of the upper lid. The patient is asked to look down and eyelashes of upper lid are held between thumb and index finger. It should be inspected for the presence of follicles, papillary hypertrophy, scarring, membrane and foreign body.

The bulbar conjunctiva can be examined by separating the upper and lower lids with fingers. It is examined for congestion, chemosis and sub-conjunctival haemorrhage.

	Features	Conjunctival congestion	Ciliary congestion
1.	Site and arrangement of blood vessels	Away from the limbus; more marked in fornices and often branched	At the limbus and radially arranged.
2.	Color	Bright, brick red	Purple, dull red
3.	Pressure effect	Vessels fill slowly from fornix towards limbus	Vessels fill rapidly from limbus towards fornices
4.	Common causes	Acute conjunctivitis	Acute iridocyclitis, keratitis

Examination of Cornea

Anteriorly the cornea appears elliptical; its average vertical and horizontal diameter measure 11 mm and 11.5 mm.

A small cornea (microcornea) is less than 10 mm while increase in corneal diameter (12.5 mm or more) is megalocornea.

The curvature of the cornea may show a localized conical bulge (keratoconus) or entire cornea may appear globular (Keratoglobus).

The surface of cornea is examined by Placido's disk. On looking through a hole in the center of the disk, a uniform and sharp images of the circles can be seen on the surface of the cornea. But, if the corneal surface is uneven, irregularities in the rings are seen.

Transparency The surface of cornea is transparent. Transparency is lost in corneal oedema, opacity, ulcerations and degenerations.

Corneal Vascularization The cornea is a avascular structure. The vascularization may be superficial or deep.

S.N.	Superficial corneal vascularization	Deep vascularization
1	The continuity of vessels can be traced over the limbus into the conjunctiva	Deep vessels abruptly end at limbus.
2	Bright red in colour.	Dull red or greyish red.
3	The superficial vessels lie underneath the epithelium and cause unevenness of the surface	They are burried in corneal stroma and do not change the corneal surface
4	Branch in arborescent or dendritic pattern.	Run parallel to each other in radial manner.
5	Causes- Trachoma, superficial corneal ulcers	Causes-Interstitial keratitis, deep corneal ulcers, chemical burns

Corneal sensation Cornea is a very sensitive structure. It is tested by touching the corneal surface with a piece of cotton wool. Normally there is a reflex closure of the lid. Sensation is lost in herpetic keratitis, leprosy and absolute glaucoma.

Scanned with CamScanner

Staining of Cornea

Fluorescein: It is most commonly used vital stain. It stains the areas of denuded epithelium brilliant green due to abrasions, ulcer.

Examination of iris

The two irides or a sector of the same iris may be of different colors - heterochromia iridis. Different colour of two irises - heterochromia iridum.

Generally, the surface of the iris is shining and transparent revealing the collarette and crypts, but in iridocyclitis the iris appears dull and muddy obscuring the normal pattern.

A gap or hole in the upper sector of the iris suggests surgical coloboma.

A forward bowing of the iris (iris bombe) is a sign of early angle-closure glaucoma.

Posterior synechiae (adhesion of the iris with lens) is frequently seen in iridocyclitis.

Tremulousness (Iridodonesis): Tremors of iris or excessive movement e.g in aphakia, subluxation of lens.

Examination of the Pupil

The pupil is circular aperture of about 4 mm nearly in the center of the iris, placed slightly nasally. Constricted pupil is known as miosis. Dilated pupil is known as mydriasis.

Unequal size of both the pupils is known as anisocoria.

More than one pupil is known as polycoria.

Location of pupil may be eccentric [Corectopia].

Pupillary Reflexes

Direct light reflex - To observe, Direct light reflex, patient is sitted in a dark room keeping a gaze at a distant object to prevent activation of the near reflex. The narrow beam of light is shone to one eye while keeping the other eye closed with a palm.A normal pupil reacts briskly to the light. The same procedure is done in the other eye.

The consenual light reflex - To observe it, two eyes are separated by cardboard or hand of the examiner. The light is shone to the one eye and pupillary response is observed in other eye. The same procedure is repeated for the second eye. In a normal individual, the contralateral pupil should constrict on showing light to other eye.

The swinging flash light test - To perform this test, a light is shone to one pupil and constriction is noted. Then the light is quickly moved to other pupil and constriction is observed. In normal individuals, both the pupils constrict equally on showing light. In relative afferent pupillary defect (RAPD), the affected pupil will dilate when the flash light is moved from the normal eye to the abnormal eye. RAPD indicates optic nerve disease.

The near reflex- In near reflex, pupil constricts while looking at a near object. The patient is told to focus at a distant object and then asked to focus at an object which is 15cm from patient's eye.

Miosis: [Constricted pupil]. Seen in

- Horner's syndrome
- Iridocyclitis
- Head injury
- Effect of morphine
- Parasympathomimetic drug e.g. pilocarpine

Mydriasis: [Dilated pupil]. Seen in

- Optic atrophy
- Retinal detachment
- Belladona poisoning
- 3rd nerve paralysis
- Parasympatholytic drugs e.g. Atropine, homatropine, tropicamide and cyclopentolate
- Absolute Glaucoma

Examination of Anterior Chamber Depth

The depth of the anterior chamber of the eye is estimated by the position of iris and easily determined by oblique illumination of the anterior segment of the eye.

The anterior chamber is nearly 2.5 mm deep in the center.

- Shallow chamber is seen in closed angle glaucoma, hyperopia, anterior subluxation of the lens.
- Deep anterior chamber is seen in high myopia, aphakia (absence of lens) and posterior dislocation of lens, keratoconus and total posterior synechiae.

Contents

- Presence of protein particles in aqueous (aqueous flare) e.g. acute iridocyclitis.
- Blood (hyphaema) following ocular trauma, surgery, herpes zoster.
- Frank pus in the anterior chamber (hypopyon) e.g. corneal ulcer.

Angle of Anterior chamber

It can be examined with help of gonioscope and slit lamp. Goldmann's gonioscope is special type of contact lens fitted with mirrors in which image is reflected. Gonioscopy helps in locating foreign body, abnormal blood vessels and provides basis for the classification of glaucoma into open and closed angle glaucoma.

Examination of the lens

Colour - In young age lens appears almost clear or gives a faint bluish hue.

In old age lens gives greyish white hue. In mature cataract it is milky white in colour.

Position - Normally, centrally placed. Dislocation can be anterior (present in the anterior chamber) or posterior (present in the vitreous cavity)

Scanned with CamScanner

Subluxation: Lens is partially displaced from its position causing uniocular diplopia and astigmatism.

When a strong beam of light falls on eye, four images **(Purkinje's images)** are formed on the four reflecting surfaces - anterior surface of the cornea, anterior surface of lens, posterior surface of cornea and posterior surface of lens.

In aphakia there is absence of 3rd and 4th images and in cataract 4th image is absent.

Examination of posterior segment of eye

This is carried out with the help of ophthalmoscope.

Three methods of examination of posterior segment of eye are:

1. Distant direct ophthalmoscopy. 2. Direct ophthalmoscopy 3. Indirect ophthalmoscopy

Distant direct ophthalmoscopy: It can be performed with the help of self illuminated ophthalmoscope or a simple plain mirror with a hole in the centre. The light is thrown into the patients eye from distance of 22 cm. The fundus reflex is normally seen as uniform red glow. If there are opacities in the media they appear black against the red background.

Direct ophthalmoscopy

It is most commonly practised method for routine fundus examination. The examiner stands to the side of the patient's eye to be examined and the ophthalmoscope should be held as close as possible to the observer's eye. Direct ophthalmoscopy in emmetropic eye gives about 15 times magnified image of the fundus.

Technique

A convergent beam of light is reflected into the patients pupil. The emergent rays reach the examiners eye through an aperture in the ophthalmoscope and erect virtual image is obtained. The pupil should be dilated with a mydriatic before examination. The doctor should examine the right eye of patient with his right eye and vice versa. For the examination of the optic disk, the patient is asked to look straight ahead while macula is seen by asking the patient to look at the light.

Indirect ophthalmoscopy

It is an important procedure to examine the details of fundus, particularly of the periphery. Magnification is 5 times.

Functional Examination

It includes:

(i) Visual acuity (ii) Colour vision (iii) Field of vision

Visual Acuity

Visual acuity should be tested both for distance and near vision.

Distant visual acuity

Visual acuity applies to central vision only. It is usually tested by means Snellen's test types. The letters of top line of Snellen's chart should be read clearly at a distance of 60m. Similarly the letters in the subsequent lines should be read from the distance of 36, 24, 18, 12, 9, 6 and 5 m. For testing visual acuity, the patient is seated at a distance of 6m from the Snellen's chart. The chart should be well illuminated. When the space in the room is limited, test can be done with the help of plane mirror kept at distance of 3 metres from the patient. The patient is asked to read the test types after covering one eye

by card-board or palm. When the patient is able to read upto 6 m line, the visual acuity is recorded as 6/6 which is normal. When the top letter cannot be read, the patient is asked to move downwards the chart. Depending upon the distance at which he can read the top line, his vision is recorded as 5/60, 4/60, 3/60, 2/60 and 1/60. If the patient is unable to read the top line even from 1 m, he is asked to count fingers (CF). His vision is recorded as CF-3', CF-1' or CF close to face, depending upon the distance at which patient is able to count fingers. When the patient fails to count fingers, the examiner moves his hand close to the patient's face. If he can appreciate the hand movement, visual acuity is recorded as HM +ve. When the patient cannot appreciate the hand movement, light perception should be tested (PL). For patients using glasses, the visual acuity should be recorded without glasses as well as with glasses.

Other tests which are based on the principle of snellen's test types are:

(a) **Simple picture chart** - used for children.

(b) **Landolt's C - chart** - Used for illiterate patients.

(c) **E-chart** - Used for illiterate persons.

Visual acuity for near: Near vision is tested by asking the patient to read near vision chart, kept at distance of 35 cm in good illumination, with each eye separately.

Commonly used near vision charts are:

(a) Jaeger's chart.

(b) Roman test types.

(c) Snellens' near vision test types.

Colour vision

An individual with normal colour vision is known as trichromate. A normal human being can perceive three primary colours-red, green and blue. Certain occupations such as navy, air force, railways require good colour perception. In colour blindness, one cannot appreciate one or more primary colours.

Protanomalous: It refers to defective red colour appreciation.

Deuteranomalous: It means defective green colour appreciation.

Tritanomalous: It implies defective blue colour appreciation.

The color vision is tested by various methods-Ishiharas pseudo isochromatic chart Holmgren's wool test or Nagel's anomaloscope. The ishihara's charts are commonly used to determine the patient's ability to perceive colors. The charts are made up of dots of primary colors printed on a background of similar dots of confusing colors. The person is asked to read the number and type of color deficiency is diagnosed.

Field of Vision

When an eye fixes its gaze on an object, the entire area which can be seen around the object is known as 'field of vision.' This can be tested either by "Confrontation Method" or by use of 'Perimeter'.

Normal field of vision

UPWARDS = 60°	INWARDS = 60°
DOWNWARDS = 70°	OUTWARDS = >90°

Scanned with CamScanner

Confrontation method is rough but very useful method in which the patient field of vision is compared with that of examiner having normal field of vision.

The patient sits at a distance of 2 feet from the examiner and is asked to shut his left eye and fixes his right eye on examiners' left eye. The examiner shuts his right eye and moves his finger from the periphery to the seeing area between him and the patient. The patient is told to tell as soon as he sees the finger. The finger is moved along various meridians and rough assessment is made about the visual field of the right eye. Test should be repeated for the left eye also.

Perimetry is a technique for recording the visual field with the help of an instrument called "Perimeter". The area seen to the nasal side is called the nasal field of vision and area seen to lateral side is called temporal field of vision. In perimetry chart, a blind spot caused by lack of rods and cones in the retina over the optic disk is found about 15 degrees lateral and slightly lower to central point of vision. Occasionally, blind spots are found in the portion of field of vision other than optic disc area. Such blind spots are called scotomata. They are frequently caused by damage to optic nerve resulting from glaucoma or toxic conditions. Still another condition that can be diagnosed by perimetry is Retinitis pigmentosa (R.P.). R.P usually causes blindness in the peripheral field of vision first and then gradually encroaches on the central areas.

Lister's perimeter - It consists of metallic semi circular arc which can be rotated in different meridians. The patient is seated with chin supported by chin rest and his one eye covered by a pad. The other eye fixes an object placed at the centre of an arc. A white test object is then moved along the inner surface of the arc from the extreme periphery towards the centre and the point where the object is first seen is recorded automatically on a chart in degrees.

Slit lamp examination

It is done when minute examination of the eye is necessary. A brilliant light is brought to a focus as a slit by an optical system supported on a movable arms and observations are made by binocular microscope.

The intraocular pressure (IOP)

The tension can be assessed roughly by digital tonometry. The patient is asked to look down. The eyeball is palpated through the upper lid beyond the tarsal plate. The tension is estimated by the amount of fluctuations.

Schiotz Tonometer

An accurate determination of ocular tension is made by tonometer. Cornea is anaesthetized with an anaesthetic solution (Lignocaine 4%). The lids are opened and a tonometer carrying a weight of 5.5 gm is gently placed on the cornea. Further readings are obtained by putting additional weights to make final weight of plunger 7.5 gm and 10 gm and the intraocular pressure is determined by nomogram. The normal reading varies between 12 and 20mm Hg in a normal individual. Scleral rigidity, improper positioning of tonometer on cornea and uncooperative patient are the common sources of error. The deflection is measured and reading is noted. There may be errors due to ocular rigidity.

Fluorescein Angiography

Fundus fluorescein angiography is of great diagnostic importance in vascular disorders of retina and optic nerve. Sterile sodium fluorescein is rapidly injected into the antecubital vein of the patient and serial photographs are taken with a fundus camera. The dye appears in the nervous coat 6 to 8 seconds after the injection. The angiogram is divided into four phases.

1. **Prearterial phase** - is characterized by filling of the choroidal circulation.
2. **Arterial phase** - It starts 1 second after prearterial phase and dye enters retinal arteries.
3. **Arterio-venous phase** - here the dye is seen both in arteries and veins
4. **Venous phase** - In this phase, veins are filling and arterioles are emptying.

Modern technologies to examine visual sense

Electroretinogram (ERG) is the record of changes in the resting potential of the eye caused by exposure to a flash of light. One electrode is placed on the cornea and other on the forehead. It is useful in detecting functional abnormalities of the outer retina. It is absent in cone dystrophy and pigmentary degeneration.

Electroculogram In this method electrodes are placed at the inner and outer canthi. It is affected in dystrophies and degenerations.

Visually evoked response (VER)

It is produced by electrical activity of the visual cortex in response to light.

Amsler Grid Chart It is an 8 × 11 chart with small squares. There is black spot in the centre of the chart. While fixing at the central dot, he is asked to outline any area of distortion. It is used to detect any abnormality in the visual field.

Scanned with CamScanner

G.L. Kumawat

अध्याय-3

नेत्र रोग निदान

नेत्र रोगों की सामान्य सम्प्राप्ति

सिराऽनुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरुर्ध्वमागतैः।
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः॥ (सु. उ. त. 1/20)

विकृत दोष सिराओं के मार्ग से ऊपर के भाग में जाकर नेत्र में भयंकर रोग उत्पन्न करते है।

सर्वरोगनिदानोक्तैरहितैःकुपिता मलाः।
अचक्षुष्यैविशेषेणे प्रायः पित्तानुसारिणः॥
सिराभिरुर्ध्व प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः।
वर्त्म सन्धिं सितं कृष्णं दृष्टिं वा सर्वमक्षि वा रोगान् कुर्यः- (अ.हृ.उ. 8/1-2)

सर्वरोग निदान में वर्णित तिक्तोषणादि अहित आहार विहार से विशेषकर चक्षु के लिए अहितकर आहार विहार से कुपित दोष पित्त का अनुसरण करके शिराओं द्वारा ऊपर की ओर जाकर नेत्र अवयवों वर्त्म, संधि, श्वेत, कृष्ण और दृष्टि भाग में आश्रित होकर अथवा सम्पूर्ण आँख में रोगों को उत्पन्न करते हैं।

3.1 नेत्ररोग हेतु

उष्णभितप्तस्य जल प्रवेशाद् दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्य्यवाच्च।
प्रसक्तसंरोदन कोपशोकक्लेशाभिघातदतिमैथुनाच्च॥
शुक्तारनालाम्लकुलत्थमाषनिषेवणाद्वेगविनिग्रहाच्च॥
स्वेदावथो धूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघताद्वमनातियोगात्।
वाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान्जनयन्ति दोषाः॥

(सु.उ.त. 1/26-27)

उष्णता से तप्त हुए मनुष्य का सहसा शीतल जल में प्रवेश करना, दूर की वस्तुओं को अधिक देखना, स्वाभाविक सोने के अभ्यास से विपरीत प्रयास करना, निरन्तर रोना, क्रोध करना, मानसिक दुख, क्लेश, अभिघात, अति स्त्री संभोग से, शुक्त, आरनाल (कांजी), अम्ल पदार्थ, कुलथी, उड़द का निरन्तर सेवन से, अधारणीय वेगों को धारण करने से, अधिक पसीना आने से, अधिक धूम्रपान करने से, वमन के वेग को रोकने से तथा वमन के अतियोग से, आंसुओं के वेग को रोकने से, सूक्ष्म वस्तुओं को देखने से दोष प्रकुपित होकर नेत्र में रोग उत्पन्न कर देते हैं।

3.2 नेत्र रोग पूर्वरूप

तत्राविलं ससंरम्भमश्रुकण्डूपदेहवत्।
गुरुषातोदरागाद्यैर्जुष्टश्चाव्यक्तलक्षणैः॥
सशूलं वर्त्मकोषेषु शूकपूर्णाभमेव च॥
विहन्यमानं रूपे वा क्रियास्वक्षि यथा पुरा॥
दृष्ट्वैव धीमान् बुध्येत् दोषेणाधिष्ठितं तु तत्॥ (सु.उ.त. 1/21-23)

पुस्तकालय पु.सं. 10672

नेत्रों में आविलता (गंदलापन), संरम्भ (लालिमा व वेदना), आंसू का निकलना, खुजली होना, उपदेह (मल का होना), गुरुता, ऊषा (दाह), तोद (सूचीवेधवत् वेदना), राग (लालिमा) आदि लक्षण व्यक्त होते हैं। वर्त्म कोष में शूल तथा उनमें शूक भरे हुए की प्रतीति होती है। देखने में कठिनाई तथा नेत्र कार्य में व्यवधान होता हैं। बुद्धिमान वैद्य इन पूर्वरूपों को देखकर नेत्र दोषयुक्त है, ऐसी कल्पना करें।

3.3 नेत्र रोगों की सामान्य चिकित्सा

संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्।
वातादीनां प्रतीघातः प्रोक्तो विस्तरतः पुनः॥ (सु.उ.त. 2/25)

संक्षेप में निदान का परिवर्जन अर्थात् जिन कारणों से नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं, उनका त्याग ही क्रियायोग (चिकित्सा) है तत्पश्चात् वातादि दोषों का विनाश करना विस्तृत चिकित्सा है।

3.4 नेत्र रोग संख्या

सुश्रुत के मत से नेत्र रोग संख्या में 76 है। चरक ने नेत्र रोगों की संख्या 4 बताई है। वाग्भट तथा शार्ङ्गधर ने 94 संख्या बताई है।

असाध्य वातज नेत्र रोग-

1. हताधिमंथ 2. निमेष 3. गम्भीरिका 4. वातहत

याप्य वातज रोग-

1. वातज काच रोग

साध्य वातज रोग-

1. शुष्काक्षिपाक 2. वातज अभिष्यन्द 3. वातपर्यय 4. अन्यतोवात

असाध्य पैत्तिक रोग-

1. ह्रस्वजाड्य 2. पैत्तिक जलस्राव

याप्य पैत्तिक रोग-

1. परिम्लायी काच 2. नील काच

साध्य पैतिक रोग

1. पैत्तिक अभिष्यन्द 2. पैत्तिक अधिमन्थ 3. अम्लाध्युषित 4. शुक्तिका
5. पित्तविदग्धदृष्टि 6. धूमदर्शी

असाध्य कफज रोग

1. कफज स्राव

Scanned with CamScanner

याप्य कफज रोग

1. कफज काच

साध्य कफज रोग

1. कफज अभिष्यन्द	2. कफज अधिमन्थ	3. बलासग्रथित	4. श्लेष्मविदग्धदृष्टि
5. पोथकी	6. लगण	7. क्रिमिग्रन्थि	8. परिक्लिन्न वर्त्म
9. शुक्ल अर्म	10. पिष्टक	11. उपनाह	

रक्तज असाध्य रोग

1. रक्तज स्राव	2. अजकाजात	3. रक्तार्श	4. सव्रण शुक्र

रक्तज याप्य रोग

रक्तज काच

रक्तज साध्य रोग

1. रक्तज अभिष्यन्द	2. रक्तज अधिमन्थ	3. क्लिष्ट वर्त्म	4. सिराहर्ष
5. सिरोत्पात	6. अंजननामिका	7. सिराजाल	8. पर्वणी
9. अव्रण शुक्र	10. शोणितार्म	11. अर्जुन	

असाध्य त्रिदोषज रोग

1. पूयास्राव	2. नकुलान्ध्य	3. अक्षिपाकात्यय	4. अलजी

याप्य त्रिदोषज रोग

1. त्रिदोषज काच	2. पक्ष्मकोप

साध्य त्रिदोषज रोग

1. वर्त्मावबन्ध	2. सिरापिड़का	3. प्रस्तारि अर्म	4. अधिमांसज अर्म
5. स्नायु अर्म	6. उत्सङ्गिनी	7. पूयालस	8. अर्बुद
9. श्याव वर्त्म	10. वर्त्मकर्दम	11. अर्शोवर्त्म	12. शुष्कार्श
13. शर्करावर्त्म	14. सशोफपाक	15. अशोफपाक	16. बहलवर्त्म
17. अक्लिन्नवर्त्म	18. कुम्भीका	19. बिसवर्त्म	

बाह्य रोग दो है

1. सनिमित्त लिङ्गनाश 2. अनिमित्त लिङ्गनाश

3.5 नेत्र रोगों का वर्गीकरण

अधिष्ठान भेद से

नव सन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः॥
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वावशैव तु।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमवारुणौ। (सु.उ.त. 1/44-45)

- संधिगत रोग 9 होते हैं।
- शुक्ल भाग में 11 रोग होते हैं।
- सर्वाश्रय रोग 17 होते हैं।
- बाह्य कारणों से भयंकर दो रोग होते हैं।
- वर्त्म भाग में 21 रोग होते हैं।
- कृष्ण भाग में 4 रोग होते हैं।
- दृष्टिमण्डल में 12 रोग होते हैं।

चिकित्सा की दृष्टि से

1. छेद्य रोग-11		2. लेख्य रोग-9	
3. भेद्य रोग-5		4. व्यध्य रोग-15	
5. अशस्त्रकृत्य-12		6. याप्य-7	
7. असाध्य-15		8. बाह्य-2	

अर्शोन्वितं भवति वर्त्म तु यत्तथार्शः।
शुष्कं तथाऽर्बुदमथो पिडकाः सिराजाः।
जालं सिराजमपि पञ्चविधं तथाऽम।
छेद्या भवन्ति सह पर्वणिकामयेन॥ (सु.उ.त. 8/6)

11 छेद्य रोग निम्नलिखित हैं:-

1.	अर्शोवर्त्म	2.	शुष्कार्श	3.	वर्त्मार्बुद	4.	सिरापिड़का
5.	सिराजाल	6-10.	पंचविध अर्म	11.	पर्वणिका		

उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च श्यावश्च
यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म।
क्लिष्टश्च पोथकियुतं खलु यच्च वर्त्म
कुम्भकिनी स सह शर्करया च लेख्याः॥ (सु.उ.त. 8/7)

9 लेख्य रोग निम्नलिखित हैं:

1.	उत्सङ्गिनी	2.	बहलवर्त्म	3.	कर्दमवर्त्म	4.	श्याववर्त्म
5.	बद्धवर्त्म	6.	क्लिष्टवर्त्म	7.	पोथकी	8.	कुम्भीकिनी
9.	वर्त्मशर्करा						

श्लेष्मोपनाह लगणौ च बिसश्च भेद्या
ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च॥ (सु.उ.त. 8/8)

भेद्य रोग 5 हैं-

1.	श्लेष्मोपनाह	2.	लगण		
3.	बिसवर्त्म	4.	कृमिग्रन्थि	5.	अंजननामिका

व्यध्य रोग 15 हैं-

1.	सशोफ अक्षिपाक	2.	अशोफ अक्षिपाक
3.	अन्यतोवात	4.	पूयालस
5.	वातविपर्यय	6-9.	4 प्रकार के अभिष्यन्द
10-13.	4 प्रकार के अधिमन्थ	14.	सिरोत्पात 15. सिराहर्ष

Scanned with CamScanner

य रोग निम्न हैं-

क्षिपाक 2. कफाविदग्धदृष्टि 3. पित्तविदग्धदृष्टि 4. अम्लाध्युषित
शुक्र 6. अर्जुन 7. पिष्टक 8. अक्लिन्नवर्त्म
र्शी 10. शुक्तिका 11. प्रक्लिन्नवर्त्म 12. बलासग्रथित

भेद से नेत्र रोग विभाजन

ग	10	पैत्तिक रोग	10
ा	13	रक्तज रोग	16
ोग	25	बाह्य रोग	2

ध्यता विभाजन

रोग - 52 याप्य नेत्र रोग - 7 असाध्य नेत्र रोग - 17

संख्या

	संहिता	नेत्र रोग संख्या
	चरक, कराल	96
	सुश्रुत, माधव निदान, भावप्रकाश, योगरत्नाकर	76
	वाग्भट, शार्ङ्गधर, वैद्य चिन्तामणि	94
	सात्यकि तन्त्र	80

त के अनुसार नेत्र रोग

	नेत्र अधिष्ठान	सुश्रुत	वाग्भट
	संधिगत रोग	9	9
	वर्त्मगत रोग	21	24
	शुक्लगत रोग	11	13
	कृष्णगत रोग	4	5
	सर्वगत रोग	17	16
	दृष्टिगत रोग	12	27
	बाह्य रोग	2	-
	कुल	**76**	**94**

अनुसार नेत्र रोग

क्र. सं.	दोष प्राधान्य	संख्या
1.	वातज नेत्र रोग	10
2.	पित्तज नेत्र रोग	10
3.	कफज नेत्र रोग	13
4.	रक्तज नेत्र रोग	16
5.	सन्निपातज नेत्र रोग	25
6.	बाह्य रोग	2
	कुल	**76**

वातज नेत्र रोग

क्र. सं.	व्याधि	अधिष्ठान	साध्यासाध्यता
1.	वातिक अभिष्यन्द	सर्वगत रोग	साध्य
2.	वातिक अधिमन्थ	सर्वगत रोग	साध्य
3.	शुष्काक्षिपाक	सर्वगत रोग	साध्य
4.	अन्यतोवात	सर्वगत रोग	साध्य
5.	अनिलपर्याय	सर्वगत रोग	साध्य
6.	वातिक काच	दृष्टिगत रोग	याप्य
7.	गम्भीरका	दृष्टिगत रोग	असाध्य
8.	हताधिमन्थ	सर्वगत रोग	असाध्य
9.	निमेष	वर्त्मगत रोग	असाध्य
10.	वातहतवर्त्म	वर्त्मगत रोग	असाध्य

पित्तज नेत्र रोग

1.	पैत्तिक अभिष्यन्द	सर्वगत रोग	साध्य
2.	पैत्तिक अधिमन्थ	सर्वगत रोग	साध्य
3.	अम्लाध्युषित	सर्वगत रोग	साध्य
4.	शुक्तिका	शुक्लगत रोग	साध्य
5.	धूमदर्शी	दृष्टिगत रोग	साध्य
6.	पित्तविदग्ध दृष्टि	दृष्टिगत रोग	साध्य
7.	परिम्लायि काच	दृष्टिगत रोग	याप्य
8.	नील काच	दृष्टिगत रोग	याप्य
9.	पैत्तिक जलास्राव	संधिगत रोग	असाध्य
10.	हस्वजाड्य	सर्वगत रोग	असाध्य

कफज नेत्र रोग

क्र. सं.	व्याधि	अधिष्ठान	साध्यासाध्यता
1.	उपनाह	संधिगत	साध्य
2.	क्रिमिग्रन्थि	संधिगत	साध्य
3.	क्लिन्नवर्त्म	वर्त्मगत	साध्य
4.	लगण	वर्त्मगत	साध्य
5.	पोथकी	वर्त्मगत	साध्य
6.	शुक्लार्म	शुक्लगत	साध्य
7.	पिष्टक	शुक्लगत	साध्य

Scanned with CamScanner

	शुक्लगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	दृष्टिगत	साध्य
	दृष्टिगत	याप्य
	संधिगत	असाध्य

	संधिगत	साध्य
	वर्त्मगत	साध्य
	वर्त्मगत	साध्य
	शुक्लगत	साध्य
	शुक्लगत	साध्य
	शुक्लगत	साध्य
	कृष्णगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	सर्वगत	साध्य
	दृष्टिगत	याप्य
	संधिगत	असाध्य
	वर्त्मगत	असाध्य
	कृष्णगत	असाध्य
	कृष्णगत	असाध्य

अधिष्ठान	साध्यासाध्यता
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य
वर्त्मगत	साध्य

8.	बहल वर्त्म	वर्त्मगत	साध्य
9.	श्याव वर्त्म	वर्त्मगत	साध्य
10.	बिस वर्त्म	वर्त्मगत	साध्य
11.	वर्त्मकर्दम	वर्त्मगत	साध्य
12.	सशोफ अक्षिपाक	सर्वगत	साध्य
13.	अशोफ अक्षिपाक	सर्वगत	साध्य
14.	पूयालस	संधिगत	साध्य
15.	प्रस्तारि अर्म	शुक्लगत	साध्य
16.	अधिमांस अर्म	शुक्लगत	साध्य
17.	स्नायु अर्म	शुक्लगत	साध्य
18.	सिरापिडिका	शुक्लगत	साध्य
19.	पक्ष्मकोप	संधिगत	याप्य
20.	सर्वज काच	दृष्टिगत	याप्य
21.	पूयास्राव	संधिगत	असाध्य
22.	अलजी	संधिगत	असाध्य
23.	नकुलान्ध्य	दृष्टिगत	असाध्य
24.	अक्षिपाकात्यय	कृष्णगत	असाध्य

चिकित्सा मतानुसार विभाजन

क्र. सं.	चिकित्सा	संख्या
1.	छेद्य	11
2.	भेद्य	5
3.	लेख्य	9
4.	व्यध्य	15
5.	अशस्त्रकृत्य	12
6.	असाध्य	15
7.	याप्य	7

Scanned with CamScanner

अध्याय-4

संधिगत रोग

4.1 संधिगत रोग संख्या

पूयालसः सोपनाहः स्रावा पर्वणिकाऽलजी।

क्रिमिग्रन्थिश्च विज्ञेया रोगाः सन्धिगता नव॥ (सु.उ.त. 2/3

सन्धिगत रोग 9 प्रकार के होते हैं-

1.	पूयालस	2.	उपनाह	3-6.	4 प्रकार के स्राव
7.	पर्वणिका	8.	अलजी	9.	क्रिमिग्रन्थि

वाग्भट ने भी सन्धिगत रोग 9 कहे हैं-

1.	जलास्रव	2.	कफास्रव	3.	रक्तास्रव	4.	पूयास्रव
5.	उपनाह	6.	पर्वणी	7.	अलजी	8.	पूयालस
9.	कृमिग्रन्थि						

4.1.1 पूयालस

पक्वः शोफः सन्धिजः संस्रवेद् यः सान्द्रं पूयं पूति पूयालसःसः। (सु.उ.त. 2/4

नेत्र की संधि में शोफ होकर पाक के पश्चात् गाढ़ा, दुर्गन्धित पूय स्रवित होता है।

पूयालसो व्रणः सूक्ष्मः शोफसंरम्भपूर्वकः।

कनीनसन्धावाध्मायी पूयस्रावी सवेदनः। (अ.हृ.उ.त. 10/

पूयालस में सूक्ष्म मुख वाला व्रण हो जाता है तथा इसमें लालीपन और पीड़ा होती है। यह कनीनक सं में होता है तथा पूय का स्राव होता है।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने इसे व्यध्य साध्य व्याधि कहा है।

पूयालसे शोणितमोक्षणञ्च हितं तथैवाप्युपनाहनंच।

कृत्स्नो विधिश्चेक्षणपाकघाती यथाविधानं भिषजा प्रयोज्यः॥ (सु.उ.त. 12/45

पूयालस में रक्तमोक्षण और उपनाह हितकारी है। नेत्रपाक नाशक विधि विधान से करें।

कासीससिन्धुप्रभवार्द्रकैस्तु हितं भवेदञ्जनमेव चात्र।

क्षौद्रान्वितैरेभिरथोपयुञ्ज्यादन्यत्तु ताम्रायसचूर्णयुक्तैः॥ (सु.उ.त. 12/46)

कासीस, सैंधवलवण और अदरक को शहद के साथ पीसकर अंजन करें। उपरोक्त द्रव्यों में ताम्र और लौह का चूर्ण मिलाकर अंजन करें।

पूयालसे त्वशाऽन्ते दाहः सूक्ष्मशलाकया। (सु.उ.त. 16/60)

पूयालस रोग के शान्त न होने पर अन्त में सूक्ष्म शलाका से दाह करना चाहिए।

पूयालसे सिरां विध्येत्ततस्तमुपनाहयेत्।

कुर्वीत चाक्षिपोकाक्तं सर्वं कर्म यथाविधि॥

सैन्धवार्द्रककासीस लोहताम्रैः सुचूर्णितैः।

चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत सक्षौद्रैर्वा रसक्रियाम्॥ (अ.हृ.उ. 11/4-5)

पूयालस में सिरा का वेधन करके तत्पश्चात् उपनाह करें। अक्षिपाक में कही विधि का प्रयोग करें। सैंधव, सोंठ, कासीस, लौह भस्म, ताम्र भस्म के चूर्ण से अंजन करें अथवा इनको मधु में मिलाकर रसक्रिया करें।

आधुनिक मत से इसे Acute Dacrocystitis कह सकते हैं।

Lacrimal System

The lacrimal apparatus consists of the lacrimal gland, accessory glands and the lacrimal passage. The lacrimal gland is a tear secreting gland comprising superior (Orbital) and the inferior (palpebral) part. The superior gland is almond shaped situated in the lacrimal fossa at the outer part of the orbital plate of the frontal bone. The palpebral gland, comprising one or two lobules, lies just above the lateral part of the upper fornix. There are about twelve ducts collecting the secretion of whole gland. They open upon the surface of conjunctiva at the outer part of upper fornix.

Accessory lacrimal glands. These are the small glands having same structure as the lacrimal gland. They are of 2 types :

1. **Glands of Krause.** They are approximately forty two in upper fornix and eight to ten in the lower fornix lying in the conjunctival mucosa between the fornix and edge of tarsus.
2. **Glands of Wolfring** - They are few in number situated in the conjunctiva near the upper border of tarsal plate.

Blood supply - The lacrimal gland is supplied by the lacrimal branch of ophthalmic artery and infra-orbital artery; branch of the maxillary artery.

Nerve supply - The trigeminal, the facial and the sympathetic nerves supply the lacrimal gland.

The lacrimal passage consists of :

1. Lacrimal puncta (2 in number).
2. Lacrimal canaliculi (2 in number).
3. Lacrimal sac.
4. Naso-lacrimal duct.

Lacrimal puncta - These are two small openings, situated on lacrimal papilla, about 6 mm from the inner canthus on each lid margin.

Scanned with CamScanner

Lacrimal canaliculi - Two in number, start from puncta as narrow tubular passages to end in lacrimal sac. Two canaliculi may open into the lacrimal sac separately or they may join to form a common canaliculus (sinus of Mair) before opening into the sac.

Lacrimal sac - It is about 13 mm long vertically and 6 mm wide situated in the lacrimal fossa; formed by the lacrimal bone and the frontal process of maxilla. It lies slightly above the medial palpebral ligament.

Naso-lacrimal duct- It is about 15 mm in length and about 3 mm wide. It runs downwards, slightly outwards and backwards and opens at the anterior part of outer wall of inferior meatus of nose. There are numerous membranous valves in the NLD, the most important is 'valve of Hasner' which is present at the lower end of the duct and prevents reflux from the nose.

Tears are mixture of secretion from the lacrimal gland, accessory lacrimal glands, goblet cells and meibomian glands. Tears are slightly alkaline having pH of 7.35 and consists mainly of water, small quantities of salts, sugar, urea, protein and a bactericidal enzyme lysozyme. The secretion of tears does not begin before 3-4 weeks after birth. The average normal secretion of tears is 0.5-2.2 ml.

Tear film

The fluid which fills the conjunctival sac consists of 3 layers namely:

1. Mucous layer- It is innermost layer of mucoproteins.

2. Aqueous layer- It consist of tears secreted by the lacrimal gland and accessory lacrimal glands. The bulk of tear film is formed by this layer.

3. Lipid layer - It is the outermost layer; consists mainly of cholesterol, lipid being secreted by meibomian glands and zeis glands. This layer prevents overflow of tears, retards their evaporation and lubricates the eyelids.

Functions

1. It keeps surface of eye ball moist for the normal functioning of the eye.
2. It washes away irritating material.
3. Provides oxygen to the corneal epithelium.
4. It prevents infection due to the bactericidal lysozymes.

Epiphora - Means watering of eyes due to obstruction to outflow of tears.

Causes of epiphora

1. Lower lid laxity or weakness of orbicularis muscle.
2. Stenosis of the punctum.
3. Canaliculi obstruction due to foreign body, trauma and strictures.
4. Obstruction in the sac due to tumour of the sac or specific infections.
5. Obstruction in the naso-lacrimal duct due to chronic dacrocystitis, nasal polyp or tumour.

Hyperlacrimation - is a condition of oversecretion of tears.

Causes

1. Stimulation of branches of the Vth cranial nerve. It is frequently seen in conjunctivitis, corneal disorders and glaucoma
2. Due to effect of strong parasympathomimetic drugs.

ACUTE DACROCYSTITIS

Acute dacrocystitis is the acute suppurative inflammation of the lacrimal sac.

Etiology

1. It is caused by pyogenic organisms e.g. staphylococcus, pneumococcus etc.
2. Worsening of chronic dacrocystitis.
3. Infection from surrounding structures such as paranasal sinuses, conjunctiva.

Symptoms

1. Marked swelling, redness and tenderness of the skin over the sac and the adjacent area.
2. Conjunctival congestion may be present.
3. Fever.
4. Lacrimation.

Signs

1. Oedema of lids skin.
2. Skin over the sac is markedly tender and hot.
3. Enlargement of the submaxillary lymph nodes.
4. No regurgitation through the puncta at this stage, as the canaliculi become blocked due to oedema of the surrounding tissues.
5. When the lacrimal abscess is formed, fluctuation is elicited.
6. When the abscess bursts on the skin surface, a fistula is formed.

Complications

1. Osteomyelitis of the lacrimal bone.
2. Orbital cellulitis.
3. Cavernous sinus thrombosis due to spread of infection along the angular vein.

Clinical picture It can be divided into three stages.

1. **Stage of cellulitis.** It is characterized by painful swelling in the region of the sac associated with epiphora. The swelling is red, hot, firm and tender.
2. **Stage of lacrimal abscess** - Continued inflammation causes occlusion of the canaliculi due to oedema. The sac is filled with pus, distends and its anterior wall ruptures forming pericystic swelling.
3. **Stage of fistula formation** - When the lacrimal abscess is left untreated it discharges spontaneously, leaving an external fistula below medial palpebral ligament.

Scanned with CamScanner

Treatment

1. Hot compresses.
2. Systemic antibiotics and analgesics.
3. In case of lacrimal abscess, a vertical incision is given over the sac area in the lower part.
4. In case of lacrimal fistula, fistulectomy along with DCT (Dacrocystectomy) or DCR (Dacrocystorhinostomy) operation should be done.

Dacryocystectomy (DCT)

The removal of sac is known as dacryocystectomy.

Indications

1. Tuberculosis of the sac
2. Malignancy of the sac.
3. Chronic fibrotic dacryocystitis.

Procedure

1. The lacrimal sac and area surrounding it is anaesthetized with xylocaine 2% with adrenaline.
2. About 2 cm long skin incision is made 3 mm medial to the inner canthus.
3. Orbicularis muscle is split along the incision line.
4. Lacrimal fascia is exposed and incised.
5. Lacrimal sac is drawn forward and twisted and torn away from the nasolacrimal duct.
6. The upper end of the duct is curetted and incision is closed by sutures.

Dacryocystorhinostomy (DCR)

In DCR a communication is established between the sac and the middle meatus of the nose to bypass the obstructed nasolacrimal duct.

Indications

1. Mucocele of the lacrimal sac
2. Chronic dacryocystitis

Procedure

1. The nasal cavity is packed with a gauze soaked in 4% solution of xylocaine with adrenaline.
2. The skin incision and exposure of the sac are same as in dacryocystectomy.
3. The periosteum over the lacrimal crest is incised and lacrimal bone is exposed.
4. The bony crest is removed with hammer and nasal mucosa is exposed.
5. The nasal mucosa of middle meatus is anastomosed with the medial wall of the sac by making vertical incisions in them.
6. Skin incision is closed.
7. The nasal pack is removed on the second day of operation.
8. The syringing is done on the third post operative day.
9. Skin sutures are removed on the seventh day.

DCT differs from DCR surgery as there is no breaching of nasal mucosa and hence chances of aspiration pneumonia is rare.

Secondly it is safer procedure as time taken is short and it is usually done in local anaesthesia.

4.1.2 उपनाह

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्ध्यावपाकः कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः॥ (सु.उ.त. 2/4)

नेत्र की दृष्टि संधि में बड़े आकार की तथा नहीं पकने वाली, प्रायः कण्डूयुक्त और वेदनारहित ग्रन्थि होती है, उसे उपनाह कहते हैं।

कफेन शोफस्तीक्ष्णग्रः क्षारबुदबुदकोपमः।
पृथुमूलः स्निग्धः सवर्णो मृदुपिच्छिलः॥
महानपाकः कण्डूमानुपनाहः सनीरुजः। (अ.हृ.उ. 10/3-4)

उपनाह में कफ के कारण नोंकदार क्षारजन्य बुलबुलों के तुल्य विस्तृत मूलयुक्त, चिकना, त्वचा के समान वर्ण, नरम, पिच्छिल, बड़ा, न पकने वाला, कण्डूयुक्त वेदनाहीन शोथ होता है।

वाग्भट ने दृष्टि संधि का उल्लेख नहीं किया है।

यह कफज साध्य व्याधि है।

चिकित्सा

यह भेदन साध्य व्याधि है।

भित्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः।
लेख्येनमण्डलाग्रेण समन्तात् प्रच्छयेदपि॥ (सु.उ.त. 14/9)

कफज उपनाह में भेदन करके पिप्पली, मधु और सैंधव लवण से प्रतिसारण करें। विस्तृत उपनाह में मण्डलाग्र शस्त्र द्वारा लेखन कर्म कर प्रच्छान करें।

उपनाहं भिषक् स्विन्नं भिन्नं व्रीहिमुखेन च।
लेख्येनमण्डलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत्॥
पिप्पलीक्षौद्रसिन्धूत्थैर्बूष्नीयात्पूर्ववत्ततः।
पटोलपत्रामलक क्वाथेनाश्च्योतनयेच्च तम्॥ (अ.हृ.उ. 11/1-2)

उपनाह में स्वेदन करके व्रीहिमुख शस्त्र से भेदन करें, तत्पश्चात् मण्डलाग्र शस्त्र से लेखन करें। पिप्पली, मधु, सैंधव लवण से प्रतिसारण कर गर्म पानी से धोकर घी से सिञ्चन करें, मधु से अभ्यंग करके बांध देवें। पटोल की पत्ती और आमलकी के क्वाथ से आंख में आश्च्योतन करें।

आधुनिक मत से इसे lacrimal cyst कह सकते हैं।

4.1.3-4.1.6 नेत्रस्राव

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावान् रुग्विहीनान् कनीनात्।
तान् वै स्रावान् नेत्रनाड़ी मथैके तस्या लिङ्गं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा॥ (सु.उ.त. 2/5)

Scanned with CamScanner

प्रकुपित हुए दोष अश्रुमार्ग से कनीनक संधि में जाकर वेदनारहित स्राव करते ह। इन स्रावा का कुछ विद्वान नेत्रनाड़ी कहते हैं।

ये चार प्रकार के होते हैं–

1. कफास्राव 2. रक्तास्राव 3. पित्तास्राव 4. पूयास्राव

पूयास्राव

पाकः सन्धौ संस्रवेद् यश्च पूयं पूयास्रावो नैकरुपः प्रदिष्ट। (सु.उ.त. 2/6)

संधि प्रदेश में पाक होकर पूय का स्राव होता है उसे पूयास्राव कहते हैं तथा वह अनेक रूप का होता है

पूयास्रावे मलाः सास्रा वर्त्मसन्धेः कनीनकात्।

स्रावयन्ति मुहुः पूयं सास्रं त्वङ्मांसपाकतः।। (अ. हृ. उ. 10/6)

पूयास्राव में रक्त सहित दोष कनीनक संधि से त्वचा और मांस के पाक से बार-बार रक्तमिश्रित पूय स्रवित करते हैं।

यह त्रिदोषज असाध्य व्याधि है।

श्लेष्मास्राव

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्यः श्लेष्मास्रावो नीरुजः सः प्रदिष्टः।। (सु.उ.त. 2/6)

जो स्राव श्वेत, गाढ़ा, पिच्छिल तथा वेदनारहित हो वह श्लेष्मास्राव है।

कफात् कफास्रवे श्वेतं पिच्छिलं बहलं स्रवेत्।। (अ.हृ.उ. 10/2)

कफ के कारण श्वेत, पिच्छिल और गाढ़ा स्राव होता है वह कफास्राव है।

यह कफज असाध्य व्याधि है।

रक्तास्राव

रक्तास्रावः शोणितोत्थः सरक्तमुष्णं नाल्पं संस्रवेन्नातिसान्द्रम्। (सु.उ.त. 2/7)

रक्त के कारण रक्तयुक्त, गरम, बहुत परिमाण में, पतला स्राव निकलता है।

रक्तात् रक्तास्रवे ताम्रं बहूष्णं चाश्रु संस्रवेत्।। (अ.हृ.उ. 10/4)

रक्त के कारण ताम्र वर्ण के, परिमाण में अधिक, गरम अश्रु बहते हैं, इसको रक्तास्राव कहते हैं।

यह रक्तज असाध्य व्याधि है।

पित्तास्राव

पीताभासं नीलमुष्णं जलाभं पित्तास्रावः संस्रवेत् संधिमध्यात्।। (सु.उ.त. 2/7)

पीले वर्ण का, नील वर्ण का, उष्ण और जल के समान पतला, संधि के मध्य से जो स्राव निकलता है, वह पित्तास्राव है।

यह पैत्तिक असाध्य व्याधि है।

वाग्भट ने इसका वर्णन नहीं किया है।

आचार्य वाग्भट ने स्राव चार प्रकार का माना है परंतु उन्होंने पित्तास्राव के बदले जलास्राव का वर्णन किया है।

जलास्राव

वायुः क्रुद्धः सिराःप्राप्य जलाभं जलवाहिनीः।

अश्रुं स्रावयते वर्त्मशुक्लसन्धेः कनीनकात्।।

तेन नेत्रं सरुग्रगशोफं स्यात्स जलास्रवः। (अ.हृ.उ. 10/1)

कुपित वायु जलवाहिनी सिराओं में पहुंच कर वर्त्म और शुक्ल की संधि और कनीनक संधि से जल के समान अश्रु को बहाती है। नेत्र में वेदना, लालीपन और सूजन होती है। इसको जलास्राव कहते हैं।

यह वातज असाध्य व्याधि है।

वाग्भट में इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं मिलता है।

सुश्रुत ने इसका वर्णन नहीं किया है।

आधुनिक मत से चतुर्विध स्राव का Chronic dacrocystitis के साथ साम्य किया जा सकता है।

CHRONIC DACROCYSTITIS

It is chronic suppurative inflammation of the lacrimal sac that usually results from obstruction of the nasolacrimal duct.

Etiology

- Chronic inflammation of nasal mucosa.
- Hypertrophied inferior turbinate bone.
- Extreme deviation of the nasal septum.

Age - It is commonly seen in the age of 40-50 years.

Sex - Females are predominantly affected.

Bilaterality May be unilateral or bilateral.

Social incidence - Common in lower middle class group.

Clinical Stages - It may be divided into four stages:

i) Stage of chronic catarrhal dacrocystitis

- Mild inflammation of lacrimal sac associated with blockage of NLD.
- Persistent lacrimation.
- Very little or no regurgitation of fluid through the punctum on pressure on the sac.
- On syringing the sac, fluid regurgitates through the upper punctum.

ii) Stage of lacrimal mucocele

- Swelling over sac below medial palpebral ligament.
- On pressure over the sac, mucoid fluid regurgitates through the punctum.

Scanned with CamScanner

- Sometimes due to continued infection, both the canaliculi are blocked and the regurgitation test is negative and large flu ant swelling is seen at the inner canthus and the condition is known as encysted mucocele.

iii) Stage of chronic suppurative dacrocystitis

- On pressure over the sac, there is regurgitation of mucopurulent material through the punctum.

iv) Stage of chronic fibrotic sac

- Low grade repeated infections for a prolonged period results in small fibrotic sac due to thickening of mucosa.

Complications

- Non healing corneal ulcer or hypopyon corneal ulcer.
- Acute dacrocystitis.

Treatment

- Repeated syringing of the NLD and frequent instillation of antibiotic drops is indicated in recent cases.

Dacrocystectomy (DCT): A complete excision of the lacrimal sac.

Dacrocystorhinostomy: It is nasal drainage operation. It has the advantage over DCT as there is no epiphora postoperatively.

4.1.7 पर्वणिका

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना रक्ताजज्ञेया पर्वणी वृतशोफा। (सु.उ.त. 2/8)

शुक्लकृष्णगत संधि में ताम्र वर्ण के पतले, गोल शोथ जिसमें दाह व शूल होता है को पर्वणी कहते हैं। यह रक्तज साध्य व्याधि है।

वर्त्मसन्ध्याश्रया शुक्ले पिटिका दाहशूलिनी।
ताम्रा मुद्गोपमा भिन्ना रक्तं स्रवति पर्वणी॥ (अ.हृ.उ. 10/5)

वर्त्म संधि में आश्रित शुक्ल भाग में दाह, शूल , ताम्र वर्ण की, मूंग के बराबर पिड़िका को पर्वणी कहते हैं तथा फूटने पर इसमें से रक्त बहता है।

चिकित्सा

यह छेद्य साध्य व्याधि है।

सन्धौ संस्वेद्य शस्त्रेण पर्वणीकां विचक्षणः। उत्तरे च त्रिभागे च बडिशेनावलम्बिताम्॥
छिन्द्यात् ततोऽर्द्धमग्रे स्यादश्रुनाडी ह्यतोऽन्यथा। प्रतिसारणमत्रापि सैन्धवक्षौद्रमिष्यते॥
लेखनीयानि चूर्णानि व्याधिशेषस्य भेषजम्॥ (सु.उ.त. 15/23-24)

शुक्लकृष्णगत संधि में स्वेदन के पश्चात् बडिश शस्त्र से आगे वाले तृतीयांश भाग को पकड़कर खींचकर रखें, फिर अग्रभाग के आधे भाग को शस्त्र से काट दें। अधिक काटने पर अश्रुनाड़ी क्षत होने का भय रहता है। शेष भाग पर सैन्धव लवण और मधु से प्रतिसारण करें। फिर भी कुछ अंश शेष रह जाए तो लेखनीय चूर्णों का अंजन व प्रतिसारण करना चाहिए।

वाग्भट ने भी सुश्रुत के समान चिकित्सा क्रम बताया है।

पर्वणी बडिशेनात्ता बाह्यसन्धित्रिभागतः।
वृद्धिपत्रेण वधर्याऽर्धे स्यादश्रुगतरन्यथा॥
चिकित्सा चार्मवत्क्षौद्रसैन्धवप्रतिसारिता। (अ. हृ. उ. त. 11/3)

पर्वणी के एक तिहाई भाग को बडिश से पकड़कर वृद्धि पत्र से आधे भाग को काट दें। अधिक छेदन से अश्रुनाड़ी होती है। अर्म की भाँति चिकित्सा करें तथा मधु, सैंधव से प्रतिसारण करें।

आधुनिक मत से इसे Phlyctenular Conjunctivitis कह सकते हैं।

PHLYCTENULAR CONJUNCTIVITIS

It is an allergic reaction of the conjunctiva caused by endogenous protein characterized by formation of bleb or nodule near the limbus.

Etiology

1. Endogenous bacterial protein such as tuberculosis.
2. Upper respiratory tract infection.

Predisposing factors

1. **Age** - It is common in children between 4 and 14 years.
2. **Sex** - Incidence is higher in females than males.
3. Unhygienic living conditions and malnutrition are important predisposing factors.

Symptoms

- Discomfort
- Irritation
- Itching
- Reflex lacrimation

Signs

- Pinkish white nodule varying from 1 to 3 mm in size usually at the limbus
- Number of phlycten may be single or multiple.
- Bulbar conjunctiva surrounding the phlycten becomes congested.
- Lacrimation.
- There may be associated enlarged tonsils and cervical glands.

Clinical course

1. **Stage of nodule formation:** It is characterized by infiltration of leucocytes into deeper layer of conjunctiva leading to nodule formation. The central cells are polymorphonuclear and peripheral cells are lymphocytes. The surrounding blood vessels dilate.
2. **Stage of ulceration:** This stage is characterized by necrosis at the apex of nodule and ulcer is formed.
3. **Stage of Granulation:** Floor of ulcer becomes covered by granulation tissue.
4. **Stage of Healing:** Healing usually occurs with minimum scarring.

Scanned with CamScanner

Clinical Types

1. **Phlyctenular conjunctivitis :** It is most commonly seen variety when the conjunctiva alone is involved.
2. **Phlyctenular kerato conjunctivitis :** Both conjunctiva and cornea are involved.
3. **Phlyctenular Keratitis :** Cornea alone is involved. It is very rare form.

Treatment

1. Steroid eye drops several times a day.
2. Frequent instillation of antibiotic eye drops.
3. 1% atropine eye ointment should be applied once daily in case of involvement of cornea.
4. Improvement of general health and nutrition is necessary.
5. Treatment of the underlying cause e.g. tuberculosis, adenoids, tonsillitis.

Differential diagnosis

- Episcleritis
- Scleritis
- Conjunctival foreign body granuloma.

4.1.8. अलजी

जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः॥ (सु. उ. त. 2/8)

अलजी में कृष्णशुक्ल संधि में मोटा शोफ होता है तथा इसके लक्षण पर्वणी के समान होते हैं।

अलजी त्रिदोषज असाध्य व्याधि है।

कनीनस्यान्तरलजी शोफोरुक्तोददाहवान्। (अ.हृ.उ. 10/8)

कनीनक संधि में वेदना, तोद, दाह युक्त जो शोफ होता है उसे अलजी कहते हैं।

असाध्य व्याधि होने से सुश्रुत और वाग्भट ने इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया है।

इसके लक्षणों का साम्य पर्वणी के साथ होने से आधुनिक मत से इसे Phlyctenular conjunctivitis कह सकते हैं।

4.1.9 कृमिग्रन्थि

क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः क्रिमयः संधिजाताः।
नानारूपा वर्त्मशुक्लस्य सन्धौचरन्तोऽन्तर्नयनं दूषयन्ति॥ (सु.उ.त. 2/9)

वर्त्म तथा पक्ष्म की संधि में तथा वर्त्म और शुक्लमंडल की सन्धि में अनेक प्रकार के कृमि पड़कर कण्डू तथा ग्रन्थियां पैदा कर देते हैं, उसे क्रिमिग्रन्थि कहते हैं। कृमि वर्त्म तथा शुक्लमण्डल की सन्धि को खाते हुए नेत्र के आभ्यन्तरिक भागों को दूषित कर देते हैं।

यह कफज साध्य व्याधि है।

अपाङ्गे वा कनीने वा कण्डूषापक्ष्मपोटवान्॥ पूयास्रावी कृमिग्रन्थिर्ग्रन्थिः कृमियुतोऽर्तिमान्।
(अ.हृ.उ. 10/9)

अपाङ्ग या कनीनक संधि में कण्डू, जलन तथा पक्ष्म पतन युक्त पूयस्रावी ग्रन्थि होती है, इसमें कृमि पड़ जाते है और पीड़ा होती है, इसको कृमिग्रन्थि कहते हैं।

भावप्रकाश ने इसका जन्तुग्रन्थि के नाम से वर्णन किया है।

चिकित्सा

सम्यक् स्विन्ने कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम्। त्रिफलातुत्थकासीससैन्धवैश्च रसक्रिया॥
(सु.उ.त. 14/8)

भली प्रकार से स्वेदन करके तत्पश्चात् भेदन करना चाहिए। त्रिफला, तुत्थ, कासीस, सैंधव लवण को रसक्रिया करके आंखों में प्रयुक्त करें।

कृमिग्रन्थि करीषेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च॥ त्रिफलाक्षौद्र कासीससैन्धवैः प्रतिसारयेत्।
(अ.हृ.उ. 11/6)

कृमिग्रन्थि में सूखे उपलों से स्वेदन देकर, तत्पश्चात् भेदन करके लेखन करें और त्रिफला, मधु, कासीस और सैंधव लवण से प्रतिसारण करें।

आधुनिक मत से इसे Blepharitis कह सकते हैं।

The eye-lids are two movable folds of tissue situated above and below the front of each eye. When the eye is open, the upper lid covers about one-sixth of cornea and the lower lid just touches the limbus. The two lids meet each other at medial and lateral angles called inner and outer canthus. Medial canthus is about 2 mm higher than lateral canthus. Palpebral aperture is the elliptical shape between the upper and lower lid.

The lid margin: It is thick border with rounded anterior and sharp posterior margin. Grey line splits the lid into anterior and posterior margins of the lid. The eye-lashes orginate anterior to the grey-line and ducts of meibomian glands are located posterior to the grey line.

Each eye-lid consists (from anterior to posterior) of the following layers :

1. **The skin layer :** It is elastic and is the thinnest in the body. Underneath the skin is loose areolar tissue which does not contain any fat.
2. **Subcutaneous areolar tissue :** It is very loose and contains no fat. It is thus readily distended by oedema or blood.
3. **Layer of Striated muscle :-** It consist of following muscles :
   (i) **Orbicularis oculi muscle:** It forms an oval sheet across the eye-lids. It closes the eye-lids and is supplied by zygomatic branch of facial nerve. Therefore, in paralysis of facial nerve there occurs lagophthalmos.
   (ii) **Levator palpebrae superioris [LPS]:** It is present only in upper lid. It arises from the apex of the orbit, above the annulus of Zinn and is inserted by three parts; on the skin of lid, anterior surface of tarsal plate and conjunctiva of superior fornix. It raises the upper lid. It is supplied by branch of the oculomotor nerve.
4. **Submuscular areolar tissue :-** It is layer of loose connective tissue. The nerves and vessels lie in the layer. Anaesthetic agents are injected in this layer for lid surgery.
5. **Fibrous layer:** It forms the frame work of the lids and consists of two parts:

Scanned with CamScanner

(i) **Tarsal plates:** They are two plates of dense connective tissue, one for each lid which give shape and firmness to the lids. The upper and lower tarsal plates join each other at medial and lateral canthi.

(ii) **Septum orbitale (Palpebral fascia):** It is thin membrane of the connective tissue attached centrally to the tarsal plate.

6. **Layer of non-striated muscle fibres :-** It consists of the palpebral muscle of Muller which help in the retraction of eye-ball and elevation of the upper lid.

7. **Conjunctiva :** It is formed by the palpebral conjunctiva.

Glands of the eye-lid

1. **Meibomian glands:** These are also known as tarsal glands and are present in stroma of tarsal plate in vertical rows. They are about 30-40 in the upper lid and about 20-30 in the lower lid. They are modified sebaceous glands. Their ducts open at the lid margins.

2. **Glands of Zeis:** They are sebaceous glands which open into the follicles of eye-lashes.

3. **Glands of Moll:** They are modified sweat glands situated near the hair follicles. The ducts open into either ducts of gland of zeis or directly into the follicles of the cilia.

4. **Accessory lacrimal glands of Wolfring:** These are present near the upper border of the tarsal plate.

Lymphatic drainage

The lymphatics from the outer half of the lids drain into the pre-auricular lymph nodes and those from the inner half to the sub-maxillary lymph nodes.

Nerve supply

Sensory supply: It is derived from the branches of the trigeminal nerve.

Motor supply: By facial, oculomotor and sympathetic nerves.

BLEPHARITIS

Blepharitis is the chronic inflammation of the lid margins.

Types

- Seborrhoeic or squamous blepharitis.
- Staphylococcal or ulcerative blepharitis.
- Mixed blepharitis.
- Posterior blepharitis.
- Parasitic blepharitis.

Clinically there are two types of blepharitis : squamous and ulcerative.

Squamous blepharitis

It is usually associated with seborrhoea of the scalp. In it; gland of zeis secrete abnormal excessive neutral lipids which are split by corynebacterium acne into irritating free acids.

Causes

- Metabolic factors.
- Eye strain.
- Unhygienic conditions.
- Exposure to smoke, dust and wind.
- Use of cosmetics on the lid-margins.

Symptoms

- Discomfort in the eyes.
- Irritation.
- Occasional lacrimation.
- Deposition of whitish material at the lid margin.

Signs

- Accumulation of white scales like dandruff on the lid margin.
- On removing these scales, lid margin appears hyperaemic.
- Falling of the eye-lashes but they are replaced quickly without distortion.
- The lid margin may be thickened.

Treatment

- Improvement of the general health
- Associated seborrhoea of the scalp should be treated.
- Removal of scales from the lid margins with the help of luke warm solution of 3% soda bicarb or baby shampoo.
- Correction of error of refraction.
- Treatment of associated conditions like chronic conjunctivitis, chronic dacrocystitis etc.
- Frequent application of antibiotic and steroid eye ointment at the lid margins.

Ulcerative blepharitis

It is chronic staphylococcal infection of the lid margin characterized by the deposition of yellow crusts at the roots of eyelashes.

Eye strain and Refractive errors are known risk factors. The condition mey be secondary to chronic conjunctivitis or dacrocystitis.

Symptoms

- Chronic irritation
- Mild lacrimation
- Photophobia
- Itching
- Gluing of cilia

Scanned with CamScanner

Signs

- Yellow crusts deposited at the root of eye-lashes which glue them together.
- On removing the crusts, small ulcers appear around the base of lashes which bleed easily.
- In between the crusts, anterior lid margin may show dilated blood vessels (rosettes).
- Falling of the eye-lashes; which are not replaced or when replaced become misdirected.

Complications

- Madarosis (absence or sparseness of eye lashes)
- Trichiasis (misdirected eye lashes)
- Poliosis (greying of eye-lashes)
- Tylosis (Hypertrophy of lid margin)
- Ectropion (eversion of the lid margin)
- Recurrent stye.

Treatment

- Crusts should be removed with the solution of 3% soda bicarb.
- Antibiotic eyedrops 3-4 times a day.
- Avoid fingering of the lids
- Treat the underlying cause.

Posterior Blepharitis

Also known as meibomitis; is dysfunction of the meibomian gland.

Etiology

Age: Usually seen in middle aged persons.

Symptoms

- White frothy (foam like) secretion on the lid margins and canthi (meibomian seborrhoea). Rest of symptoms are same.

Signs

- On eversion of the eye-lids, vertical yellowish streaks shining through the conjunctiva are seen.
- At the lid margins, openings of the meibomian glands become prominent with thick margins.

Treatment

- Application of antibiotic steroid ointment at the lid margins.
- Repeated vertical massage of the lids.

Mixed blepharitis

It is characterized by mixed symptoms of both squamous and ulcerative blepharitis.

Parasitic blepharitis

Also known as blepharitis acrica.

Causative agent

- Demodex folliculorum
- Phthiriasis palpebram

Clinical features

- Presence of nits at the lid margins.
- Lid margin is red
- Irritation.
- Discomfort.

Signs

- Mechanical removal of the nits with forcep.
- Application of antibiotic ointment at lid margins
- Delousing of the patient family members, bedding and clothing.

क्र.स.	व्याधि	दोष	चिकित्सा
1.	पूयालस	त्रिदोष	वेधन
2.	उपनाह	कफ	भेदन
3.	पर्वणी	रक्त	छेदन
4.	कृमिग्रन्थि	कफ	भेदन
	चतुर्विध स्राव		**असाध्य**
5.	कफास्राव	कफ	असाध्य
6.	रक्तस्राव	रक्त	असाध्य
7.	पितास्राव	पित्त	असाध्य
8.	पूयास्राव	त्रिदोष	असाध्य
9.	अलजी	सन्निपात	असाध्य

Scanned with CamScanner

अध्याय-5

वर्त्मगत रोग

5.1 वर्त्मगत रोग संख्या

उत्सङ्गन्यथ कुम्भीका पोथक्यो वर्त्मशर्करा। तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जननामिका॥
बहलं वर्त्म यच्चापि व्याधिवर्त्मावबन्धकः। क्लिष्टकर्दमवर्त्माख्यौ श्याववर्त्म तथैव च॥
प्रक्लिन्नमपरिक्लिन्नं वर्त्म वातहतन्तु यत्। अर्बुदं निमिषश्चापि शोणितार्शश्च यत् स्मृतम॥
लगणो विसनामा च पक्ष्मकोपस्तथैव च। एकविंशातिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः॥

(सु.उ.त. 3/5-8)

वर्त्मरोग 21 प्रकार के हैं-

1. उत्सङ्गनी	2. कुम्भिका	3. पोथकी	4. वर्त्मशर्करा
5. अर्शोवर्त्म	6. शुष्कार्श	7. अञ्जननामिका	8. बहलवर्त्म
9. वर्त्मबन्धक	10. क्लिष्टवर्त्म	11. कर्दमवर्त्म	12. श्यायवर्त्म
13. प्रक्लिन्नवर्त्म	14. अप्रक्लिन्नवर्त्म	15. वातहतवर्त्म	16. अर्बुद
17. निमेष	18. शोणितार्श	19. लगण	20. विसवर्त्म
21. पक्ष्मकोप			

वाग्भट ने वर्त्म में होने वाले रोगों की संख्या 24 कही है-

1. कृच्छ्रोन्मीलन	2. निमेष	3. वातहत	4. कुम्भीपिड़िका
5. पित्तोत्क्लिष्ट	6. पक्ष्मशात	7. पोथकी	8. कफोत्क्लिष्ट
9. लगण	10. उत्संग	11. उत्क्लिष्ट	12. वर्त्मार्श
13. अञ्जननामिका	14. बिसवर्त्म	15. रक्तोत्क्लिष्ट	16. श्यायवर्त्म
17. श्लिष्टवर्त्म	18. सिकतावर्त्म	19. वर्त्मकर्दम	20. बहलवर्त्म
21. कुकूणक	22. पक्ष्मोपरोध	23. अलजी	24. अर्बुद

सं.	व्याधि (सुश्रुत-२१)	वाग्भट-२४	दोष (सुश्रुतानुसार)	चिकित्सा
1.	उत्सङ्गनी	उत्संग	त्रिदोष, रक्त (वा)	लेखन
2.	कुम्भीका	कुम्भीका	त्रिदोष, पित्त (वा)	लेखन
3.	पोथकी	पोथकी	कफ	लेखन
4.	वर्त्मशर्करा	सिक्तावर्त्म	त्रिदोष	लेखन
5.	अर्शोवर्त्म	अर्शोवर्त्म	त्रिदोष	छेदन
6.	शुष्कार्श	-	त्रिदोष	छेदन
7.	अंजननामिका	अंजननामिका	रक्त	भेदन
8.	बहलवर्त्म	बहलवर्त्म	त्रिदोष	लेखन
9.	वर्त्मबन्ध	-	त्रिदोष	लेखन
10.	क्लिष्टवर्त्म	-	रक्त	लेखन
11.	कर्दमवर्त्म	कर्दमवर्त्म	त्रिदोष	लेखन
12.	श्यायवर्त्म	श्यायवर्त्म	त्रिदोष	लेखन
13.	प्रक्लिन्नवर्त्म	-	कफ	अशस्त्रकृत
14.	अप्रक्लिन्नवर्त्म	-	त्रिदोष	अशस्त्रकृत
15.	वातहतवर्त्म	वातहतवर्त्म	वात	असाध्य
16.	अर्बुद	अर्बुद	त्रिदोष	छेदन
17.	निमेष	निमेष	वात	असाध्य
18.	शोणितार्श	-	रक्त	असाध्य
19.	लगण	लगण	कफ	भेदन
20.	विसवर्त्म	विसवर्त्म	त्रिदोष	भेदन
21.	पक्ष्मकोप	पक्ष्मोपरोध	त्रिदोष	भेषज, अग्नि व क्षार, शस्त्र कर्म
22.	-	उत्क्लिष्ट	त्रिदोष	लेखन
23.	-	पित्तोत्क्लिष्ट	पित्त	लेखन
24.	-	रक्तोत्क्लिष्ट	रक्त	लेखन
25.	-	कफोत्क्लिष्ट	कफ	लेखन
26.	-	श्लिष्ट वर्त्म	-	लेखन
27.	-	अलजी	-	भेदन कर्म
28.	-	पक्ष्मशात	पित्त	रक्तमोक्षण, नस्य
29.	-	कुकूणक	त्रिदोष	अञ्जन, रक्तमोक्षण
30.	-	कृच्छ्रोन्मीलन	वायु	नस्य, धूमपान, अञ्जन

वर्त्म रोगों की सम्प्राप्ति

पृथग्दोषाः समस्ता वा यदा वर्त्मव्यपाश्रयाः। सिरा व्याप्यावतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिकमूर्च्छिताः॥
विवर्द्धयं मांस रक्तञ्च तद्रा वर्त्मव्यपाश्रयान्। विकाराञ्जनयन्त्याशु नामस्तान्निबोधत॥

(सु.उ.त. 3/3-4)

प्रकुपित दोष पृथक-पृथक या सभी एक साथ मिलकर वर्त्म स्थित सिराओं को व्याप्त कर वर्त्म में अवस्थान करते हैं तथा वहां के मांस और रक्त को बढ़ाकर वर्त्म भाग में रोग उत्पन्न करते हैं।

Scanned with CamScanner

5.1.1 उत्सङ्गिनी

अभ्यन्तरमुखी बाह्योत्सङ्गेऽधो वर्त्मनश्च या।
विज्ञेयोत्सङ्गिनी नाम तदूपपिडिकाचिता।। (सु.उ.त. 3/6)

अधोवर्त्म के उत्सङ्ग (गोद या उभार) में, भीतर की ओर जिसका मुख हो किन्तु बाहर की ओर उभरी हुई हो इन्हीं लक्षणों वाली एक या अनेक पिड़िका को उत्सङ्गिनी कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

रक्ता रक्तेन पिटिका यत्तुल्यपिटिकाचिताः उत्संगाख्याः- (अ.हृ.उ. 8/12)

रक्त के कारण वर्त्म में लाल वर्ण की पिड़िका उत्पन्न हो जाती है और ऐसी अनेक पिड़िकाओं से व्याप्त रहती है, उसे उत्संग कहते हैं।

विदेह मतानुसार पिड़िका के फूटने पर मुर्गे के अंडे के सदृश स्राव निकलता है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने उत्सङ्गिनी को लेखन साध्य व्याधि कहा है।

उत्संगपिटकां अंजननामिकां च भित्वा निष्पीड्य चोल्लिखितां तगरैलासैन्धावनेपाली चूर्णेन सक्षौद्रेण प्रतिसारयेत्। हरिद्रामधुक पटोल लोध्रः समाक्षिकः परिषेकः। (अ. सं. उ. 12/11)

उत्संग और अंजननामिका में भेदन और पीड़न के बाद लेखन करके तगर, एला, सैन्धव, मनः शिला और मधु को मिलाकर प्रतिसारण करें तथा हरिद्रा, मधुक, पटोल, लोध्र को मधु में मिलाकर परिषेक करें।

लेखन विधि

नव येऽभिहिता लेख्याः सामान्यास्तेष्वयं विधिः। स्निग्धवान्तविरिक्तस्य निवाततपसद्यनि।।
आपैर्दृढं गृहीतस्य वेश्मन्युत्तानशायिनः।। सुखोदकप्रतप्तेन वाससा सुसमाहितः।
स्वेदयेद्वर्त्म निर्भुज्य वामाङ्गुष्ठाङ्गुलिस्थितम्। अङ्गुल्यङ्गुष्ठकाभ्यान्तु निर्भुग्नं वर्त्म यत्न तः।
प्लोतान्ताराभ्यां न यथा चलति संसतेऽपि वा।। ततः प्रमृज्य प्लोतेन वर्त्म शस्त्रपदाङ्कितम्।
लिखेच्छस्त्रेण पत्रैर्वा ततो रक्ते स्थिते पुनः।। स्विन्नं मनोहृवाकासीसव्योषार्द्राञ्जनसैन्धवैः।
श्लक्ष्णपिष्टैः समाक्षीकैः प्रतिसार्य्योष्णवारिणा। प्रक्षाल्य हविषा सिक्तं व्रणवत् समुपाचरेत्।।
स्वेदावपीडप्रभृतींस्त्रयहादूर्ध्वं प्रयोजयेत्। व्यासतस्ते समुद्दिष्टं विधानं लेख्यकर्मणि।।
(सु. उ. त. 13/3-8)

लेख्य रोग नौ हैं। उनमें सामान्य चिकित्सा विधि यह है; रोगी को स्नेहन कराके; वमन करावें तत्पश्चात् विरेचन देकर निवात स्थान पर उत्तान लिटा दें। शुभचिन्तक दृढ़ता पूर्वक पकड़ लें तत्पश्चात् वाम हाथ के अंगुष्ठ और अंगुली से वर्त्म को उलटा करके सुखोष्ण जल में भिगोए वस्त्र से वर्त्म का स्वेदन करें। तत्पश्चात् उलटे हुए वर्त्म को वस्त्रान्तरित अंगुली और अङ्गुष्ठ से पकड़े जिससे वर्त्म हिले नहीं पश्चात् वर्त्म को प्लोत (वस्त्र) से पोंछकर शस्त्र से प्रच्छान कर मण्डलाग्र शस्त्र से लेखन करना चाहिए। फिर लेखन द्वारा स्रुत होने वाले रक्त के स्थिर होने पर स्वेदन करके मैनसिल, कासीस, सोंठ, मरिच, पिप्पली, रसांजन, सैन्धवलवण इनमें शहद मिला कर प्रतिसारण करें तत्पश्चात् मन्दोष्ण पानी से उस वर्त्म का प्रक्षालन कर घृत से सिञ्चित करके व्रणवत उपचार करें। तीन दिन के बाद नेत्र का स्वेदन, अवपीड़न नस्यादि करें। यह लेखन कर्म की विस्तार से विधि है।

सम्यक लेख्यवर्त्म लक्षण

असृगास्रावरहितं कण्डूशोफ विवर्जितम्। समं नखनिभं वर्त्म लिखितं सम्यगिष्यते।।
(सु. उ. त. 13/9)

रक्तस्राव तथा अन्य स्रावों से रहित, कण्डू तथा शोफ से रहित होना तथा वर्त्म का समतल होना तथा नख के समान वर्ण होना, यह सम्यग्लिखित वर्त्म के लक्षण हैं।

दुर्लिखितवर्त्मलक्षण

रक्तमक्षि स्रवेत् स्कन्नं क्षताच्छस्रकृताद् ध्रुवम्।। रागशोफपरिस्रावास्तिमिरं व्याध्यनिर्जयः।
वर्त्म श्यावं गुरु स्तब्धं कण्डूहर्षोप देहवत्।। नेत्रपाकमुदीर्णं वा कुर्वीताप्रतिकारिणः।
एतद्दुर्लिखितं ज्ञेयं स्नेहयित्वा पुनर्लिखेत्।। (सु.उ.त. 13/10-12)

आंख से रक्त बहता है तथा रक्त गाढ़ा होता है तथा नेत्र में लालिमा और शोथ हो जाता है, नेत्र से स्राव बहता है, आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। व्याधि शान्त नहीं होती। वर्त्म श्याव वर्ण का, भारी, स्तब्ध, कण्डूयुक्त, हर्षान्वित तथा कीचड़युक्त होता है। उचित चिकित्सा न करने पर नेत्रपाक हो जाता है। यह दुर्लिखित वर्त्म के लक्षण है। इनके होने पर स्नेहन करके लेखन कर्म करना चाहिए।

अतिलिखितवर्त्म लक्षण

व्यावर्त्तते यदा वर्त्म पक्ष्म चापि विमुह्यति। स्यात् सरुक् स्रावबहुलं तदतिस्रावितं विदुः।।
स्नेहस्वेदादिरिष्टः स्यात् क्रमस्तत्रानिलापहः।। (सु.उ.त. 13/13)

वर्त्म का व्यावर्त्तत होना अर्थात् अपने स्थान से हिलना, पक्ष्म विमुह्यति हो जाए अर्थात् पक्ष्म के बालों का टूटना, वेदना और स्राव की बहुलता होना अतिलिखित वर्त्म के लक्षण है। इसकी चिकित्सा में स्नेहन, स्वेदन तथा वातनाशक क्रम करना चाहिए।

आधुनिक मत से उत्सङ्गिनी को Chalazion कह सकते है।

CHALAZION

It is also called tarsal or meibomian cyst. It is chronic inflammatory granuloma of the meibomian gland. Chalazion is a painless, round, smooth swelling which can be palpated by passing of finger over the lid.

Etiology

- Habitual rubbing of the eyes
- Muscle imbalance
- Refractive error
- Chronic blepharitis

Symptoms

- Feeling of heaviness in the lids
- Mild irritation
- A large chalazion on the upper lid may press cornea and cause blurred vision.

Signs

- Small cystic or hard swelling is seen on lid a little away from the lid margin.
- On everting the lid, the tarsal conjunctiva over the swelling appears purple.
- Chalazion may be single or multiple.

Scanned with CamScanner

Treatment

- A very small chalazion may undergo resolution.
- Hot compresses
- Topical antibiotic and anti-inflammatory drops.
- Injection of steroid (Triamcinolone) is reported to cause resolution in about 50% cases.
- Bigger chalazion should be incised vertically through the tarsal conjunctiva after application of local anaesthesia and contents are curetted out with chalazion scoop.
- To avoid recurrence, its cavity should be cauterised with carbolic acid.

5.1.2 कुम्भीकपिड़का

कुम्भीकबीजप्रतिमाः पिड़का यास्तु वर्त्मजाः। आध्मापयन्ति भिन्ना याः कुम्भीकपिडकास्तुताः॥

(सु.उ.त. 3/10)

वर्त्म पर कुम्भी (अनार) के बीज के स्वरूप की पिड़काएं उत्पन्न हो जाती है जोकि फूटने के बाद पुनः फूल जाती हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

कृष्णाः पित्तेन बहव्योऽन्तर्वर्त्म कुम्भीकबीजवत्। आध्मायन्ते पुनेर्भिन्नाः पिटिकाः कुम्भिसंज्ञिकाः॥

(अ.हृ.उ. 8/6)

पित्त के कारण कृष्ण वर्ण की बहुत सी पिड़िकाएं पलक के अन्दर हो जाती हैं; यह अनार के बीज के सदृश होती है तथा फूटने पर फूल जाती है। इसको कुम्भीक संज्ञा दी गई है।

चिकित्सा

कुम्भीकावर्त्म लिखितं सैंधवप्रतिसारितम्। यष्टीधात्रीपटोलिनां क्वाथेन परिषेचयेत्॥

(अ.हृ.उ 9/2)

कुम्भीकावर्त्म में लेखन करके सैंधवलवण से प्रतिसारण करें। मुलहठी, आँवला और पटोल के क्वाथ से परिषेचन करें।

सुश्रुत ने कुम्भीकपिड़िका में लेखन कर्म करने को कहा है।

आधुनिक मत से इसे Granuloma arising from meibomian gland कह सकते हैं।

5.1.3 पोथकी

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः। पिडकाश्च रुजावत्यः पोथक्य इति संज्ञिताः॥

(सु.उ.त. 3/11)

वर्त्म प्रदेश में लाल सरसों के सदृश पिड़काएं उत्पन्न होती हैं जिनमें से स्राव बहता है तथा वह कण्डू, रोपन और पीड़ा से युक्त होती हैं।

यह कफज साध्य व्याधि है।

पोथक्यः पिटिकाः श्वेताः सर्षपाभा घनाः कफात्॥ शोफोपदेहरुक्कण्डूपिच्छिलाश्रुसमन्विताः॥

(अ.हृ.उ. 8/9)

कफ के कारण श्वेत सरसों के आकार की, घनी, शोफ और मैल युक्त, पीड़ा, कण्डू और पिच्छिल अश्रु से युक्त जो पिड़िकायें होती हैं, उनको पोथकी कहते हैं।

चिकित्सा

सुश्रुत ने पोथकी में लेखन कर्म बताया है।

पोथकीलिंखिताः शुण्ठीसैंधवप्रतिसारिताः। उष्णाम्बुक्षालिताः सिञ्चेत् खदिराढकिशिग्रुभिः॥
अप्सिद्धैर्दिनिशाश्रेष्ठामधुकैर्वा समाक्षिकैः॥ (अ.हृ.उ. 9/21)

पोथकी में लेखन करके सोंठ तथा सैंधव से प्रतिसारण करें। गर्म पानी से धोकर खैर, अरहर, सहजन के क्वाथ से परिषेक करें अथवा हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, मुलहठी में मधु मिलाकर परिषेक करें।

आधुनिक मत से पोथकी को Trachoma कह सकते हैं।

TRACHOMA

The word Trachoma is derived from greek word meaning 'rough'. Trachoma is a contagious kerato-conjunctivitis characterised by formation of follicles, papillae and hypertrophy of the conjunctiva with subsequent cicatrical changes.

Causative Agent

Chlamydia trachomatis. Chlamydial organisms are responsible for psittacosis, inclusion conjunctivitis, lymphogranuloma venereum, pneumonia and genital tract infections (PLT) group. It affects the epithelial cells of the cornea and the conjunctiva and produces inclusion bodies known as Halberstaedter Prowazek inclusion bodies (H.P. bodies). The disease was previously known as Egyptian ophthalmia. The disease may result in blindness. Approximately 20,000,000 persons have been blinded by this disease.

Etiology

- **Age:** Children are usually affected; otherwise there is no age limit.
- Usually poor classes are affected due to unhygienic conditions.
- Over-crowding, abundant fly population, insanitary conditions and poor personal hygiene aids to spread of the infection.

Mode of infection

Direct spread: Through air borne or water borne modes.

Vector transmission: Through flies.

Material transfer: Spreads through contaminated fingers of doctors, paramedical staff and use of common towel, handkerchief and surma rods.

Incubation period: 6 to 12 days.

Symptoms

- Mild irritation
- Foreign body sensation.
- Slight stickiness of the lids.
- Mild itching.
- In chronic stage, cornea is involved causing pain, lacrimation and photophobia.

Scanned with CamScanner

Signs

Conjunctival

- Marked congestion of the palpebral and bulbar conjunctiva.
- Formation of papillae in the upper tarsal conjunctiva and the fornix. They are formed by hypertrophic folded epithelium with a core of blood vessels. The conjunctiva looks velvetty in appearance.
- Follicle formation is a characteristic lesion of trachoma. The follicles are aggregates of lymphocytes in the adenoid layer.
- Conjunctival scarring may be linear or star shaped. A fine linear scar in the sulcus subtarsalis is known as Arlt's line.

Corneal

- Superficial keratitis may be present in the upper part.
- **Herbert's follicles:** Follicles are present near the limbus in the upper part.
- Herbert pits are oval scars left after the healing of herbert follicles in the upper limbal area.
- **Pannus:** It is lymphoid infiltration with vascularization seen in the upper part of cornea. Pannus may be progressive or regressive.

Progressive pannus: Infiltration is ahead of vascularization.

Regressive pannus (Pannus sicca): Vascularization is ahead of infiltration.

- **Corneal ulcers:** Superficial irregular ulcers may be present at the advancing edge of pannus.

Grading of Trachoma: Mc Callan classification

Mc Callan in 1908 categorized trachoma into the following four stages:

Stage I (Incipient trachoma or stage of infiltration): It is characterized by:

- Hyperaemia of palpebral conjunctiva
- Immature follicles

Stage II (Established trachoma): It includes -

- Appearance of follicles and papillae.
- Epithelial keratitis
- Pannus

Stage III (Cicatrising trachoma or stage of scarring): It includes scarring of palpebral conjunctiva

Stage IV: (Healed trachoma or stage of sequelae): It is stage of complication. They are:

(i) Entropion of the upper lid (ii) Trichiasis
(iii) Xerosis of the conjunctiva (iv) Corneal opacity
(v) Chalazion.

WHO Classification

WHO in 1987 classified the disease into the following five stages.

1. Trachomatous inflammation follicular (TF): (a) At least five or more follicles each 0.5 mm or more in diameter should be present on upper tarsal conjunctiva (b) The deep tarsal vessels should be visible through the follicles.

2. Trachomatous inflammation intense (TI): (a) Inflammatory thickening of upper tarsal conjunctiva (b) This obscures more than half of normal deep tarsal vessels.

3. Trachomatous scarring (TS): Presence of scar in upper tarsal conjunctiva.

4. Trachomatous trichiasis (TT): (a) At least one or more misdirected eyelashes rub against the eye-ball (b) Evidence of recent removal of inturned eye-lashes.

5. Corneal opacity (CO): Visible corneal opacity is present on the pupil.

Diagnosis (Clinical): At least set of two signs should be present out of following:
(i) Follicles or papillae (ii) Epithelial keratitis (iii) Pannus (iv) Scarring of the conjunctiva.

Treatment

- Care of personal hygiene
- Tetracycline or Erythromycin 250 mg four times a day for 3-4 weeks.
- Antibiotic eye drops 1% tetracycline 4 times a day for 6 weeks.
- Mechanical expression of follicles
- Treatment of complications
- Antitrachoma vaccine is not successful.

Blanket Antibiotic therapy: WHO suggested this in the endemic areas to minimize the infection. This includes application of 1% tetracycline eye-ointment twice daily for 5 days in week for six months.

5.1.4 वर्त्मशर्करा

पिडकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता। पिडका या खरा स्थूला सा ज्ञेया वर्त्मशर्करा॥

(सु. उ. त. 3/12)

वर्त्म प्रदेश खर, स्थूल, सूक्ष्म एवं घनी पिड़काओं से व्याप्त रहती हैं, उसे वर्त्मशर्करा कहते हैं।
यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

वाग्भट ने वर्त्मशर्करा का "सिकतावर्त्म" के नाम से वर्णन किया है।

वर्त्मनऽन्त खरा रुक्षाः पिटिकाः सिकतोपमाः। सिक्तावर्त्म- (अ. हृ. उ. 8/18)

जिसमें पलक के अन्दर रेती के समान खुरदरी, रुक्ष पिड़काएं होती हैं, उसको सिकतावर्त्म कहते हैं।

चिकित्सा

सुश्रुत और वाग्भट ने इसमें लेखन कर्म बताया है।

कुम्भीकिनीं शर्कराञ्च तथैवोत्सङ्गिनीमपि। कल्पयित्वा तु शस्त्रेण लिखेत् पश्चादतन्द्रितः॥

(सु. उ. त. 13/16)

कुम्भीकिनी वर्त्मशर्करा और उत्सङ्गिनी को प्रथम शस्त्र से काटकर तत्पश्चात् लेखन करें।

आधुनिक मत से इसे Conjunctival concretions कह सकते हैं।

Scanned with CamScanner

5.1.5 अर्शोवर्त्म

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडका मन्दवेदनाः। सूक्ष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते॥

(सु. उ. त. 3/13)

वर्त्म प्रदेश में ककड़ी के बीज के सदृश, मन्द वेदनायुक्त, सूक्ष्म तथा खर पिड़का उत्पन्न होती है, उसे अर्शोवर्त्म कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

वाग्भट ने इसका वर्णन नहीं किया है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने अर्शोवर्त्म में छेदन कर्म का उल्लेख किया है।

5.1.6 शुष्कार्श

दीर्घोऽङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणो वर्त्मसम्भवः। व्याधिरेष समाख्यातः शुष्कार्श इति संज्ञितः॥

(सु.उ.त. 3/14)

इसमें लम्बा, खुरदरा, कठिन, अतिकष्टदायक अंकुर पलक के अन्दर होता है। इसको शुष्कार्श कहते है।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

वाग्भट ने इसका वर्णन नहीं किया है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने इसमें छेदन कर्म बताया है।

आधुनिक मत से इसे Polyp of palpebral conjunctiva कह सकते हैं।

5.1.7 अंजननामिका

दाहतोदवती ताम्रा पिडका वर्त्मसम्भवा। मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका॥

(सु.उ.त. 3/15)

वर्त्म प्रदेश में ताम्र वर्ण की छोटी पिड़िका हो जाती है जिसमें दाह, तोद तथा अल्प पीड़ा होती है।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

मध्ये वा वर्त्मनोऽन्ते वा कण्डूषारुग्वती स्थिरा। मुद्गमात्राऽसृजा ताम्रा पिटिकाऽञ्जननामिका॥

(अ.हृ.उ 8/14)

रक्त के कारण ताम्र वर्ण की पिड़िका पलक के बीच में या किनारे पर होती है। यह कण्डू, जलन, पीड़ा करने वाली, स्थिर तथा मूंग के प्रमाण की होती है, इसे अंजननामिका कहते हैं।

चिकित्सा

स्विन्नां भिन्नां विनिष्पीड्यभिषगञ्जननामिकाम्। शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत्॥

रसाञ्जनमधुभ्यां तु भित्त्वा वा शस्त्रकर्मवित्। प्रतिसार्य्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखादभवैः॥

(सु.उ.त. 14/6-7)

स्वेदित कर भेदन करके पीड़न से पूय निकाल देवें तत्पश्चात् मैनसिल, इलायची, तगर, सैंधव लवण और शहद से प्रतिसारण करें।

आधुनिक मत से इसे Stye कह सकते हैं।

STYE

Stye is an acute suppurative inflammation of the Zeis gland.

Etiology

- It is caused by staphylococcus.
- It is common in young adults and debilitated persons.
- Eye strain due to muscle imbalance or refractive error.
- Chronic blepharitis
- Habitual fingering of the lids
- Metabolic factors, excessive intake of alcohol and carbohydrates also act as predisposing factors.

Symptoms

- Severe ocular pain • Mild lacrimation • Photophobia

Signs

- Swelling, redness and marked oedema of the affected lid.
- Marked tenderness at the point of inflammation on the lid margin.
- Finally, a white pus point becomes visible on the lid margin in relation to the affected cilia.

Fig. 3 - Stye

Treatment

- Hot fomentation for three-four times a day.
- Antibiotic eye drops and ointment.

Scanned with CamScanner

- Analgesics and anti-inflammatory drugs control pain and inflammation.
- Evacuation of the pus by pulling the involved eye-lash or a horizontal incision.

5.1.8 बहलवर्त्म

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडकाभिः समन्ततः। सवर्णाभिः समाभिश्च विद्याद् बहलवर्त्म तत्॥

(सु. उ. त. 3/16)

इसमें वर्त्म के चारों ओर समान वर्णयुक्त तथा समान आकृति की पिड़काएं हो जाती हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

बहलं बहलैर्मांसैः सवर्णश्चीयते समैः। (अ. हृ. उ. 8/18)

बहल वर्त्म में पलक घनी, समान वर्ण मांस से भर जाती है।

चिकित्सा

सुश्रुत और वाग्भट ने इसमें लेखन कर्म बताया है।

आधुनिक मत से इसे Multiple Chalazion कह सकते हैं।

5.1.9 वर्त्मबन्ध

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोफेन यो नरः। न समं छादयेदक्षि भवेद् बन्धःस वर्त्मनः॥

(सु. उ. त. 3/17)

जिस वर्त्म में शोथ, कण्डू और अल्प सूचीवेधवत् पीड़ा होती है तथा रोगी आँख को पूरी तौर पर बन्द नहीं कर सकता, उसको वर्त्मबन्ध कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

अष्टांगहृदयकार ने इसका वर्णन नहीं किया है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने वर्त्मबन्ध में लेखन कर्म बताया है।

आधुनिक मत से इसका साम्य Angioneurotic oedema से हो सकता है।

5.1.10 क्लिष्टवर्त्म

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च। अकस्माच्च भेवद्रक्तं क्लिष्टवर्त्म तदादिशेत्॥

(सु. उ. त. 3/18)

क्लिष्टवर्त्म मृदु, अल्प वेदना युक्त, ताम्र वर्ण का, शोथरहित तथा अकस्मात् बिना किसी कारण के रक्त वर्ण का हो जाता है।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

अष्टांगहृदय में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

चिकित्सा

इसमें लेखन कर्म किया जाता है।

वर्त्मावबन्धं, क्लिष्टञ्च बहलं यच्च कीर्त्तितम्। पोथकीश्चाप्यवलिखेत् प्रच्छयित्वाऽग्रतः शनैः॥

(सु.उ.त. 13/14)

वर्त्मबन्ध, क्लिष्ट वर्त्म, बहल वर्त्म और पोथकी में प्रच्छान करके लेखन करना चाहिए।

5.1.11 वर्त्मकर्दम

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं विदहेच्छोणितं यदा। तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः॥

(सु.उ.त. 3/19)

क्लिष्टवर्त्म में दुष्ट रक्त जब पित्त के साथ मिलकर विदग्ध होता है, तब वर्त्म में अत्यन्त क्लेद वा मैल होता है। इसको वर्त्मकर्दम कहते है।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

कृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम्॥ (अ.हृ.उ. 8/18)

कीचड़ के समान काले वर्ण के वर्त्म को वर्त्मकर्दम कहते हैं।

चिकित्सा

सुश्रुत और वाग्भट ने वर्त्मकर्दम में लेखन कर्म बताया है।

आधुनिक मत से वर्त्मकर्दम को Inflammatory condition of lids कह सकते हैं।

5.1.12 श्याववर्त्म

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम्। दाहकण्डूपरिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम्॥

(सु.उ.त. 3/20)

जिसमें वर्त्म बाहर तथा अंदर से श्याव वर्ण का हो जाए तथा उसमें शोथ, वेदना, दाह, कण्डू, क्लेद उत्पन्न हो जाएं, उसे श्याववर्त्म कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

श्याववर्त्म मलैः साग्रैः श्यावं रूक्क्लेद शोफवत्। (अ.हृ.उ.त. 8/16)

रक्तमिश्रित तीनों दोषों से जो पलक श्याव वर्ण, पीड़ा युक्त, क्लेद और शोफ से युक्त होता है, उसे श्याव वर्त्म कहते हैं।

चिकित्सा

सुश्रुत और वाग्भट ने इसमें लेखन कर्म का उल्लेख किया है।

आधुनिक मत से इसे Inflammatory condition of lids कह सकते हैं।

5.1.13 क्लिन्नवर्त्म

अरुजं बाह्यतः शूनमन्तः क्लिन्नं स्रवत्यपि। कण्डूनिस्तोदभूयिष्ठं क्लिन्नवर्त्म तदुच्यते॥

(सु.उ.त. 3/21)

Scanned with CamScanner

इसमें वर्त्म का बाह्य भाग वेदनारहित तथा शोथयुक्त किन्तु वर्त्म का आंतरिक भाग क्लेद तथा स्रावयुक्त होता है एवम् उसमें कण्डू तथा सूचीवेधवत् पीड़ा होती है।

यह कफज साध्य व्याधि है।

अष्टांगहृदयकार ने इसका वर्णन नहीं किया है।

चिकित्सा

स्नेहादिभिः सम्यगपास्य दोषांस्तृप्तिं विधायाथ यथास्वमेव।
प्रक्लिन्नवर्त्मानमुपक्रमेत सेकाञ्जनाश्च्योतननस्यधूमैः॥ (सु.उ.त. 12/47)

स्नेहन, स्वेदन, विरेचनादि कर्म करके शरीर को शुद्धि कर पश्चात् सेक, अंजन, आश्च्योतन, नस्य, धूम्रपान करें।

पत्रं फलञ्चामलकस्य पक्त्वाक्रियां विदध्यादथवाऽञ्जनार्थे॥
वंशस्य मूलेन रसक्रियां वा वर्तीकृतां ताम्रकपालपक्वाम्। (सु.उ.त. 12/49)

आंवले के पत्ते तथा फल को ताम्र पत्र में पकाकर अंजन के रूप में आंख में प्रयुक्त करें। बांस की जड़ को ताम्रपत्र में पकाकर, रसक्रिया करके वर्ति बनाकर आंख में अंजन लगावें।

आधुनिक मत से यह Allergic condition of lids में मिल सकता है।

5.1.14 अक्लिन्नवर्त्म

यस्य धौतानि धौतानि सम्बध्यन्ते पुनः पुनः। वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत्॥
(सु.उ.त. 3/22)

जिसमें बार-बार धोने पर भी पलक चिपक जाते हैं तथा पाक न हो, उसे अक्लिन्न वर्त्म कहते हैं।

वाग्भट ने इसका वर्णन नहीं किया है।

यह सन्निपातज साध्य व्याधि है।

चिकित्सा

समुद्रफेनं लवणोत्तमञ्च शङ्खोऽथ मुद्गो मरिचञ्च शुक्लम्।
चूर्णाञ्जनं जाड्यमथापि कण्डूमक्लिन्न वर्त्मान्युपहन्ति शीघ्रम॥
प्रक्लिन्नवर्त्मन्यपि चैत एव योगाः प्रयोज्याश्च समीक्ष्य दोषम्।
सकञ्जलं ताम्रघटे च घृष्टं सर्पिर्युतं तुत्थकमञ्जनं च॥ (सु.उ.त. 12/52-53)

समुद्रफेन, सैंधवलवण, शंङ्ख भस्म, मूंग और श्वेत मरिच को चूर्ण करके अंजन रूप में आँख में प्रयुक्त ें। यह नेत्रजाड्य, कण्डू और अक्लिन्न वर्त्म को शीघ्र नष्ट कर देता है। इन योगों को दोषानुसार प्रक्लिन्न वर्त्म में क्त करें। तुत्थ, रसांजन और काजल को ताम्र के पात्र में पीसकर घृत से युक्त कर अंजन आंखों में लगायें।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

आधुनिक मत से इसे Allergic Conditions of lids कह सकते हैं।

5.1.15 वातहतवर्त्म

विमुक्त संधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते। एतद्धातहतं विद्यात् सरुजं यदि वाऽरुजम्॥
(सु.उ.त. 3/23)

संधि के मुक्त होने से वर्त्म चेष्टारहित हो जाते हैं अर्थात् स्वाभाविक कार्य नष्ट हो जाता है, वर्त्म खुली हुई अवस्था में रहते हैं। इसे वातहत कहते हैं तथा इसमें पीड़ा हो भी सकती है और नहीं भी होती।

यह वातिक असाध्य व्याधि है।

वर्त्म यत्तु निमील्यते॥ विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं हीनं वातहतं हि तत्॥ (अ.हृ.उ. 8/5)

जिसमें पलकें बन्द हुई, संधि शिथिल होती है, चेष्टा रहित और संकुचित होती है, उसको वातहत कहते हैं।

सुश्रुत और वाग्भट ने इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया है।

वाग्भट मतानुसार वातहत का Ptosis के साथ साम्य किया जा सकता है।

सुश्रुत ने वातहत के जो लक्षण वर्णित किये हैं उसके अनुसार इसे Lagophthalmos कह सकते हैं।

Lagophthalmos

It is a condition in which the palpebral aperture cannot be closed properly when the eyes are shut.

Etiology

- Paralysis of orbicularis oculi muscle.
- Symblepharon (adhesion of lids to the eye ball).
- Absence of reflex blinking in extremely ill patients.
- Cicatrical ectropion
- Proptosis.

Complications include conjunctival and corneal xerosis and exposure keratitis.

Treatment

- Application of antibiotic eye ointment
- Artificial tears drops should be instilled frequently.
- Partial or total tarsorraphy in which the palpebral aperture is narrowed by uniting the lateral margins of the lids.

PTOSIS

Ptosis is a condition in which drooping of the upper lid occurs below its normal position. Normally, upper lid covers about upper one-sixth of the cornea i.e about 2mm. In ptosis, it covers more than 2mm. The condition may be unilateral or bilateral and partial or complete.

Types and Etiology

Congenital Ptosis

- Maldevelopment of levator muscle
- Congenital weakness of superior rectus muscle.
- Congenital synkinetic ptosis (**Marcus Gunn Jaw Winking ptosis**). There is abnormal nervous communication between 3rd and 5th cranial nerves. There is unilateral ptosis (winking) with movement of the jaw i.e. with the stimulation of ipsilateral pterygoid muscle.

Scanned with CamScanner

Acquired Ptosis

- Due to partial or complete paralysis of 3rd nerve
- Trauma to levator muscle, muscular dystrophy
- Due to increased weight of the upper lid as in oedema, inflammation, multiple chalazion.

Symptoms

- No symptoms if pupil is not covered by the lid.
- Visual disturbance if pupil is covered.
- Cosmetic disfigurement
- Compensatory changes may be present such as wrinkling of the skin of forehead, tilting of head backwards and elevation of the eye brows

Signs

- Palpebral fissure is narrowed.
- No skin folds in the skin of the upper lid.
- The margin of upper lid covers more of the cornea.
- Head is tilted backwards so as to draw the lid upwards beyond the pupillary area.
- On an attempt to elevate the upper lid, there is elevation of the eye brow and wrinkling of skin of forehead due to hyperaction of frontalis muscle.

Treatment

1. **Resection of levator muscle -** If the levator muscle is not completely paralysed, the levator muscle may be shortened by the resection of the muscle.
2. **Frontalis sling operation -** It is done in patients having severe ptosis with no levator function. In this method, lid is slinged to the frontalis muscle by passing sutures.

5.1.16 निमेष

निमेषिणीः सिरा वायुः प्रविष्टो. वर्त्मसंश्रयाः। चालयत्यतिवर्त्मानि निमेषः स गदो मतः॥

(सु.उ.त. 3/25)

प्रकुपित वात वर्त्माश्रित निमेषणी सिराओं में प्रविष्ट होकर वर्त्म को अधिक चलायमान कर देती है, उसे निमेष ते हैं।

यह वातिक असाध्य व्याधि है।

चालयन् वर्त्मनी वायुर्निमेषोन्मेषणं मुहुः। करोत्यरुङ् निमेषोऽसौ– (अ.हृ.उ. 8/5)

वायु वर्त्मों को चलाते हुए जब बिना किसी पीड़ा के आँखों को बार-बार खोलता और बंद करता है, उस ा को निमेष कहते हैं।

असाध्य व्याधि होने से इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं मिलता है।

आधुनिक मत से इसे Frequent blinking of the eyelids कह सकते है।

Causes of rapid blinking of eye-lids are:

- Dry eyes
- Foreign body in the eye
- Spasm of eye-lids
- Lens infection

Treatment: Treat the underlying cause

5.1.17 वर्त्मार्बुद

वर्त्मानतरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्। विज्ञेयमबुदं पुसां सरक्तमवलम्बितम्॥ (सु.उ.त. 3/24)

वर्त्म के अभ्यंतिरक भाग में विषमाकार, ग्रन्थि स्वरुप, वेदनाहीन, रक्तयुक्त लटकता हुआ अर्बुद हो जाता है, उसे वर्त्मार्बुद कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

वर्त्मान्तमांसपिण्डाभः श्वयथुर्ग्रथितऽरुजः। सास्रैः स्यादर्बुदो दोषै विषमो बाह्यतश्चलः॥

(अ.हृ.उ. 8/24)

रक्त सहित तीनों दोषों से वर्त्म के अन्दर, मांस के पिण्ड के आकार की ग्रन्थि हो जाती है जो शोथयुक्त, वेदनारहित, बाहर से हिलाने पर हिलने वाली और विषम होती है।

चिकित्सा

वर्त्मार्बुद में छेदन कर्म किया जाता है।

वर्त्मोपस्वेद्य निर्भुज्य सूच्योत्क्षिप्य प्रयत्नतः। मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले भिन्द्याद्भिषग्वरः॥
ततः सैन्धवकासीसकृष्णाभिः प्रतिसारयेत्। स्थिते च रुधिरे वर्त्म दहेत् सम्यक् शलाकया॥
क्षारेणावलिखेच्चापि व्याधिशेषो भवेद्यदि। तीक्ष्णैरूभयतो भागैस्ततो दोषमधिक्षिपेत्॥
वितरेच्च यथादोषमभिष्यन्द्रक्रियाविधिम्। शस्त्रकर्मण्युपरते मासन्च स्यात् सुयन्त्रितः॥

(सु.उ.त. 15/30-33)

वर्त्म प्रदेश का स्वेदन करके वर्त्म को उलटा कर सूची के अग्रभाग से उसके मूल को पकड़ के अर्बुद को ऊपर उठाकर मण्डलाग्र शस्त्र से काट दें, तत्पश्चात् सैन्धवलवण, कासीस और पिप्पली के चूर्ण का प्रतिसारण करना चाहिए। रक्तस्राव बन्द होने पर वर्त्म के आक्रान्त भाग को शलाका द्वारा जला देना चाहिए। व्याधि का कुछ भाग रह जाने पर क्षार से प्रतिसारण करके लेखन करना चाहिए। दोषों के निर्हरण के लिए तीक्ष्ण वमन और विरेचन द्वारा शरीर का संशोधन कर दोषानुसार अभिष्यन्दोक्त चिकित्सा विधि का प्रयोग करें। शस्त्र कर्म के पश्चात् एक मास तक नियम के अनुसार आहर-विहार करना चाहिए।

वाग्भट ने भी वर्त्मार्बुद में छेदन कर्म बताया है।

आधुनिक मतानुसार इसे lid tumour कह सकते हैं।

5.1.18 वर्त्मार्श

छिन्नश्छिन्ना विवर्द्धनते वर्त्मस्था मृदवोऽङ्कुराः। दाहकण्डूरुजोपेतास्तेऽर्शः शोणितसम्भवाः॥

(सु.उ.त. 3/26)

रक्त दोष से उत्पन्न होने वाले तथा स्पर्श में मृदु तथा जो काटने पर पुनः पुनः बढ़ जाते हैं। इसमें दाह, कण्डू, वेंदना होती है, इसे वर्त्मार्श कहते हैं।

Scanned with CamScanner

यह रक्तज असाध्य व्याधि है।

अष्टांगहृदयकार ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

आधुनिक मतानुसार इसे Cancer of lids कह सकते हैं।

5.1.19 लगण

अपाकः कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः। सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणस्तु सः॥

(सु.उ.त. 3/27)

वर्त्म प्रदेश में कोल प्रमाण की ग्रन्थि हो जाती है जो वेदनारहित, कण्डूयुक्त, पाकरहित, स्थूलाकृति, पिच्छिल होती है उसे लगण कहते है।

यह कफज साध्य व्याधि है।

ग्रन्थिः पाण्डुररुक् पाकः कण्डूमान् कठिनः कफात्॥ कोलमात्रः स लगणः किञ्चिदल्पस्ततोऽथवा॥

(अ.हृ.उ. 8/11)

कफ के कारण बेर के आकार की अथवा उससे कुछ छोटी, पाण्डु वर्ण, वेदना और पाक से रहित, कण्डूयुक्त और कठिन ग्रन्थि वर्त्म प्रदेश में होती है, उसे लगण कहते हैं।

चिकित्सा

लगण में भेदन कर्म करें।

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च। प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते॥
महत्यपि च युञ्जीत क्षाराग्नी विधिकोविदः॥ (सु.उ.त. 14/5)

लगण में भेदन करके गोरोचना, यवक्षार, नीलतुत्थ, पिप्पली और मधु से प्रतिसारण करें। इन द्रव्यों में से एक-एक द्रव्य के चूर्ण का भी प्रतिसारण कर सकते हैं। यदि लगण रोग में ग्रन्थि बड़ी हो तो भेदन कर्म करके क्षारकर्म और अग्नि कर्म करना चाहिए।

वाग्भट ने भी लगण मे भेदन कर्म बताया है तथा कहा है कि यदि शांत न हो तो अग्नि से दाह करें।

आधुनिक मत से इसे Chalazion कह सकते हैं।

5.1.20 बिसवर्त्म

शूनं यद्वर्त्म बहुभिः सूक्ष्मैश्छिद्रैः समन्वितम्। बिसमन्तर्जल इव बिसवर्त्मेति तन्मतम्॥

(सु.उ.त. 3/28)

वर्त्म में शोथ तथा अनेक सूक्ष्म छिद्र हो जाते हैं जैसे कि जल में होने वाले कमल में अनेक छिद्र होते है इस रोग को बिसवर्त्म कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

दोषैर्वर्त्म बहिः शूनं यदन्तं सूक्ष्म खाचितम्॥ सस्रावमन्तरुदकं बिसाभं बिसवर्त्म तत्॥

(अ.हृ.उ. 8/15)

वातादि दोषों से वर्त्म बाहर से शोथयुक्त, अभ्यंतर से सूक्ष्म छिद्रों से युक्त होती है और बिस (कमल) की भांति जिनमें से स्राव होता रहता है, उसे बिसवर्त्म कहते हैं।

चिकित्सा

इसमें भेदन कर्म किया जाता है।

स्वेदयित्वा बिग्रथ्य छिद्राण्यस्य निराशयम्॥ पक्वं भित्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत्।
कासीसमागधसीपुष्पनेपाल्येलायुतेन तु। ततः क्षोद्रघृतं दत्त्वा सम्यग्बन्धमथाचरेत्॥

(सु. उ. त. 14/3-4)

स्वेदन पश्चात् छिद्रों सहित भेदन कर सैन्धव लवण, कासीस, पिप्पली, पुष्पांजन, मैनसिल और इलायची इनके चूर्ण का प्रक्षेपण कर तत्पश्चात् शहद और घृत का लेपन करके बन्धन बांध देना चाहिए।

वाग्भट मतानुसार बिसवर्त्म में भेदन करना चाहिए।

आधुनिक मतानुसार इसे inflammatory condition of lids कह सकते हैं।

5.1.21 पक्ष्मकोप

दोषाः पक्ष्माशयगतास्तीक्ष्णाग्रणि खराणि च। निर्वर्त्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्घृष्टन्चाक्षि दूयते॥
उद्धृतैरुद्धृतैः शान्तिः पक्ष्माभश्चोपजायते। वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोपः स उच्यते॥

(सु.उ.त. 3/29-30)

प्रकुपित दोष पक्ष्माशय में जाकर बालों को तीक्ष्णाग्र और खुरदरे कर देते हैं तथा पलक भी मुड़ जाते हैं और उससे नेत्र में रगड़ होने से तीव्र वेदना होती है। बालों को कई बार निकाल देने से शान्ति होती है तथा रोगी वात, धूप और अग्नि को सहन नहीं कर सकता, इसे पक्ष्मकोप कहते हैं।

यह त्रिदोषज याप्य व्याधि है।

अष्टांगहृदयकार ने इसको पक्ष्मोपरोध कहा है।

पक्ष्मोपरोधे संङ्कोचो वर्त्मनां जायते तथा। खरताऽन्तर्मुखत्वं च रोम्णामन्यानि वा पुनः॥
कण्टकैरिव तीक्ष्णाग्रैर्घृष्टं तैरक्षि शूयते। ऊष्यते चानिलादिद्विडल्पाहः शान्तिरुद्धृतैः॥

(अ.हृ.उ. 8/21-22)

पक्ष्मोपरोध में वर्त्मो का संकोच होता है। बालों में कर्कशता होती है एवम् वे अन्दर की ओर मुड़ जाते है, नये कर्कश रोम पैदा हो जाते है। कांटों की भांति इनके तीक्ष्ण अग्रभागों से रगड़ तथा आंखे सूज जाती है। वायु और अग्नि से द्वेष होता है। बालों को निकाल देने से कुछ देर के लिए शांति मिलती है।

चिकित्सा

शस्त्र कर्म

त्रोपविष्टस्य नरस्य चर्म वर्त्मोपरिष्टादनुतिर्यगेषः।
भ्रुवोरधस्तात् परिमुच्य भागौ पक्ष्माश्रितं चैकमतोऽवकृन्तेत्।
कनीनिकाऽपाङ्गसमं समन्ताद् यवाकृतिं स्निग्धतनोर्नरस्य॥
उत्कृत्य शस्त्रेण यवप्रमाणं बालेन सीव्येदभिषगप्रमत्तः
दत्त्वा च सर्पिमधुनाऽवशेषं कुर्याद्विधानं विहितं व्रणो यत्॥

Scanned with CamScanner

ललाट देशे च निबद्धपट्टं प्राक्स्यूतमत्राप्यपरञ्च बद्ध्वा।
स्थैर्य्यं गते चाप्यथ शस्त्रमार्गे बालान् विमुञ्चेत् कुशलोऽभिवीक्ष्य।।

(सु.उ.त. 16/3-6)

रोगी को स्नेहपान कराके उत्तान शयन कराके पश्चात् वर्त्म पर भ्रू के नीचे के वर्त्म के दो भाग तथा पक्ष्म के पास के वर्त्म का एक भाग छोड़कर कनीनक तथा अपाङ्ग के मध्य में यवाकार का चर्म का भाग काटकर निकाल देना चाहिए, इसके बाद घोड़े के बाल से सीवन कर्म कर देना चाहिए, फिर घृत और शहद का लेप करें। ललाट देश में पट्ट बांधकर सी देवें और इसके साथ आँख की पट्टी को मिलाकर सी देना चाहिए। शस्त्र कर्म किए हुए स्थान के स्थिर हो जाने पर वैद्य सीवन कर्म के टांकों को तोड़ दें।

एवं न चेच्छाम्यति तस्य वर्त्म निर्भुज्य दोषोपहतां वलिञ्च।
ततोऽग्निं वा प्रतिसारयेत्तां क्षारेण वा सम्यगवेक्ष्य धीरः।। (सु.उ.त. 16/7)

शस्त्र कर्म से रोग की शान्ति न हो तो वर्त्म को उलटकर अग्नि या क्षार कर्म करें।

छित्त्वां समं वाऽप्युपपक्ष्ममालां सम्यग् गृहीत्वा बडिशैस्त्रिभिस्तु।
पथ्याफलने प्रतिसारयेत्तु घृष्टेर्न वा तोवरकेण सम्यक्।। (सु.उ.त. 16/8)

उपपक्ष्ममाला (बालों की नई पंक्ति) को तीन बडिशों के द्वारा पकड़ कर काट दें। तत्पश्चात् हरीतकी फल और तुबरक फल को घीसकर उसका प्रतिसारण करना चाहिए।

पक्ष्मकोप की चिकित्सा 4 प्रकार से की जाती है।

1. भेषज कर्म 2. क्षार कर्म 3. अग्नि कर्म 4. शस्त्र कर्म

आधुनिक मतानुसार इसका साम्य Trichiasis with Entropion से किया जा सकता है।

TRICHIASIS

Definition: It is inward misdirection of cilia with the lid margins remaining in the normal position.

Etiology

- Ulcerative blepharitis
- Chemical burns
- Healed membranous conjunctivitis
- Cicatrising trachoma
- Mechanical injuries

Symptoms

- Foreign body sensation
- Irritation
- Ocular pain
- Photophobia
- Lacrimation
- Conjunctival congestion

Signs

- Reflex blepharospasm and photophobia in case of corneal involvement.
- One or more misdirected cilia rubbing against the eye ball
- Ciliary congestion
- Superficial corneal opacity

Complications

- Non healing corneal ulcer
- Recurrent corneal abrasions.

Treatment

1. **Epilation:** Mechanical removal of misdirected eye-lashes with epilation forcep.
2. **Electrolysis:** In this procedure, current of 3-5 mA is passed for 10 seconds through fine platinum needle inserted into root of eye-lash. The cilia are loosened, which is removed with epilation forcep.
3. **Cryoepilation:** It is an effective method of destroying the misdirected eye-lashes. The cryoprobe with -20°C temperature is applied onto the root of the eye-lash for 20-25 seconds. It leaves depigmented area on the skin.
4. **Surgical correction:** Surgical procedures are same as for entropion.

Entropion

Definition: It is a condition in which the lid margin rolls inwards.

Types

1. **Congenital entropion:** It is rare condition and is usually associated with microphthalmos.
2. **Spastic entropion:** It occurs due to spasm of orbicularis muscle.
3. **Cicatrical entropion:** It is due to contraction of conjunctival scar as seen in trachoma, chemical burns etc.
4. **Senile entropion:** It is commonest type usually affecting the lower lid due to loss of elasticity of skin and loss of orbital fat.
5. **Mechanical entropion:** It occurs due to lack of support to the lids as in phthisis bulbi.

Clinical features

Similar to trichiasis

Treatment

1. In senile patients, the lower lid is pulled downwards by strip of adhesive plaster.
2. Skin muscle operation: The elliptical area of loose skin and underlying orbicularis oculi muscle are ressected.

Burrow's operation

The surgical procedure is done from the conjunctival side. A horizontal incision is made along the whole length of eyelid involving conjunctiva, tarsal plate but not skin in sulcus subtarsalis. The temporal end of the strip is divided by full thickness vertical incision.

5.1.22 Ectropion

Rolling out of the lid margins is called ectropion.

Types

1. **Senile ectropion** - It is due to laxity of the tissue of the lower lid or loss of tone of orbicularis oculi.
2. **Cicatrical ectropion** - It is due to destruction of skin of lid by burns, ulcers or trauma.
3. **Paralytic** - It is due to palsy of seventh cranial nerve.
4. **Mechanical ectropion** - It is caused by the weight of the tumor.
5. **Spastic ectropion** - It is due to spasm of orbicularis oculi.

Scanned with CamScanner

Symptoms

Epiphora.

Exposure keratitis.

Treatment

1. **Spastic ectropion** - Proper bandaging.
2. **Cicatrical ectropion** - Plastic repair of the lower eye lid.
3. **Mechanical ectropion** - Treatment of underlying cause.
4. **Paralytic ectropion** - Lateral tarsorraphy may be indicated. The palpebral aperture is shortened by uniting the lid margins at the junction of middle and outer one-third.
5. **Senile ectropion** - Medial conjunctivoplasty is done in which horizontal piece of conjunctiva nearly 4 mm interior to the punctum is excised and sutured to its margins.

5.1.23 Blepharospasm

It is defined as a forceful closure of the eyelids. It occurs in two forms :

(i) Essential blepharospasm - It is rare idiopathic condition involving patients between 45 & 65 years of age.

(ii) Reflex blepharospasm - It occurs due to reflex sensory stimulation through the branches of the Trigeminal nerve in conditions such as corneal ulcers and iridocyclitis, excessive stimulation of the retina by dazzling light and stimulation of the facial nerve.

Clinical features

Persistent epiphora. Oedema of the lids. Spastic entropion in people and spastic ectropion in young people may develop in long standing cases.

Treatment

In essential blepharospasm, repeated periodic injections of botulinum toxin injected into orbicularis muscle relieves the spasm. In reflex blepharospasm, the causative disease should be treated.

5.1.24 वाग्भट द्वारा अतिरिक्त वर्णित वर्त्मगत रोग निम्न हैं-

पित्तोत्क्लिष्ट वर्त्म

सदाहक्लेदनिस्तोदं रक्ताभं स्पर्शनाक्षमम्। पित्तेन जायते वर्त्म पित्तोत्क्लिष्टमुशन्ति तत्॥

(अ.हृ.उ. 8/7)

पित्त के कारण वर्त्म दाह, क्लेद, तोद युक्त तथा लाल वर्ण का होता है तथा इसमें स्पर्श असह्य होता है। इस रोग को पित्तोत्क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं।

रक्तोत्क्लिष्ट वर्त्म

तथोत्क्लिष्टं राजिमत्स्पर्शनाक्षमम्॥ (अ.हृ.उ. 8/12)

रक्त के कारण पलक में रेखाएं हो तथा स्पर्श को न सहने वाली हो, उसे उत्क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं।

उपरोक्त कथित उत्क्लिष्ट वर्त्म रक्त दोष के कारण होता है; यह रक्तज उत्क्लिष्ट वर्त्म है।

चिकित्सा

पित्त – रक्तोत्क्लिष्ट चिकित्सा

पित्तास्रोत्क्लिष्टयोः स्वादुस्कन्धसिद्धेन सर्पिषा। सिराविमोक्षः स्निग्धस्य त्रिवृच्छ्रेष्ठं विरेचनम्॥
लिखिते सुतरक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम्॥ यष्टीकषायः सेकस्तु क्षीरं चन्दनसाधितम्।

(अ.हृ.उ. 8/16-17)

पित्तोत्क्लिष्ट और रक्तोत्क्लिष्ट रोग में मधुर गण की औषधियों से सिद्ध हुए घृत से सिरामोक्ष करें। त्रिवृत से विरेचन कर्म करें। विरेचन में त्रिवृत श्रेष्ठ है। लेखन हो जाने पर तथा रक्त निकल जाने पर मुलहठी के क्वाथ से परिषेक करें यह परम लाभदायक है। चन्दन से सिद्ध दूध परिषेक में उत्तम है।

आधुनिक मत से इसका साम्य Allergic condition of lids से कर सकते हैं।

श्लिष्टवर्त्म

श्लिष्टाख्यं वर्त्मनी श्लिष्टे कण्डूश्वयथुरागिनी। (अ.हृ.उ. 8/17)

जिसमें पलके आपस में जुड़ी हुई, कण्डूयुक्त, शोथयुक्त तथा लाल होती है, उसे श्लिष्टवर्त्म कहते हैं।

चिकित्सा

लेखन कर्म

कफोत्क्लिष्ट वर्त्म

कफोत्क्लिष्टं भवेद्वर्त्म स्तम्भक्लेदोपदेहवत्। (अ.हृ.उ. 8/10)

जिसमें पलक स्तम्भ (कड़ा), क्लेद युक्त तथा कीचड़ युक्त रहता है, उसको कफोत्क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं।

चिकित्सा

कफोत्क्लिष्टे विलिखते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्। सूक्ष्मैः सैन्धवकासीसमनोह्वाकणताक्ष्यजैः॥
वमनाञ्जननस्यादि सर्वं च कफजिद्धितम्॥ (अ.हृ.उ. 9/22-23)

कफोत्क्लिष्ट वर्त्म में लेखन करके सैन्धव, कासीस, मैनसिल, पिप्पली, रसांजन इनके सूक्ष्म चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करें। वमन, अंजन, नस्य तथा कफनाशक सम्पूर्ण चिकित्सा हितकारक है।

उत्क्लिष्ट वर्त्म

यद्वर्त्मोत्क्लिष्टमुत्क्लिष्टमकस्मान्म्लान् ताभियात्। रक्तदोषत्रयात्क्लेशाद्भवत्युत्क्लिष्टवर्त्म तत्॥

(अ.हृ.उ. 8/16)

रक्त तथा तीनों दोषों के कारण वर्त्म बार-बार उत्क्लेशित होकर अकस्मात् म्लान हो जाते हैं।

चिकित्सा

लेखन कर्म।

कृच्छ्रोन्मलिन

रोगान कुर्यःचलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः। सुप्तोत्थितस्य करुते वर्त्मस्तम्भं सवेदनम्॥
पांसुपूर्णाभनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमश्रु च। विमर्दनात्स्याच्च शमः कृच्छ्रोन्मीलं वदन्ति तत्॥

(अ.हृ.उ.त. 8/3-4)

Scanned with CamScanner

वायु वर्त्म की सिराओं में आश्रित हो जाता है, तब मनुष्य के सोकर उठने के बाद पलकें स्तंभित हो जाती हैं, उनमें वेदना होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नेत्रों में किसी ने रेत डाला हो, नेत्र कष्ट से खोले जाते हैं और उनसे आंसू निकलते हैं। हाथों से मलने पर कष्ट का शमन होता है, इसे कृच्छ्रोन्मलिन रोग कहते हैं।

चिकित्सा

कृच्छ्रोन्मीले पुराणाज्यं द्राक्षाकल्काम्बु साधितम्। ससितं योजयेत्स्निग्धं नस्यधूमाञ्जनादि च॥

(अ. हृ. उ. त. 9/1)

कृच्छ्रोन्मीलन रोग में पुराने घृत में द्राक्षा का कल्क और जल मिलाकर घृत सिद्ध करें। इस घृत में मिश्री मिलाकर सेवन करें तथा स्निग्ध नस्य, धूम और अंजनादि का प्रयोग करें।

अलजी

कनीनके बहिर्वर्त्म कठिनो ग्रन्थिरुन्नतः।
ताम्रः पक्वोऽस्रपूयस्रुत् अलज्याधमायते मुहुः॥ (अ. हृ. उ. त. 8/23)

पलक के बाह्य भाग में, आँख की नासिका के समीप वाली संधि कनीनिका पर, कठिन व ताम्र वर्ण की उन्नत हुई ग्रंथि बन जाती है, इसे अलजी कहते हैं। पाक होने पर इससे रक्त व पूय स्राव होता है तथा यह पुनः-पुनः हो जाती है।

चिकित्सा-

बाह्यलजेः भिन्न लिखितस्य क्षारेण अग्निना वा दाहो व्रणवत् च उपचारः।

(अ. सं. उ. 12/15)

बाह्य अलजी का (पक्व होने पर) भेदन करके क्षार से लेखन कर्म करें या अग्नि से दाह करें तथा व्रणवत् उपचार करें।

पक्ष्मशात

करोति कण्डूं दाहं च पित्तं पक्ष्मान्तमास्थितम्। पक्ष्मणां शातनं चानु पक्ष्मशातं वदन्ति तम्॥

(अ.हृ.उ.त. 8/8)

पित्त पलकों की मूल में स्थित होकर खुजली और दाह करता है तथा पलकों के बाल गिरा देता है, इसे पक्ष्मशात कहते हैं।

चिकित्सा

पक्ष्मणां सदने सूच्या रोमकूपान विकुट्टयेत्। ग्राहयेद्वा जलौकोभिः पयसेक्षुरसेन वा।
वमनं नावनं सर्पिःश्रुतं मधुरशीतलैः॥ (अ. हृ. उ. त. 9/18-19)

रोमकूप को सुई के द्वारा विकुट्टन करें। जलौका लगाकर दुष्ट रक्त निकालें। दूध और ईख का रस पिलाकर मैनफल के कल्क से वमन कराएं अथवा मधुर और शीतल द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत का नस्य दें।

संचूर्ण्य पुष्पकासीसं भावयेत्सुरसारसैः। ताम्रे दशाहं परमं पक्ष्मशाते तदञ्जनम्॥ (अ. हृ. उ. त. 9/20)

पुष्पकासीस को बारीक पीसकर ताम्र के पात्र में डालकर तुलसी के रस की दस दिन भावना देने के बाद इस अंजन का पक्ष्मशात में प्रयोग करें।

आधुनिक मत से पक्ष्मशात को Madarosis कह सकते हैं।

कुकूणक

कुकूणकः शिशोरेव दन्तोत्पत्तिनिमित्तजः। स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः।
स वर्त्मशूलपैच्छिल्यकर्णनासाक्षिमर्दनः॥ (अ.हृ.उ.त. 8/23)

कुकूणक रोग बच्चों में दन्तोत्पत्ति के समय होता है। कुकूणक में नेत्र में पीड़ा, सूजन, ताम्र वर्ण के तथा देखने में असमर्थ हो जाते हैं। वर्त्म में शूल, पिच्छिलता तथा बालक अपने नासिका, कान और नेत्रों का मर्दन करता है।

चिकित्सा

कुकूणे खदिरश्रेष्ठानिम्बपत्रैः शृतं घृतम्। पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टीसर्षप सैन्धवैः।
अभयापिप्पलीद्राक्षाक्वाथेनैनां विरेचयेत्॥ (अ.हृ.उ.त. 9/24)

कुकूणक रोग में माता, खैर, त्रिफला और निम्ब के पत्तों से सिद्ध किया घृत का सेवन करें। पिप्पली, मुलहठी, सरसों और सैंधानमक के कल्क से वमन करे। हरीतकी, पिप्पली और द्राक्षा के क्वाथ से विरेचन करे।

आधुनिक मतानुसार इसे Ophthalmia Neonatorum कह सकते हैं।

Ophthalmia Neonatorum

Also known as neonatal conjunctivitis, it is bilateral conjunctivitis characterized by copious purulent discharge, marked chemosis of the conjunctiva and swelling of the lids.

Etiology -

The disease is contacted during birth from the mothers infected genitourinary tract.

Causative pathogens are Neisseria gonorrhoea, Staphylococcus aureus, Streptococcus pneumoniae and E. Coli.

Clinical features It usually manifests in the first week after birth with the following signs & symptoms :-

- Pain
- Tenderness
- Discharge
- The lids are swollen
- Chemosis of the conjunctiva

The disease has a short incubation period (1-3 days). If untreated, the acute phase lasts for 10-15 days and then the discharge diminishes.

Treatment

It is a preventable disease.

Aseptic measures must be taken at the time of delivery.

Soon after the birth, lids of the infant should be thoroughly cleaned with a piece of sterile gauze.

Antibiotic drops such as ciprofloxacin 0.3% drops hourly and ceftriaxone 25 to 50 mg/kg iv or im single dose. Chlamydial infection can be controlled by topical erythromycin or tetracycline.

Complications

- Corneal ulcer
- Anterior staphyloma
- Anterior capsular cataract
- Panophthalmitis

Scanned with CamScanner

5.1.25 Tumours of the lids

Benign Tumours

1. **Mole (naevus) -** It occurs at the lid margin and may effect either the skin or the conjunctiva of the lid.
2. **Neurofibroma -** It is usually of plexiform type affecting the upper lid. The lid becomes hypertrophied and droops down.
3. **Xanthelasma -** Xanthelasmas are often bilateral, symmetrical and raised yellow plaques near the inner canthus.
4. **Papilloma -** It is the commonest tumour of the eyelid; appearing as a wary growth.

Malignant Tumours

1. **Basal cell carcinoma (Rodent ulcer) -** It is the most common malignant tumour of the lid predominantly affecting the lower lid. It spreads very slowly destroying the lid, orbital structures and even bone. Regional glands are not involved. The tumour grows by burrowing and destroying the tissues locally like a rodent and hence the name 'rodent ulcer'.
2. **Squamous cell carcinoma -** It starts as a nodule which ulcerates. It is much more destructive than the rodent ulcer and the regional lymph glands become affected.

✖ ✖ ✖

अध्याय-6

शुक्लगत रोग

तेष्वपि च नेत्रे श्लेष्मणः प्रसादात् शुक्लमण्डलम्, तत पितृजम् । (अ.सं.शा. 5/49)

शुक्ल मण्डल की उत्पति कफ से होती है तथा यह पितज भाव है।

6.1 शुक्लगत रोग संख्या

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः।
स्युः शुक्तिका चार्जुनपिष्टकौ च जालं सिराणां पिडकाश्च याः स्युः॥
रोगा बलासग्रथितेन सार्द्धमेकद्वादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे॥ (सु.उ.त. 4/3-4)

शुक्लभाग में 11 रोग होते हैं:-

1.	प्रस्तारि अर्म	2.	शुक्ल अर्म	3.	क्षतज अर्म	4.	अधिमांसज अर्म
5.	स्नायु अर्म	6.	शुक्तिका	7.	अर्जुन	8.	पिष्टक
9.	सिराजाल	10.	सिरापिड़िका	11.	बलासग्रथित		

वाग्भट ने शुक्लगत रोगों की संख्या 13 मानी है:-

1.	शुक्लार्म	2.	शोणितार्म	3.	प्रस्तारि अर्म	4.	स्नाय्वर्म
5.	अधिमांसार्म	6.	शुक्तिका	7.	बलासग्रथित	8.	पिष्टक
9.	सिरोत्पात	10.	सिराहर्ष	11.	सिराजाल	12.	अर्जुन
13.	सिरापिड़िका						

6.2 अर्म

6.2.1 प्रस्तारि अर्म

प्रस्तारि प्रथितमिहार्म शुक्लभागे विस्तीर्णं तनु रुधिरप्रभं सनीलम्। (सु.उ.त. 4/4)

नेत्र के शुक्ल भाग में फैलती हुई, पतली, लाल वर्ण की तथा नील वर्ण की रचना को प्रस्तारि अर्म कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

मृद्धाशुवृद्धयरुङ् मांसं प्रस्तारि श्यावलोहितम्॥ प्रस्तार्यर्म मलैः साग्रैः-

(अ.हृ.उ. 10/17)

Scanned with CamScanner

जो मांस कोमल, जल्दी बढ़ने वाला, वेदना रहित, फैलने वाला, काले रंग का तथा रक्त युक्त और तीनों दोषों से होता है, वह प्रस्तार्यर्म है।

6.2.2 शुक्लार्म

शुक्लाख्यं मृदु कथयन्ति शुक्ल भागे सश्वेतं सममिह वर्द्धते चिरेण। (सु.उ.त. 4/4)

शुक्ल भाग में मृदु, श्वेत तथा समान रूप से धीरे-धीरे बढ़ने वाली रचना को शुक्लार्म कहते हैं।

कफाच्छुक्ले समं श्वेतं चिरवृद्धयधिमांसकम्। शुक्लार्म- (अ.हृ.उ. 10/11)

कफ के कारण शुक्ल भाग में समान रूप से, श्वेत वर्ण की, देर से बढ़ने वाली मांस की वृद्धि हो जाती है, उसको शुक्लार्म कहते हैं।

यह कफज साध्य व्याधि है।

6.2.3 लोहितार्म

यन्मांसं प्रचयमुपैति शुक्लभागे पद्माभं तदुपदिशन्ति लोहितार्म॥ (सु.उ.त. 4/5)

शुक्ल भाग में कमल के समान लाल वर्ण की मांस वृद्धि को अधिमांसजार्म कहते हैं।

वाग्भट ने 'शोणितार्म' से इसका वर्णन किया है।

शोणितार्म समं श्लक्ष्णं पद्माभमधिमांसकम्॥ (अ.हृ.उ. 10/16)

शोणितार्म में समान, चिकना, कमल के समान मांस की अधिक वृद्धि होती है।

लोहितार्म रक्तज साध्य व्याधि है।

6.2.4 अधिमांसजार्म

विस्तीर्णं मृदु बहलं यकृत्प्रकाशं श्यावं वा तदधिकमांसजार्म निगदात्॥ (सु. उ. त. 4/6)

यकृत के समान वर्ण का, मृदु, मोटा, विस्तीर्ण और श्याव वर्ण की रचना को अधिमांसजार्म कहते हैं।

शुष्कासृकपिण्डवच्छयावं यन्मांसं बहलं पृथु॥ (अ.हृ.उ. 10/18)

सूखे रक्त के पिण्ड की भांति श्याव वर्ण, मोटा तथा चौड़ा होता है, उसे अधिमांसजार्म कहते हैं।

यह साध्य त्रिदोषज व्याधि है।

6.2.5 स्नायु अर्म

शुक्ले यत्पिशितमुपैति वृद्धिमेतत् स्नाय्वर्मेत्यभि पठितं खरं प्रपाण्डु॥ (सु.उ.त. 4/6)

नेत्र के शुक्ल भाग में खुरदरी, पीत वर्ण की मांस वृद्धि को स्नाय्वर्म कहते हैं।

यह त्रिदोषज साध्य व्याधि है।

स्नावार्म स्नावसन्निभम्। (अ.हृ.उ. 10/17)

स्नाय्वर्म स्नायु के समान होता है।

चिकित्सा

अर्म में सुश्रुत ने छेदन कर्म और लेखन कर्म का निर्देश किया है।

स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः। संरोषयेत्तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः॥ (सु.उ.त. 15/3)

रोगी को स्निग्ध भोजन करा कर तत्पश्चात् यत्नपूर्वक बिठावें। वैद्य लावणिक चूर्ण को आंख में लगाकर नेत्र को क्षुभित करें।

ततः संरोषित तूर्णं सुस्विन्नं परिघट्टितम्। अर्म यत्र वलीजातं तत्रैतल्लगयेद्भिषक्॥
अपाङ्गं प्रेक्षमाणस्य वडिशेन समाहितः। मुचुरण्ड्याऽऽदाय मेधार्न्म सूचीसूत्रेण वा पुनः॥
न चोत्थापयता क्षिप्रं कार्यमभ्युन्नतं तु तत्। शस्त्रबाधभयाच्चास्य वर्त्मनी ग्राहयेद् दृढम्॥
ततः प्रशिथिलीभूतं त्रिभिरेव विलम्बितम्। उल्लिखन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधयेत्!॥7॥
विमुक्त सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्च मण्डलात्। नीत्वा कनीनकोपान्तं छिन्द्यान्नतिकनीनकम्॥
चतुर्भागस्थिते मांसे नाक्षि व्यापत्तिमृच्छति। कनीनकवधादस्रं नाडी वाऽप्युपजायते॥
हीनच्छेदात् पुनर्वृद्धिं शीघ्रमेवाधिगच्छति। (सु. उ. त. 15/4-9)

फूले हुए अर्म प्रदेश का स्वेदन करना चाहिए तत्पश्चात् उस स्थान का चालन करना चाहिए। जिस स्थान पर अर्म में वलि (झुरियां) पड़ जाए, वैद्य बडिश यन्त्र से पकड़कर रोगी को अपाङ्ग की ओर देखने को कहे तथा वैद्य मुचुण्डी से अर्म को ऊँचा उठाकर सुई में डोरा पिरोकर अर्म के नीचे डालकर, उसे कुछ ऊपर उठा दें। वैद्य इस कार्य को शीघ्रता से न करें अन्यथा अर्म के टूटने का भय रहता हैं ऊपर तथा अधो भाग के वर्त्म को दृढ़ता से पकड़ें अन्यथा शस्त्रकर्म करने में बाधा होती है। नेत्रगोलक से शिथिल हुए अर्म को तीन बडिशों से पकड़कर ऊपर उठाकर मण्डलाग्र शस्त्र से काट दें। सब ओर से अर्म के विमुक्त होने पर उसे कनीनिक की ओर लाकर कनीनिक का अतिक्रमण न करते हुए अर्म को काट दें। अर्म को पूरी तरह से न काटकर चौथाई भाग शेष रहने दें। ऐसे करने से नेत्र में कोई उपद्रव नहीं होता है। कनीनक में छेद होने से रक्त की अतिप्रवृत्ति होती है अथवा नेत्रनाड़ी रोग हो जाता है। हीन मात्रा में अर्म का छेदन करने से उसकी पुनः वृद्धि हो जाती है।

पश्चात् कर्म

प्रतिसारणमक्ष्णोस्तु ततः कार्यमनन्तरम्। यावनालस्य चूर्णेन त्रिकटोर्लवणस्य च॥
स्वेदयित्वा ततः पश्चाद् बध्नीयात् कुशलो भिषक्। दोषर्त्तुबलकालज्ञः स्नेहं दत्त्वा यथाहितम्॥
व्रणवत् संविधानन्तु तस्य कुर्यादतः परम्॥ त्र्यहान्मुक्त्वा करस्वेदं दत्त्वा शोधनमाचरेत्॥
(सु. उ. त. 15/11-13)

अर्म का छेदन करने पर बाद में प्रतिसारण करें। यवक्षार, त्रिकटु, लवण के चूर्ण से प्रतिसारण करें। पश्चात् नेत्र का स्वेदन कर कुशल वैद्य पट्टबन्धन कर देवें। दोष, ऋतु, बल और काल का ज्ञाता वैद्य जैसा हितकारक हो वैसे स्नेह को लगाकर व्रण के समान उपचार करें। तीन दिन के बाद पट्टी खोल कर हाथों को गर्म करके नेत्र पर रखकर स्वेदन करें तथा नेत्र का शोधन करें।

लेख्याञ्जनैरपहरेदर्मशेषं भवेद्यदि॥ (सु. उ. त. 15/16)

अर्म के शेष भाग पर लेख्यांजन का प्रयोग करें।

अर्म चाल्पं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा। धूसरं तनु यच्चापि शुक्रवत् तदुपाचरेत्॥
(सु. उ. त 15/17)

जो अर्म छोटा, दही के समान आभा वाला, नील या रक्त वर्ण का तथा धूसर वर्ण का एवम् पतला हो उसकी शुक्र की भांति चिकित्सा करनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

चर्मार्म बहलं यत्तु स्नायुमांसघनावृतम्। छद्यमेव तदर्म स्यात् कृष्णमण्डलगं श्रयत्॥

(सु. उ. त. 15/18)

जो अर्म चर्म के समान मोटा तथा स्नायु और मांस से आवृत हो एवम् जो अर्म कृष्णमण्डल तक पहुँच गया हो उस अर्म का अवश्य ही छेदन करें।

सम्यक छिन्नार्म लक्षण

विशुद्धवर्णमक्लिष्टं क्रियास्वक्षि गतक्लमम्। छिन्नेऽर्मणि भवेत् सम्यग्व्यधास्वमनुपद्रवम्॥

(सु. उ. त. 15/19)

अर्म का सम्यक छेदन होने पर नेत्रगोलक का वर्ण विशुद्ध तथा नेत्र का कार्य ठीक प्रकार से होता है। नेत्र क्लम रहित तथा उपद्रवों से रहित होता है।

आधुनिक मतानुसार अर्म को Pterygium कह सकते है।

PTERYGIUM

Pterygium derives it name from the latin word Pterygion meaning a wing.

Pterygium is wing shaped fold of conjunctiva encroaching upon the cornea from either side within the inter palpebral fissure.

Fig. 4 - Pterygium

Etiology

Etiology is not exactly known however it is usually seen in–

- People living in hot climates
- People working in sunny, dusty or sandy atmosphere

Sex: It usually occurs in elderly males doing outdoor work.

Bilaterality: May be unilateral or bilateral; usually on the nasal side but may also occur on the temporal side.

The main cause is degenerative change in the subconjunctival tissues.

Parts: It consists of three parts.

1. **Head (apical part):** Present on the cornea
2. **Neck (limbal part):** It is narrow part near limbus.
3. **Body (Scleral part):** Extending between limbus and the canthus.

Depending upon the progression; it may be progressive or regressive pterygium.

Progressive pterygium: It is thick, fleshy and vascular. It gradually increases in size and encroaches towards the centre of the cornea. At times it may cover the pupillary area.

Regressive pterygium: It is thin, atrophic, attenuated with little vascularity. Later on, it becomes thin and stops growing. However, it never disappears completely.

Symptoms

- It is usually symptomless.
- There is cosmetic disfigurement.
- Visual disturbances occur when it encroaches the pupillary area.
- Occasionally diplopia due to limitation of ocular movement.

Signs

- Triangular encroachment of the conjunctiva on the cornea.
- Numerous small opacities may lie in front of apex of pterygium.

Treatment

- No treatment is required unless it is progressing towards the pupillary area.

Surgical Treatment

Indications include visual impairment, astigmatism, cosmetic reasons, limitation of ocular movement and diplopia.

OMBRAIN'S METHOD

Hold the neck of the pterygium with the fixation forcep and dissect the apex from the cornea.

- The pterygium is freed from sclera along its length.
- Make two parallel incisions on either side of the pterygium in the conjunctiva.
- The head, neck and body of the pterygium are excised.
- The cut conjunctival margins above and below the pterygium are sutured.

Complications

- Astigmatism
- Visual impairment if pupillary area is involved.

Differential diagnosis

Pterygium	Pseudopterygium
Degenerative process	Inflammatory process
A probe cannot be passed under the neck	A probe can be passed
Always situated in the palpebral fissure	Situated at any meridian
Either progressive or stationary	Always stationary
Usually seen in elderly people	Can occur in any age

6.2.6 शुक्तिका

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये शुक्त्याभाः सितनयने स शुक्तिसंज्ञः।

(सु.उ.त. 4/7)

Scanned with CamScanner

नेत्र के श्वेत भाग पर श्याव वर्ण के, मांससदृश, जल शुक्ति के समान आभा लिए बिन्दु हो जाते हैं, उ शुक्ति संज्ञा दी जाती है।

यह पैतिक साध्य रोग है।

पित्तं कुर्यात् सिते बिन्दूनसितश्यावपीतकान्। मलाक्तादर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरुक्।
रोगोऽयं शुक्तिकासंज्ञः सशकृद्भेदतृड्ज्वरः॥ (अ.हृ.उ.त. 10/11)

पित्त के कारण शुक्ल भाग में काले, श्यावर्ण और पीत वर्ण के बिन्दु हो जाते हैं। सारा श्वेत भाग मैल ढके दर्पण की तरह प्रतीत होता है तथा रोगी अतिसार, प्यास और ज्वर से पीड़ित रहता हैं।

चिकित्सा

एषोऽम्लाख्येऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ कार्यः सर्वः स्यात्सिरा मोक्षवर्ज्यः॥ (सु.उ.त 10/13)

अम्लाध्युषित तथा शुक्तिका में सिरामोक्षण वर्जित है तथा लेप, सेक, आश्च्योतन चिकित्सा क्रम करें।

दोषेऽधस्ताच्छुक्तिकायामपास्ते शीतैर्द्रव्यैरञ्जनं कार्यमाशु॥ (सु.उ.त. 10/14)

विरेचन के बाद दोषों के निकल जाने पर शीतल द्रव्यों द्वारा निर्मित अंजन दें।

वैदूर्यं यत् स्फाटिकं वैदुमञ्चमौक्तं, शाङ्खं राजतं शातकुम्भम्।
चूर्णं सूक्ष्मं शर्कराक्षौद्रयुक्तं शुक्तिं हन्यादञ्जनं चैतदाशु॥ (सु.उ.त. 10/15)

वैदूर्यमणि, स्फटिक मणि, मूंगा, मोती, शंङ्ख की भस्म, चांदी की भस्म, सोने की भस्म को चूर्ण कर शर्करा और मधु से युक्त कर नेत्रों में अंजन के रूप में प्रयुक्त करें।

पित्ताभिष्यन्दवच्छुक्तिं॥ (अ.हृ.उ.त. 11/15)

शुक्तिका रोग की पित्तज अभिष्यन्द की तरह चिकित्सा करें।

आधुनिक मतानुसार इसे Xerophthalmia कह सकते हैं।

XEROPHTHALMIA

The syndrome developing in the eyes due to deficiency of vitamin A is known as Xerophthalmia

Etiology

Reduced consumption of Vitamin A which may be due to (a) Prolonged defective absorption of Vitamin A owing to digestive disturbance like chronic diarrhoea and helminthiasis. (b) Diminished intake of Vitamin A.

Excessive utilization of vitamin as in serious debilitating illness.

Daily requirement of vitamin A for a child is 3000 I.U.

Age: Usually present in age of 1 to 5 years.

Sex: Males are more prone.

For diagnostic and therapeutic purposes, WHO classification of Xerophthalmia is used.

WHO classification 1982

XN : Night blindness.

XIA: Conjunctival Xerosis.

XIB: Bitot's spots.

X2: Corneal xerosis.

X3A: Corneal ulceration/keratomalacia affecting less than one-third of corneal surface.

X3B: Corneal ulceration/keratomalacia affecting more than one third of corneal surface.

XS: Corneal scar due to xerophthalmia.

XF: Xerophthalmic fundus.

Clinical features

1. XN (Night Blindness): The earliest symptom of Xerophthalmia is night blindness. The child collides with objects, while moving about in dim light. This night blindness is due to defective regeneration of the visual purple in darkness.
   Normal cycle of regeneration of visual purple is known as Wald's cycle.
2. XIA (Conjunctival Xerosis): It is characterized by lack of lustre of conjunctiva associated with wrinkling and pigmentation. These patches are usually seen in the temporal quadrant but may involve nasal quadrant as well.
3. XIB (Bitot's spots): Bitot's spot is a raised, silvery white, foamy, triangular patch of keratinised epithelium with base towards limbus, situated on bulbar conjunctiva on temporal quadrant and less frequently nasal. It is usually bilateral.
4. X2 (Corneal xerosis): The cornea becomes dull and lustreless. Corneal sensation is reduced and its surface become pebbly.
5. X3A and X3B (Corneal ulceration/Keratomalacia): It is late stage of Xerophthalmia in which cornea appears cloudy and soft. Small ulcers 1-3 mm occurs peripherally; they are circular with steep margins and are sharply demarcated. If appropriate therapy is given, stromal defects involving less than one-third of corneal surface usually heal, leaving useful vision. X3B stage usually results in blindness.
6. XS (Corneal scar): Corneal scars of different densities are left after healing of ulcers.
7. XF - Xerophthalmic Fundus - It is characterized by typical seed like, raised whitish lesions scattered uniformly over the fundus at the level of optic disc.

Treatment

1. Artificial tears (0.7% hydroxy propyl methyl cellulose or 0.3% hypromellose) should be instilled 4-5 times a day.
2. Vitamin A therapy:

(i) All the patients above the age of 1 year (except women of reproductive age) should be given 200,000 I.U. of Vitamin A orally or 100,000 IU by intramuscular injection immediately on diagnosis and repeated the following day and four weeks later.

(ii) Children under the age 1 year and who weigh less than 8 kg should be given half the dose for patients of more than 1 year of age.

(iii) Women of reproductive age should be treated with daily dose of 10,000 I.U. of Vitamin-A.

3. Treatment of the underlying cause.

Scanned with CamScanner

6.2.7 अर्जुन

एको यः शशरूधिरोपमस्तु बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति॥ (सु.उ.त 4/7)

शुक्ल भाग में खरगोश के रक्त के सदृश एक बिन्दु होता है, उसे अर्जुन कहते हैं।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

नीरुक् श्लक्ष्णोर्ज्जुनं बिन्दुः शशलोहितलोहितः॥ (अ.हृ.उ 10/17)

शुक्ल भाग में खरगोश के रक्त के सदृश लाल, चिकना, वेदनाहीन बिन्दु को अर्जुन कहते है।

चिकित्सा

पैत्तं विधिमशेषेण कुर्य्यादर्जुनशान्तये। (सु.उ.त. 12/19)

अर्जुन रोग की शान्ति के लिए पित्ताभिष्यन्द में प्रयुक्त चिकित्सा विधि का प्रयोग करना चाहिए।

इक्षुक्षौद्रसिस्तन्यदार्वीमधुकसैन्धवैः॥ सेकाञ्जनं चात्र हितमम्लैराश्च्योतनं तथा।
सितामधुककट्वङ्गमस्तुक्षोद्राम्लसैन्धवैः॥ बीजपूरककोलाम्लदाडिमाम्लैश्च युक्तितः।
एकशो वा द्विशो वाऽपि योजितं वा त्रिभिसिभिः॥ (सु.उ.त. 12/19-21)

इक्षु, मधु, शर्करा, दुग्ध, दारुहरिद्रा, मुलेठी और सैन्धव लवण से नेत्र का परिषेक करें और अंजन लगाना चाहिए। अम्ल वर्ग के द्रव्यों से नेत्रों का आश्च्योतन हितकारी होता है। शर्करा, मुलेठी, कट्वङ्ग, दही का पानी, शहद, अम्ल पदार्थ, सैन्धव लवण, बिजौरा नींबू का रस, बदरी फल, खट्टे अनार के दाने और अम्ल द्रव्य इनमें से एक-एक या दो-दो अथवा तीन-तीन को युक्तिपूर्वक युक्त करके नेत्र का आश्च्योतन करना चाहिए।

लेख्याञ्जन

लोहचूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि च। रत्नानि दन्ताः शृङ्गाणि गणश्चाप्यवसादनः॥
कुक्कुटाण्डकपालानि लशुनं कटुकत्रयम्॥ करञ्जबीजमेला च लजेख्याञ्जनमिदं स्मृतम्।
पुटपाकावसानने रक्तविस्रावणादिना॥ सम्पादितस्य विधिना कृत्स्नेन स्यन्दधातिना।
अनेनापहरेच्छुक्रमव्रणं कुशलो भिषक्॥ (सु.उ.त. 12/24-27)

लौह चूर्ण, सभी प्रकार की धातुएं, सभी प्रकार के लवण, सभी प्रकार के रत्न, हस्ति दांत, गौ का सींग, अवसादक गण की औषधियां, मुर्गे के अण्डे के छिलके, लहसुन की गिरी, त्रिकटु, करंज के बीज, इलायची इन द्रव्यों को लेकर आंख में अंजन रूप में प्रयुक्त करें। यह लेख्याञ्जन हैं। रक्तविस्रावण से पुटपाक तक की पूरी क्रिया की समाप्ति तक अभिष्यन्दनाशक संपूर्ण विधि कर पश्चात् अंजन का प्रयोग करें। कुशल वैद्य इस चूर्ण से अव्रण शुक्र का भी नाश करें।

रक्तस्यन्दवदुत्पातहर्षजालार्जुनक्रिया। (अ.हृ.उ.त 11/12)

सिरोत्पात, सिराहर्ष, सिराजाल, अर्जुन की चिकित्सा रक्ताभिष्यन्द की भांति करें।

अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्च्योतनं हितम्॥ (अ.हृ.उ.त. 11/12)

अर्जुन में शर्करा, मस्तु और मधु से आश्च्योतन करें।

स्फटिक कुङ्कुमं शङ्खों मधुकं मधुनाऽञ्जनम्। मधुना चाञ्जनं शङ्खः फेनो वा सितया सह॥
(अ.हृ.उ 11/12)

स्फटिक, केसर, शंख, मुलहठी और मधु के साथ अंजन करें। सौवीरांजन, शंखचूर्ण, समुद्रफेन को मधु या मिश्री के साथ अंजन करें।

आधुनिक मतानुसार इसका सामञ्जस्य Subconjunctival haemorrhage के साथ किया जा सकता है।

SUBCONJUNCTIVAL HAEMORRHAGE

Subconjunctival haemorrhage is common since the conjunctival vessels are loosely supported. It may vary in degree from minute petechial spot to extensive extravasation of blood.

Etiology

1. Direct trauma to the eye.
2. Severe conjunctivitis due to pneumococcus, adenovirus etc.
3. Head injury e.g. fracture of the base of skull.
4. Prolonged pressure on thorax and abdomen.
5. Mechanical straining e.g. whooping cough, vomiting, lifting heavy weight.
6. Bleeding disorders e.g. purpura, scurvy, leukemia etc.

Symptom

- Red eye

Sign

- Fresh bright red blood is visible under the conjunctiva.

Course

- At first it is bright red in colour (oxyhaemoglobin).
- Subsequently, it looks blackish-red or orange yellow due to breakdown of oxyhaemoglobin.
- Ultimately it gets absorbed within 2-3 weeks depending on the amount of haemorrhage.

Treatment

- Treat the underlying cause.
- Placebo therapy with astringent eye drops.
- Assurance to the patient.
- Cold compresses in initial stages to check bleeding followed by hot compresses which may help in the absorption of blood in the late stages.

6.2.8 पिष्टक

उत्सन्नः सलिलनिभोऽथ पिष्टशुक्लो बिन्दुर्यो भवति स पिष्टकः सुवृत्तः। (सु.उ.त. 4/8)

नेत्र के शुक्ल भाग में चावल की पिट्ठी के समान श्वेत वर्ण का, जल की तरह दिखने वाला, उभरा, गोलाकार बिन्दु को पिष्टक कहते हैं।

यह कफज साध्य रोग है।

बिन्दुभिः पिष्टधवलैरुत्सन्नैः पिष्टकं वदेत्॥ (अ.हृ.उ 10/13)

पिट्ठी के समान श्वेत, उठे हुए बिन्दु को पिष्टक कहते हैं।

Scanned with CamScanner

श्लेष्मारुत कोपेन शुक्ले मांसं समन्नुतम्।
पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादशीसन्निभम्॥ (भा. मध्यम ख. 4)

कफ और वायु के प्रकोप से शुक्ल भाग में चावल की पिट्ठी की तरह उभरा हुआ तथा मैल से ढके शीशे के तुल्य मांस को पिष्टक कहते हैं।

चिकित्सा

महौषधं मागधिकाञ्च मुस्तां ससैन्धवं यन्मरिचञ्च शुक्लम्।
तन्मातुलुङ्गरवरसेन पिष्टं नेत्राञ्जनं पिष्टकमाशु हन्यात्॥ (सु.उ.त. 11/13)

सोंठ, पिप्पली, नागरमोथा, सैन्धव लवण और श्वेत मरिच को मातुलुङ्ग के रस से पीसकर नेत्र में अंजन करने से पिष्टक नष्ट होता है।

फले वृहत्या मगधोद्भवानां निधाय कल्कं फलपाककाले।
स्रोतोजयुक्तं च तदुद्धृतं स्यात्तद्वत्तु पिष्टे विधिरेष चापि॥ (सु.उ.त. 11/14)

बड़ी कटेरी का फल जब पकने लगे तब उसमें पिप्पली और स्रोतोञ्जन भर देना चाहिए। एक सप्ताह के बाद उसे पीसकर अंजन के रूप में प्रयुक्त करें।

उक्त विधि से ही बड़ी कण्टकारी, सहजन, इन्द्रवारूणी, परवल, चिरायता और आंवला इनके फलों में पिप्पली का चूर्ण और स्रोतोञ्जन भरकर निम्बू के रस के साथ पीसकर अंजन करना चाहिए।

बलासाह्वयपिष्टिके॥ कफाभिष्यन्दवन्मुक्त्वा सिराव्यधमुपाचरेत्।
बीजपूरसाक्तं च व्योषठकट्फलमञ्जनम्॥ (अ.हृ.उ. 11/7-8)

बलासग्रथित और पिष्टक में सिराव्यध को छोड़कर कफाभिष्यन्द की भांति चिकित्सा करें। बीजपूर के रस से भावित त्रिकटु तथा कट्फल का अंजन करें।

आधुनिक मत से इसको Pinguecula कह सकते हैं।

PINGUECULA

Pinguecula is derived from the the latin word pinguiculus means fattyfish. Pinguecula is a type of conjunctival degeneration in the eye. It is extremely common. It is seen as yellowish white deposit on the conjunctiva adjacent to limbus. Histologically it shows degeneration of the collagen fibres of the conjunctival stroma with thinning of overlying epithelium and occasionally calcification. It is most prevalent in tropical climates and in persons with U.V. exposure. It may enlarge slowly.

Benign condition requires no treatment. If cosmesis is a concern, surgical excision is done. It can appear on either side of the cornea, but usually appears on the nasal side. It may increase in size over years.

6.2.9 सिराजाल

जालाभः कठिनसिरो महान् सरक्त सन्तानः स्मृत इव जालसंज्ञितस्तु॥ (सु.उ.त 4/8)

शुक्ल भाग में जाल सदृश कठिन, बड़ी, रक्त वर्ण की सिराएं जोकि चारों तरफ फैली हुई हो को सिराजाल संज्ञा दी जाती है।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

सिराजाले सिराजालं वृहद्रक्तंघनोन्नतम्। (अ. हृ. उ. 10/16)

सिराजाल में वृहदाकार, लालवर्ण, घना, उभरा हुआ सिराओं का जाल होता है।

चिकित्सा

सुश्रुत ने इसमें छेदन कर्म करने को कहा है।

सिराजाले सिरा यास्तु कठिनास्ताश्च बुद्धिमान्। उल्लिखेनमण्डलाग्रेण बडिशेनावलम्बिताः॥ (सु.उ.त. 15/20)

सिराजाल में जो कठिन सिराएं हो उन्हें बडिश से पकड़कर ऊपर उठाकर मण्डलाग्र शस्त्र से काट देना चाहिए।

अष्टांगहृदयकार ने सिराजाल की चिकित्सा रक्ताभिष्यन्द के समान कही है।

सिराजाले सिरा यास्तु कठिना लेखनौषधैः। न सिद्ध्यन्त्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम्॥ (अ.हृ.उ. 11/28)

सिराजाल में कठिन सिराएं जिसमें लेख्यौषध लाभकर न हो तो अर्म की भांति चिकित्सा करें।

आधुनिक मतानुसार इसे Scleritis कह सकते हैं।

The word sclera comes from Greek word meaning hard. It forms the posterior 5/6th part of the eye-ball. Its outer surface is covered by Tenon's capsule and bulbar conjunctiva. Its inner surface lies in contact with choroid. In the anterior part near the limbus, sclera encloses furrow the 'canal of schlemm.' At the entrance of the optic nerve, the sclera is modified into sieve like membrane, the lamina cribrosa. Histologically, the sclera consists of three layers, from without inwards episcleral tissue, sclera proper and lamina fusca.

Inflammation of the sclera

An inflammation of the sclera occurs in two forms:

(1) Episcleritis (2) Scleritis

Episcleritis is transient inflammation of superficial layers of the sclera.

Etiology

1. An allergic reaction to an endogenous toxin.
2. Usually associated with gout or rheumatoid arthritis.

Clinical features

- Redness
- Ocular discomfort
- Photophobia
- Lacrimation

Episcleritis manifests in two forms- Nodular & diffuse.

Nodular Episcleritis

Circumscribed, pink nodule 2 to 3 mm away from the limbus. It is hard, tender, immobile and conjunctiva moves freely over the nodule.

Scanned with CamScanner

Diffuse episcleritis

Whole eye may be involved but maximum inflammation is confined to one or two quadrants. The condition is self limiting and benign.

Treatment

Topical corticosteroids and oral NSAID's.

Scleritis

Scleritis is a chronic inflammation of the sclera proper often associated with systematic diseases.

Etiology

- Autoimmune collagen disorders like R.A., SLE (Systemic lupus erythematosus)
- Focal hypersensitivity reaction to endogenous toxins.
- Idiopathic.

Classification

1. Anterior scleritis
   - (A) Non-necrotizing scleritis
     - (i) Diffuse (ii) Nodular
   - (B) Necrotizing scleritis
     - (i) With inflammation (ii) Without inflammation
2. Posterior scleritis

Clinical features

1. Severe pain 2. Redness 3. Photophobia 4. Lacrimation

Anterior Non necrotizing nodular scleritis

It is characterized by presence of one or more hard, purplish elevated nodules near the limbus with marked inflammation.

Anterior Non necrotizing diffuse scleritis

It is the commonest variety, involving whole sclera or quadrant of it.

Anterior necrotizing scleritis with inflammation

It is characterized by pain and inflammation. The sclera becomes transparent and ectatic with uveal tissue shining through it. It leads to anterior uveitis.

Anterior necrotizing scleritis without inflammation (Scleromalacia perforans). There are no signs of inflammation. It is characterized by development of yellowish patch of melting sclera.

Posterior scleritis - It is an inflammation involving sclera behind the equator.

Complications

- Keratitis
- Uveitis
- Cataract
- Glaucoma
- Scleral perforation
- Scleral thinning known as staphyloma

Treatment

Topical steroid eye drops e.g. Betamethasone to be applied four times a day.

- Systemic indomethacin 100 mg daily for a week.

6.2.10 सिराजपिडका

शुक्लस्थाः सितपिडकाः सिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः सिराजाः। (सु.उ.त. 4/9)

नेत्र के शुक्ल भाग में कृष्ण मण्डल के समीप श्वेत वर्ण की पिड़िकायें निकलती है, जो सिराओं से आवृत रहती हैं। उनकी संज्ञा सिराजपिड़िका है।

यह सन्निपातज साध्य व्याधि है।

.....दाहघर्षवन्त्यः सिरावृताः। कृष्णासन्नाः सिरासंज्ञाः पिटिकाः सर्षपोपमाः॥ (अ.हृ.उ. 10/17)

नेत्र के कृष्ण भाग में सरसों के समान पिडिकाएं जो दाह और घर्ष से युक्त हो तथा सिराओं से आवृत हो उसको सिरापिड़िका कहते हैं।

चिकित्सा

सिरासु पिडका जाता या न सिध्यन्ति भेषजैः। अर्मवन्मण्डलाग्रेण तासां छेदनमिष्यते॥

(सु.उ.त 15/21)

सिराजपिड़िका यदि औषधोपचार से ठीक न होता हो तो अर्म के समान मण्डलाग्रशस्त्र से छेदन कर देना चाहिए।

रोगयोश्चैतयोः कार्यमर्मोक्तं प्रतिसारणम्। विधिश्चापि यथादोषं लेखनद्रव्यसम्भृतः॥

(सु.उ.त. 15/22)

सिराजाल और सिरापिड़का में अर्म रोग में वर्णित लेखन द्रव्यों से विधिपूर्वक और दोषानुसार प्रतिसारण करना चाहिए।

आधुनिक मत से इसका सामंजस्य nodular scleritis से किया जा सकता है।

6.2.11 बलासग्रथित

कांस्याभो भवति सितेऽम्बुबिन्दुतुल्यः स ज्ञेयोऽमृदुररुजो बलासकाख्यः॥ (सु. उ. त. 4/9)

नेत्र के श्वेत भाग में जल की बिन्दु के समान, कांसे की आभा के समान, वेदना रहित, कठिन ग्रन्थि को बलासग्रथित कहते है।

यह कफज साध्य रोग है।

शोफस्त्वरजः सवर्णो बहलोऽमृदुः॥

गुरुः स्निग्धोऽम्बुबिन्द्वाभो बलासग्रथितं स्मृतम्। (अ.हृ.उ. 10/12)

वेदनारहित, शुक्लमण्डल के समान वर्णयुक्त, घना, कठिन, भारी, स्निग्ध, जल बिन्दु के समान दिखाई देने वाले शोथ को बलासग्रथित कहते हैं।

आधुनिक मतानुसार इसको Conjunctival cyst कह सकते हैं।

चिकित्सा

रोगे बलासग्रथितेऽञ्जनज्ञैः कर्त्तव्यमेतत् सुविशुद्धकाये।
नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान् शलाकिनः शुष्कतनून विदह्य।
तथाऽर्जकास्फोत कपित्थबिल्व निर्गुण्डिजाती कुसुमानि चैव॥

Scanned with CamScanner

तत्क्षारवत्सैन्धवतुत्थरोचनं पक्वं विदध्यादथ लोहनाड्या।
एतद् बलासग्रथितेऽञ्जनं स्यादेषोऽनुकल्पस्तु फणिज्झकादौ। (सुउ.त. 11/11-12)

बलासग्रथित में शरीर का शोधन करके अंजन का प्रयोग करें। नीले यव अर्थात् अर्धपक्व या दुग्धयुक्त एवम् शूकदार जौ को लेकर गाय के दूध से भावित कर सूखाकर भस्म कर अंजन रूप में प्रयुक्त करें। आस्फोतक, कपित्थ, बिल्व, निर्गुण्डी पत्र और चमेली के फूल-सब समान भाग में मिला कर जलायें। इस राख को एक प्रस्थ लेकर 6 गुणा जल में मिलाकर 21 बार छान कर क्षारोदक को एक घंटे के लिए निथरने दें। फिर इसे कड़ाही में भरकर सैंधव लवण, नीलाथोथा और रोचना इनका मिश्रित चूर्ण क्षारोदक से 32 वां भाग मिलाकर पकाकर शीशी में भर देवें। फिर इस अंजन को बलासग्रथित रोग में लौह शलाका या सीस शलाका द्वारा अंजन रूप में लगाना चाहिए। फणिज्झक इत्यादि पुष्पों से भी इसी प्रकार क्षारांजन का निर्माण कर सकते हैं।

अष्टांगहृदयकार ने बलासग्रथित की चिकित्सा पिष्टक के समान कही है।

Cysts of the Conjunctiva

1. Implantation cysts - They may develop following surgery or injury.
2. Retention cysts - They occur due to obstruction of the ducts of accessory lacrimal gland.
3. Lymphatic cysts - are due to dilatation of lymphatic spaces.

Treatment

Surgical excision.

सिरोत्पात

रक्तराजीततं शुक्लमुष्यते यत्सवेदनम्। अशोफाश्रुपदेहं च सिरोत्पातः स शोणितात्॥

(अ. [illegible] 5)

सिरोत्पात में नेत्र के शुक्ल भाग में लाल वर्ण की रेखाएं उत्पन्न हो जाएं, दाह और पीड़ा हो, शोफ, आंसू और आंखों में कीचड़ नहीं होता है।

चिकित्सा

रक्तस्यन्दवदुत्पातहर्षजालार्जुन क्रिया। सिरोत्पाते विशेषेण घृतमाक्षिकमञ्जनम्॥

(अ.हृ.उ.त. 11/9)

सिरोत्पात, सिराहर्ष, सिराजाल और अर्जुन इन रोगों में रक्ताभिष्यन्द के समान चिकित्सा करनी चाहिए। विशेष रूप से सिरोत्पात रोग में घृत और मधु का अंजन कराना चाहिए।

सिराहर्ष

उपेक्षितः सिरोत्पातो राजीस्ता एवं वर्धयन्। कुर्यात्सास्रं सिराहर्षं तेनाक्ष्युद्वीक्षणाक्षमम्॥

(अ.हृ.उ.त. 10/16)

सिरोत्पात की उपेक्षा करने पर, रेखाएँ बढ़कर रक्तज सिराहर्ष उत्पन्न कर देती है। इसमें रोगी देखने में असमर्थ होता है।

चिकित्सा

सिराहषे तु मधुना श्लक्ष्णघृष्टं रसाञ्जनम्। (अ.हृ.उ.त. 11/10)

सिराहर्ष में रसौंत को मधु में बारीक पीसकर नेत्रों में अञ्जन करें।

क्र.सं.	व्याधि	दोषप्राधान्य	चिकित्सा
1	प्रस्तारि अर्म	त्रिदोषज	छेदन कर्म
2	शुक्लार्म	कफज	छेदन कर्म
3	लोहितार्म	रक्तज	छेदन कर्म
4	अधिमांसजार्म	त्रिदोषज	छेदन कर्म
5	स्नायु अर्म	त्रिदोषज	छेदन कर्म
6	शुक्तिका	पित्तज	औषध साध्य
7	अर्जुन	रक्तज	औषध साध्य
8	पिष्टक	कफज	औषध साध्य
9	सिराजाल	रक्तज	छेदन कर्म
10	सिराजपिडका	त्रिदोषज	छेदन कर्म
11	बलासग्रथित	कफज	औषध साध्य

Scanned with CamScanner

अध्याय-7

कृष्णगत रोग

वातात् कृष्णम् (सु. उ. 1/1

वात से कृष्णमण्डल की उत्पत्ति होती है।

असृजः कृष्णमण्डलम् तन्मातृजम्॥ (अ. सं. शा. 5/4

कृष्णमण्डल मातृज भाव है। तथा इसकी उत्पत्ति रक्त धातु से होती है।

नेत्रायाम त्रिभागं तु कृष्णमण्डलं। (सु. उ. 1/1

कृष्णमण्डल नेत्र आयाम का एक तिहाई भाग होता है।

7.1 कृष्णगत रोग संख्या

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणं वापाकात्ययश्चाप्यजका तथैव।
चत्वार एते भिहिता विकाराः कण्णाश्रयाः सङ्ग्रहतः पुरस्तात्॥ (सु.उ.त. 5/

कृष्णगत चार है–

1. सव्रणशुक्र 2. अव्रण शुक्र 3. पाकात्यय 4. अजकाजात

अष्टांगहृदयकार ने इनकी संख्या 5 कही है–

1. सव्रण शुक्ल (क्षत शुक्ल) 2. अव्रण शुक्ल (शुद्ध शुक्ल)
3. अजका 4. सिराशुक्ल 5. पाकात्यय

क्र. सं.	व्याधि	दोष प्राधान्य	साध्यासाध्यता
1.	सव्रण शुक्ल	रक्तज	असाध्य
2.	अव्रणशुक्ल	रक्तज	साध्य
3.	अक्षिपाकात्यय	त्रिदोषज	असाध्य
4.	अजकाजात	रक्तज	असाध्य

7.1.1 सव्रण शुक्र

निमग्नरूपं हि भवेत्तु कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद् वै।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव रुक् च तत् सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति॥ (सु.उ.त. 5/

नेत्र के कृष्ण भाग में गहराई में स्थित तथा सुई से विद्ध हुये की तरह प्रतीत होनेवाला व्रण जिससे उष्णस्राव होता है तथा तीव्र पीड़ा हो उसे सव्रणशुक्र कहते हैं।

यह रक्तज असाध्य व्याधि है।

पित्तं कृष्णेऽथवा दृष्टौ शुक्रं तोदाश्रुरागवत्। छित्वा त्वचं जनयति तेन स्यातकृष्णमण्डलम्॥
पक्वजम्बूनिभं किञ्चितन्निम्नं च क्षतशुक्रकम्। तत्कृच्छ्रसाध्यं, याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात्॥
तत्र तोदादिबाहुल्यं सूचीविद्धाभकृष्णता॥ तृतीयपटलच्छेदादसाध्यं निचितं व्रणैः।

(अ.हृ.उ 10/22-25)

पित्त कृष्णभाग में अथवा दृष्टिमण्डल के स्थान पर त्वचा का छेदन करके शुक्र उत्पन्न करता है। इसमें सूचीविद्धवत् वेदना, अश्रुस्राव और लालिमा होती है। इसमें कृष्णमण्डल पके हुए जामुन के सदृश होता है तथा कुछ दबा हुआ होता है। इसको क्षतशुक्र कहते हैं। यह कष्ट साध्य व्याधि है। अगर द्वितीय पटल का व्यधन हुआ हो तो, याप्य होता है तथा तोदादि लक्षण अधिक होते हैं और सुई से वेधन हुए की भांति कालापन दिखता है। तृतीय पटल का अगर व्यधन हो गया हो तो असाध्य होता है और यह व्रण से भरा होता है।

विदेह ने सव्रण शुक्र का लक्षण इस प्रकार वर्णित किया है कि कृष्ण भाग में मूंग के प्रमाण की पिड़का होती है तथा उससे उष्णाश्रुपात होता है तथा कृष्ण भाग लाल रेखाओं से आच्छादित रहता है (Perilimbal या Ciliary congestion)।

सव्रण शुक्र की साध्यासाध्यता

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्धि।
अवेदनावत्र च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमाप्नोति कदाचिदेव॥
विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं सिरासक्तम दृष्टिकृच्च।
द्वित्वगतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थिञ्चापि विवर्जनीयम्॥
उष्णाश्रुपातः पिडका च कृष्णे यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभञ्च शुक्रम्।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम्॥ (सु.उ.त. 5/5-7)

जो सव्रण शुक्र दृष्टि के समीप न हो, गम्भीर न हो, अत्यधिक स्राव न हो, वेदना से रहित हो एवम् युग्म (संख्या में दो) न हो वह उपयुक्त चिकित्सा करने से कभी-कभी ठीक हो जाता है किन्तु जो सव्रण शुक्र मध्यस्थान से छिन्न हो गया हो, मांस से आवृत हो, सिराओं से आवृत हो, चल (Progressive) हो, दो पटलों में आश्रित हो, तथा जिसका प्रान्त भाग लाल हो (Congestion) और चिरकाल से उत्पन्न हुआ हो वे त्याज्य है। जिसमे से सदैव गर्म आंसू निकलते हो तथा कृष्णमण्डल पिड़िकाओं से युक्त रहता हो तथा मूंग की आकृति की पिड़का हो वह असाध्य है तथा जो तित्तिर पक्षी के पंख के समान रंग का हो वह भी असाध्य होता है।

चिकित्सा

उत्तानमाऽगाढं वा कर्कशं वाऽपि सव्रणम्।
शिरीषबीज मरिच पिप्पली सैन्धावैरपि॥ शुक्रस्य घर्षणं कार्यं अथवा सैन्धवेन तु।

(सु. उ. त. 12/28-29)

सव्रण शुक्र चाहे उत्तान हो या अवगाढ़ (Deep) या कर्कश हो उसे शिरीष के बीज, काली मिच, पिप्पली और सैंधव इनके समभाग निर्मित पूर्ण से घर्षण करना चाहिए।

दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्ध रुक्षा वरा घृतम्। तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्रावो रेकसेकादि चेष्यते॥

(अ.हृ.उ. 11/29)

दोषों के अनुसार शुक्र रोगों में त्रिफला स्निग्ध या रूक्ष रूप में प्रयोग करें तथा तिक्त घृत का प्रयोग करें तथा मस्तक की सिरा का वेधनकर रक्त निकालें तथा विरेचन, सेक दें।

Scanned with CamScanner

त्रिस्त्रिवृद्वारिणां पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत्। सिरयाऽनु हरेद्रक्तं जलोकाभिश्च लोचनात्॥

(अ.हृ.उ. 11/30)

निशोथ के क्वाथ से तीन बार सिद्ध किया हुआ घृत पिएं। पश्चात् सिरा छेदन कर अथवा जोंक लगाकर नेत्र का रक्त निकालना चाहिए।

सिद्धेनोत्पलकाकोली द्राक्षायष्टिविदारिभिः। ससितेनाजपयसा सेचनं सलिलेन वा॥

(अ.हृ.उ. 11/31)

कमल, काकोली, द्राक्षा, मुलहठी, विदारीकन्द इनसे सिद्ध किये बकरी के दूध में शर्करा मिलाकर अथवा इन्हीं द्रव्यों से सिद्ध जल से नेत्रों में सेंचन करें।

रागाश्रुवेदनाशान्तौ परं लेखनमञ्जनम्। वर्तयो जातिमुकुललाक्षागैरिकचन्दनैः॥

(अ.हृ.उ. 11/32)

आँख में लालिमा, अश्रु और वेदना की शान्ति होने पर लेख्यांजन नेत्र में डालें। चमेली, लाख, गेरु और चन्दन इनसे बनाई वर्तियां पित्त, रक्त और क्षतशुक्र को नष्ट करती हैं।

तमालपंत्र गोदन्तशङ्खफेनोऽस्थि गार्दभम्। ताम्रं च वर्तिमूत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी॥

(अ.हृ.उ. 11/35)

तमालपत्र, गोदन्त, शंख, समुद्रफेन, गधे की अस्थि, ताम्र चूर्ण इनकी वर्ति को गोमूत्र में पीसकर लगाने से सब प्रकार के शुक्र नष्ट होते हैं।

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसांजनैः। सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम्॥

शुद्धशुक्रे निशायष्टी सारिवाशाबराम्भसा॥ सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णाम्भोमग्नयाऽथवा॥

(अ.हृ.उ. 11/37-38)

स्नेहपान, नस्य और रसांजन से निम्नस्थ शुक्र को ऊँचा करें। तर्पण और पुटपाक से वेदना वाले शुक्र को वेदनारहित करें। शुद्ध शुक्र में हल्दी, मुलहठी, सारिवा और शाबरलोध के क्वाथ से परिषेक करें अथवा लोध्र की पोटली को पानी में भिगोकर सेक करें।

उत्सन्नं वा स शल्यं वा शुक्रं वालादिभिर्लिखेत्॥ (अ.हृ.उ. 11/48)

ऊपर को उठे हुए या शल्य युक्त शुक्र का बाल आदि से विलेखन करें।

योगरत्नाकर मतानुसार सव्रण शुक्र में षडंग गुग्गुल बनाकर खिलाएं तथा जलौका से रक्तमोक्षण करें।

आधुनिक मतानुसार सव्रण शुक्र को Ulcerative keratitis या Corneal ulcer कह सकते हैं।

Cornea is transparent, avascular, watch-glass like structure. It forms anterior one-sixth of the outer fibrous coat of the eye-ball. Its horizontal diametre is 11.5 mm and vertical diametre about 11 mm. The cornea is thicker at periphery (0.67 mm) than at the centre (0.52 mm). The cornea acts as protective membrane as well as a refracting surface. It has a refractive power of about + 40D. The transparency of cornea is due to its peculiar lamellae arrangement, selective permeability of the epithelium and endothelium and avascularity. The central one-third is known as the optical zone. Refractive index of the cornea is 1.37.

Structure: The cornea has five layers which from anterior to posterior are:

1. **Epithelium:** It is a continuation of the epithelium of bulbar conjunctiva and consists of five layers of cells. The deepest (basal) layer is made up of columnar cells, next 2-3 layers of wing or umbrella cells and the most superficial two layers are of flattened cells. It is normally replaced within 7 days when damaged.
2. **Bowman's membrane:** It does not regenerates once damaged. This results in the formation of permanent corneal opacity.
3. **Substantia propria or corneal stroma:** It constitutes 90% of the entire thickness of the cornea and is composed of modified connective tissue containing lamellae and cells.
4. **Descemet's membrane**: It is strong homogenous layer which can regenerate. In the periphery, it appears to end at the anterior limit of trabecular meshwork as "schwalbe's line.
5. **Endothelium:** The most posterior layer of cornea consists of a single layer of flat hexagonal cells. The cell density of endothelium is 3000 cells/mm^2 in young adults which decreases with advancing age. The endothelial cells contains active pump mechanism.

Blood supply: The cornea is an avascular structure.

However, it does get some nourishment from the superficial plexus formed by the episcleral branches of the anterior ciliary arteries.

Nerve supply: Cornea is supplied by anterior ciliary nerves which are branches of ophthalmic division of the 5th cranial nerve.

Functions: There are two primary functions of the cornea.

1. It acts as a major refracting medium 2. It protects the intraocular contents.

Keratitis

The inflammation of cornea is known as keratitis.

Types

1. Ulcerative keratitis - Here corneal epithelium is not intact.
2. Non-ulcerative keratitis - Here corneal epithelium is intact.

Non ulcerative keratitis

1. Superficial keratitis
   (a) Diffuse superficial keratitis (b) Superficial punctate keratitis
2. Deep keratitis
   (a) Non-suppurative
      (i) Interstitial keratitis (ii) Disciform keratitis
      (iii) Keratitis profunda (iv) Sclerosing keratitis
   (b) Suppurative deep keratitis
      (i) Central corneal abscess (ii) Posterior corneal abscess

Scanned with CamScanner

CORNEAL ULCER (Ulcerative keratitis)

Corneal ulcer: It is discontinuation in the normal epithelial surface of the cornea associated with necrosis of surrounding corneal tissue.

Etiology

1. Trauma to the corneal epithelium as by foreign body, misdirected eye-lash or conjunctival concretion.

2. Unhealthy condition of the epithelium as in absolute glaucoma, keratomalacia.

Normal corneal epithelium cannot be penetrated by any organism except by diphtheria bacillus and gonococcus.

A corneal ulcer may terminate in one of the three ways -

1. If the tissue resistance is strong, the ulcer remains localized and ultimately heals.
2. The ulcer penetrates through the corneal substance.
3. The ulcer spreads and whole cornea or part of it sloughs off.

Classification

Ulcerative keratitis can be classified as –

Etiological Classification

1. Infective keratitis
   a. Bacterial b. Viral c. fungal d. Protozoal
2. Allergic keratitis 3. Traumatic keratitis 4. Idiopathic keratitis

Morphological classification

(A) Depending on location (i) Central corneal ulcer (ii) Peripheral corneal ulcer.

(B) Depending on purulence (i) Purulent corneal ulcer (mostly bacterial and fungal) (ii) Non purulent corneal ulcer (mostly viral and allergic corneal ulcer).

(C) Depending upon association of hypopyon: (i) Simple corneal ulcer (ii) Hypopyon corneal ulcer.

(D) Depending upon depth: (i) Superficial corneal ulcer (ii) Deep corneal ulcer.

Bacterial corneal ulcer :

Bacterial corneal ulcer is an infection of the cornea associated with discontinuity of the corneal epithelium. The ulcer may occur due to corneal abrasion due to trauma, foreign body, contact lens wear or impaired defense mechaanism.

The pathogenesis of corneal ulcer may be described under four stages.

1. Stage of infiltration - In this stage, the superficial layers of cornea show focal infiltration with inflammatory cells predominantly polymorphonuclear.The epithelium is edematous and raised at the site of infiltration.It undergoes necrosis and ultimately desquamates.If the lesion is superficial and does not involve Bowman's membrane it heals quickly. In case, the infiltration extends into the deeper layers of the cornea, it indicates the progression of lesion.

2. Stage of ulceration - The epithelium at the margins of the ulcer swells and overhangs. The corneal lamellae imbibe fluid and project above the surface giving a saucer shaped appearance to the ulcer. The surrounding area is packed with leucocytes and appears as a grey zone of infiltration. This is the progressive stage.

3. Stage of regression - The sloughed corneal lamellae are cast off and the ulcer appears somewhat larger but clean with smooth floor and edges.

4. Stage of cicatrization - In this stage, the granulation tissue is formed which is composed of irregularly arranged fibroblasts. Thus after healing, cornea becomes opaque at the site of ulceration.

Causative organisms

Common bacteria associated with corneal ulceration are: Staphylococcus aureus, Pseudomonas pyocyanea, Streptococcus pneumoniae, E. coli.

Symptoms

- Pain. • Photophobia. • Lacrimation. • Blurring of vision.
- Lids are swollen.
- Blepharospasm: There is tight closure of the eyelids especially in children.
- Ciliary congestion. • Conjunctival hyperaemia.
- Hypopyon may / or may not be present.
- Iris is slightly muddy in colour and the pupil is small

Diagnosis

- Fluorescein staining: It stains the margins of ulcer bright green.
- Slit lamp examination: Shows irregular margins of ulcer and details of anterior segment of eye.

Complications - 1. Toxic iridocyclitis. 2. Perforation of the corneal ulcer. 3. Descemetocele. 4. Secondary glaucoma.

Treatment

1. Topical antibiotic drops are instilled at half hourly interval in initial stages. Later on frequency can be reduced depending upon the response. Fortified multi drug combination of antibiotics are also common. Eye ointments have prolonged action so are applied at night.
2. Cycloplegic drugs as homatropine 2% reduce ciliary spasm and are used twice a day.
3. Steroid preparations should be avoided as they retard epithelial healing and promote secondary viral and fungal infections.
4. Analgesics and anti inflammatory drugs.
5. General health and nutritional status should be improved.
6. Vitamin A and Vitamin C are helpful.
7. Any septic focus in surrounding tissues should be removed.
8. Avoid bandage as it increases local temperature, thence growth of organisms.

Treatment of complications of corneal ulcer

1. For secondary glaucoma Tab Diamox 500 mg bd.
2. For descemetocele, paracentesis is done.
3. Pad and bandage for sloughed corneal ulcer.
4. Corneal transplant if opacity and blindness develop.

Descemetocele is formed due to bulging of Descemet's membrane in case of penetrating corneal ulcer.

Paracentesis : It is surgical procedure of drainage of aqueous humour. This is a sign of impending perforation and is usually associated with severe pain.

Scanned with CamScanner

7.1.2 अव्रण शुक्र

सितं यदा भात्यसित प्रदेशे स्यन्दात्मकं नातिरुगश्रुयुक्तम्।
विहायसीवाच्छघनानुकारि तदव्रणं साध्यतम् वदन्ति।।
गम्भीरजातं बहलञ्च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम्।। (सु.उ.त. 5/9)

अभिष्यन्द के कारण कृष्ण भाग में सफेदी आ जाती है। पीड़ा, अश्रु नहीं होते हैं, इस सफेदी की आभा स्वच्छ मेघ से घिरे हुए आकाश की तरह होती है, यह अव्रण शुक्र है तथा साध्य रोग है। गहराई में स्थित अर्थात् द्वितीय तथा तृतीय पटल में स्थित हो, आकार में मोटा हो और अधिक दिनों से उत्पन्न हो तो कृच्छसाध्य है।

अष्टांगहृदयकार ने अव्रण शुक्र को शुद्धशुक्र कहा है।

शङ्ख शुक्लं कफात्साध्यं नातिरुक् शुद्धशुक्रकम्। (अ.हृ.उ. 10/25)

शुद्धशुक्र शंख के समान श्वेत, कफज साध्य व्याधि तथा अल्प वेदना युक्त होता है।

चिकित्सा

1. अव्रण शुक्र में प्राकृत रूपेण पारदर्शी रहने वाला कृष्ण मण्डल किसी अभिघात या संक्रमण के कारण श्वेताभ हो जाता है तथा दृष्टि बाधित हो जाती है। शुक्ल या "शुक्र" पद श्वेत वर्ण का द्योतक है।

2. चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य विकृतिविघटनार्थ श्वेताभ वर्ण का नाश व निम्नगत प्रदेश का उन्नयन होता है।

3. **द्वित्वग्गते सशूले वा वातघ्नं तर्पणं हितम्।** (सु.उ.त. 12/34)

द्वितीय पटलाश्रित शुक्ररोग में शूल हो तो उसे नष्ट करने के लिए वातनाशक पदार्थों के स्वरस से तर्पण करना लाभदायक है।

4. **निम्नमुन्नमयेत् स्नेहपाननस्यरसांजनैः सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रम।।**

(अ. हृ. उ. 11/37)

वेदना युक्त निम्नगत (दबे हुये) शुक्र (कृष्ण मंडल स्थित श्वेत व्रण) को स्नेहन (पान व नस्य) व रसांजन के प्रयोग से व भरने का प्रयत्न करना चाहिये। वेदना रहित होने पर तर्पण व पुटपाक का प्रयोग करना चाहिये।

5. **नित्यं च शुक्रेषु श्रृतं यथास्वं पाने च मर्शे च घृतं विदध्यात्।**
न हीयते लब्ध बला तथाऽन्तः तीक्ष्णांजनैदृक् सततं प्रयुक्तैः।। (अ. हृ. उ. 11/58)

सभी शुक्र रोगों में नित्य साधित घृतों का पान व मर्श नस्य करना चाहिये। तीक्ष्ण अंजनों का सतत प्रयोग भी इस प्रकार के घृतपान व नस्य के फलस्वरूप दृष्टि को हानि नहीं पहुँचाता है।

शुक्र वैवर्ण्य नाशन योग

वंशजारुष्करौ तालं नारिकेलंच दाहयेत् विम्राव्य क्षारयेच्चूर्णं भावयेत्करभास्थिजम्।।
बहुशोऽञ्जनमेतत्स्याच्छुक्र वैवर्ण्य नाशनम्।। (सु.उ.त. 12/35)

शुक्र वैवर्ण्य नाशन के लिए बांस के अंकुर, शुद्ध भल्लातक, ताड़ और नारिकेल इन्हें तिलनाल के साथ जलाकर भस्म कर लें। फिर षडगुण अथवा अष्टगुण जल में घोल कर अनेक बार छानकर क्वाथ करें, तत्पश्चात् इसे हाथी की अस्थि की भस्म से घोट कर अंजन बनाकर आंखों में अनेक बार लगाएं।

आधुनिक मतानुसार इसे Corneal opacity कह सकते हैं।

Etiology

1. Healed corneal ulcer
2. Healed keratitis
3. Penetrating injury to the cornea
4. Operative injury to the cornea
5. Foreign body
6. Corneal dystrophy.

Types

1. Nebular.
2. Macular.
3. Leucoma.

Nebula: If the corneal ulcer involves Bowman's membrane and superficial layers of stroma, the opacity is termed Nebula. It is faint and the finer details of iris are clearly visible through the opacity.

Macula: It involves about half the thickness of the stroma. The fine details of the deeper structures are observed partially.

Leucoma: A thick, white, dense and opaque scar results when almost full thickness of stroma is involved. Nothing can be seen through leucoma.

Clinical features

- No symptom if the opacity is outside the pupillary area.
- Visual disturbance if it is in the pupillary area.

Treatment

- Application of dionine 2% or yellow oxide of mercury 1 % ointment have been reported to clear nebula of recent origin.
- Keratoplasty in which the opaque portion of the cornea is removed and clear cornea from the donor's eye is replaced.
- **Tattooing:** 2% gold chloride or 2% platinum chloride and 2% hydrazine hydrate solutions are applied to area with the swab stick one after another, the opacity takes brown colour. with gold chloride and black with platinum chloride. Excess chemical is removed by irrigating the eye with normal saline and eye is kept bandaged for 48 hours.

7.1.3 अक्षिपाकात्यय

संच्छाद्यते श्वेतनिभेन सर्वं दोषेण यस्यासित मण्डलं तु।
तमक्षिपाकात्ययमक्षि कोपसमुत्थितं तीव्ररुजं वदन्ति।। (सु.उ.त. 5/9)

जिसमें कृष्ण मण्डल श्वेत आभा से आच्छादित हो जाता है, उसे अक्षिपाकात्यय कहते हैं। यह रोग अक्षिकोप (अभिष्यन्द) से उत्पन्न होता है तथा इसमें तीव्र पीड़ा होती है।

यह त्रिदोषज असाध्य व्याधि है।

दोषैः साम्रैः सहक् कृष्णं नीयते शुक्लरूपताम्।। धवलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाकृति।
अतितीव्ररूजारागदाहश्वयथुपीडितम्।। पाकात्ययेन तच्छुक्रं वर्जयेतीव्रवेदनम्।
(अ.हृ.उ. 10/28-29)

Scanned with CamScanner

रक्त सहित दोषों के कारण यदि दृष्टिमण्डल के साथ कृष्णमण्डल श्वेत हो जैसे श्वेत बादल से भरा आकाश दिखाई दे, सेम के आधे टुकड़े की आकृति का हो जाये, आँख में तीव्र वेदना, लालिमा, ज्वलन और शोथ हो, उस तीव्र वेदना युक्त पाकात्यय रूप शुक्र को असाध्य समझना चाहिए।

इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं मिलता है।

आधुनिक मत से इसे Hypopyon Corneal ulcer कह सकते हैं।

HYPOPYON CORNEAL ULCER

A disc shaped central corneal ulcer with hypopyon (sterile pus in the anterior chamber) and violent iridocyclitis is called hypopyon ulcer.

Etiology

- It is usually found in old, debilitated and malnourished patients who may be suffering from chronic dacrocystitis.
- Pneumococcus, Streptococcus, Gonococcus and proteus vulgaris are common pyogenic organisms; most dangerous are pseudomonas pyocyanea and pneumococcus.
- A typical pneumococcus ulcer is known as ulcus serpens. It starts as greyish white disc with infiltrating edges near the central part of the cornea.
- The clinical features are same as that of corneal ulcer.

Pathogenesis

1. In the corneal ulcer, there is always iridocyclitis due to liberation of toxins by the bacteria which diffuses into the anterior chamber via endothelium.
2. Hypopyon is sterile and usually gets absorbed when hypopyon corneal ulcer is treated.
3. There is outpouring of leucocytes. These cells gravitate to bottom of anterior chamber to form hypopyon.

Symptoms

- Pain
- Lacrimation
- Photophobia

Signs

- Cornea is lustreless
- Greyish white or yellow disc is seen in the centre.
- Conjunctival congestion
- Ciliary congestion
- Lids are swollen

Treatment

- Broad spectrum antibiotic drops are instilled frequently.
- Topical atropine is given if the tension is raised.
- Associated chronic dacrocystitis should be treated.

7.1.4 अजकाजात

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलेहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः।
विदार्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तञ्चजकाजातेमित्त व्यवस्येत्।। (सु.उ.त. 5/10)

नेत्र के कृष्ण मंडल को विदीर्ण करके निकलने वाला तथा बकरी की मींगणी के समानकृति वाला एवम् पीड़ायुक्त, लाल वर्ण का तथा लाल वर्ण के पिच्छिल स्राव से युक्त जो पदार्थ निकलता है, उसे अजकाजात कहते हैं।

यह रक्तज असाध्य व्याधि है।

आताम्रपिच्छलास्रसृगताम्रपिडिकाऽतिरुक् अजाविट्सदृशोच्छ्रायकाष्ण्यां वर्ज्याऽसृजाऽजका।।
(अ.हृ.उ. 10/26)

अजका में ताम्र वर्ण, पिच्छिल अश्रुस्राव होता है, ताम्र वर्ण की पिड़का होती है। इसमें अत्यंत वेदना होती है। यह देखने में बकरी की मिंगनी की तरह उभरी हुई और काले रंग की होती है। यह रक्त दोष के कारण होने वाली व्याधि है तथा असाध्य है।

चिकित्सा

अजकां पार्श्वतो विद्धवां सूच्या विस्राव्य चोदकम्। व्रणं गोमांसचूर्णेन पूरयेत् सर्पिषा सह।
बहुशोऽवलिखेच्चापि वर्त्मास्योपगतं यदि।। (सु. उ. त. 12/36-37)

अजकाजात में सुई से पार्श्व में वेधन करके पानी को निकाल दें तथा गोमांस को गोघृत के साथ मिलाकर भर दें। यदि इस रोग में नेत्रवर्त्म उठा हुआ हो तो अनेक बार शस्त्र द्वारा उसका लेखन कर देना चाहिए।

अशान्तावर्मवच्छस्रमजकाख्ये च योजयेत्। अजकायामसाध्यायां शुक्रेऽन्यत्र च तद्विधे।।
वेदनोपशमं स्नेहपानासृकस्रावणादिभिः। कुर्याद्वीभत्सतां जेतुं शुक्रस्योत्सेधसाधनम्।।
(अ.हृ.उ. 11/51-52)

अजका के शान्त न होने पर अर्म की तरह शस्त्र कर्म करें। असाध्य अजका और शुक्र में तथा इसी प्रकार के दूसरे रोगों में वेदना की शान्ति के लिए स्नेहपान, रक्तमोक्षण आदि करें। वीभत्सता, शुक्लता (सफेदी) और उभार को दूर करने के लिए प्रयास करें।

गवामस्थित्वचं कांस्ये विनिघृष्यंसुखाम्बुना। पूरयेदक्षि तेनाऽऽशु शाम्यत्यजकामयः।।
अङ्गारपक्वशम्बूकरसेनाऽश्च्योतनाञ्जनम्। कर्पूरचूर्णयुक्तेन शाम्यते त्वजकामयः।।
सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमायुतम्। शेलुत्वग्तससंयुक्तं पूरणंचाजकापहम्।। (योग. नेत्र.)

गाय की हड्डी का ऊपरी भाग कांसे के बर्तन में कोष्ण जल से पीसकर आंख में लगाने से अजका शान्त होता है। निर्धूम अंगार पर शाम्बूक मांस पकाकर उस रस में कर्पूर चूर्ण मिलाकर नेत्र में आश्च्योतन और अंजन के रूप में लगाने से अजका शान्त होता है।

सैंधव लवण, अश्वगंधा, गोरोचना, लिसोड़े का रस मिलाकर नेत्र में लगाने से अजका ठीक होता है।

आधुनिक मत से इसे Anterior Staphyloma/Iris prolapse कह सकते हैं।

Staphyloma is defined as ectatic cicatrix of the cornea or sclera lined by uveal tissue. It occurs due to weakening of the outer tunic of eye by inflammatory or degenerative condition.

Scanned with CamScanner

7.2 सिराशुक्र

सिरा शुक्रं मलैः साम्रैस्तज्जुष्टं कृष्णमण्डलम्। सतोद दाहताम्राभिः सिराभिरवतन्यते॥
अनिमित्तोष्णशीताच्छघनास्रसुक् च तव्यजेत्। (अ.हृ.उ. 10/27)

रक्तयुक्त वातादि दोषों से कृष्णमण्डल तोद, दाह एवम् ताम्र वर्ण की सिराओं से भर जाता है; बिना कारण के ही उसमें से उष्ण, शीतल, स्वच्छ, घना रक्त बहने लगे, इसको सिराशुक्र कहते हैं तथा यह त्याज्य है।

सिराशुक्र की चिकित्सा

सिराशुक्रे त्वदृष्टिघ्ने चिकित्सा व्रणशुक्रवत्। पुण्ड्रेयष्ट्याह्वकाकोलीसिंहलोहनिशाञ्जनम्॥
कल्कितं छागदुग्धेन सघृतैर्धूपितं यवैः। धात्रीपत्रैश्च पर्यायाद्वार्तिरत्राञ्जनं परम्॥
(अ.हृ.उ. 11/49-50)

यदि सिराशुक्र से दृष्टि में कोई बाधा नहीं हो तो, उसकी चिकित्सा शुक्रव्रण के समान करनी चाहिए। पुण्डरीक, मुलहठी, काकोली, कुटेली, अगर, हल्दी, स्रोतांजन इनको बकरी के दूध में पीसकर जौ और घी मिलाकर तथा आंवलों के पत्तों से पर्यायक्रम से (एक के बाद दूसरे से) धूप देकर बनाई वर्ति अंजन के लिए श्रेष्ठ है।

आधुनिक मत से इसे Corneal neovascularization कह सकते हैं।

CORNEAL NEOVASCULARIZATION

Normally cornea is avascular structure except for small capillary loops which are present in the periphery for about 1 mm. Corneal neovascularization is always pathological. Vascularization interferes with corneal transparency.

Types: Superficial or deep corneal vascularization.

1. **Superficial corneal vascularization:** Here vessels are arranged in an arborising pattern, present below the epithelial layer and their continuity can be traced with the conjunctival vessels.

Causes

- Trachoma
- Superficial corneal ulcers.
- Phylectenular kerato conjunctivitis.

2. Deep Corneal vascularization: In it vessels are generally derived from anterior ciliary arteries and lie in corneal stroma. These vessels are usually straight, not anastomosing and their continuity cannot be traced beyond the limbus.

Causes

- Deep corneal ulcer.
- Chemical burns
- Interstitial keratitis.

Treatment

- Treat the underlying cause.
- Application of corticosteroid drops.
- Application of irradiation is effective especially in superficial vascularization.

7.3 Corneal transplant

Corneal transplant, also known as corneal grafting or keratoplasty is a surgical procedure where damaged cornea is replaced by donated corneal tissue. The graft is obtained from a recently deceased individual with no known diseases. It is one of most successful organ transplant surgeries. A healthy corneal tissue is supplied by an eye bank. Keratoplasty aims at attaining normal visual acuity and protecting intraocular structures.

Indications

1. To improve visual acuity in diseased conditions like corneal opacity, bullous keratopathy, corneal dystrophies and advanced keratoconus.
2. To replace inflammed cornea not responding to the conventional treatment.
3. Cometic - i.e to improve the appearance of the eye.

Procedure

Remove circular portion from the centre of cornea under general anaesthesia and replace with the similar sized circular area from donors cornea which is then stitched.

Types

1. Penetrating Keratoplasty (full thickness grafting).
2. Lamellar Keratoplasty (partial thickness grafting).

Lamellar Keratoplasty - It is done if damaged corneal tissue is mainly located in outermost 50% of cornea. It is less invasive.

Penetrating keratoplasty involves surgical removal of the central two-third of the damaged cornea. Cornea is removed with trephine and replaced with clear cornea obtained from eye bank. Healing time is longer. This is the most common type.

Complications

1. Rejection of new corneal transplant. Warning signs for rejection are decreased vision, increased redness, pain and sensitivity to light.
2. Some degree of astigmatism where cornea has asymmetrical curvature.

7.4 Eye Bank

Eye bank collect and stores donor's cornea for keratoplasty.

Contraindications for collection of Donor eyes:

1. Corneal dystrophy
2. Keratoconus
3. Malignant tumour
4. Active inflammatory diseases e.g. conjunctivitis, iridocyclitis and panopthalmitis
5. Diseases like AIDS, leukaemia and malignancy.

Preservation of the Donor Eye

1. Short term preservation - It is done upto 48 hours. In this method, the whole globe is preserved in a moist chamber at 4°C in a refrigerator.
2. Intermediate preservation - It is done upto two weeks. Optisol medium, dexol medium are used for preservation.
3. Long term preservation - It is done upto 35 days by organ culture method.

Scanned with CamScanner

The donor eye should be removed within 6 hours of death. It should be stored under steril conditions

7.5 Panophthalmitis

It is purulent inflammation of the whole eyeball. It usually starts as an anterior uveitis o vitritis.

Etiology

1. Penetrating ocular injury.
2. Post-operative bacterial or fungal infection.

Clinical features

- Severe ocular pain
- Redness
- Lacrimation
- Photophobia
- Marked loss of vision
- Ocular movements are restricte
- Anterior chamber contains blood.
- Pupil shows yellow reflex due to purulent exudation in vitreous.

Treatment

- Subconjunctival injection of antibiotic every 12 hours in addition to systemic antibiotics
- Intravitreal injection of antibiotic
- Evisceration is done in desperate cases.

✕ ✕ ✕

अध्याय-8

सर्वगत रोग

सर्वगत रोग से तात्पर्य यह हैं जो रोग नेत्र के पूरे भाग में होते हैं।

8.1 सर्वगत रोग संख्या

स्यन्दास्तु चत्वार इहोपविष्टास्तावन्त एवेह तथाऽधिमंथाः।
शोफान्वितोऽशोफयुतश्च पाकावित्येवमेत दश सम्प्रविष्टाः॥3॥
हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च शुष्काक्षिपाकोऽन्यत एव वातः।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता सिराणामुत्पातहर्षावपि सर्वभागाः॥4॥ (सु.उ.त 6/3-4)

सर्वगत रोग 17 प्रकार के होते हैं-

1-4. अभिष्यन्द	5-8. अधिमन्थ	9. सशोफ अक्षिपाक	10. अशोफ अक्षिपाक
11. हताधिमन्थ	12. वातपर्यय	13. शुष्काक्षिपाक	14. अन्यतोवात
15. अम्लाध्युषित	16. सिरोत्पात	17. सिराहर्ष	

वाग्भट ने 16 सर्वगत रोग कहे हैं।

1. वातज अभिष्यन्द	2. वातज अधिमन्थ	3. हताधिमन्थ	4. अन्यतोवात
5. वातपर्यय	6. पित्ताभिष्यन्द	7. पित्ताधिमन्थ	8. कफज अभिष्यन्द
9. कफज अधिमन्थ	10. रक्तज अभिष्यन्द	11. रक्ताधिमन्थ	12. शुष्काक्षिपाक
13. सशोफ अक्षिपाक	14. अक्षिपाकात्यय	15. अशोफ अक्षिपाक	16. अम्लोषित

अभिष्यन्द का सर्वरोगकारणत्व

प्रायेण सर्वे नयनामयास्तु भवन्त्यभिष्यन्दनिमित्तमूलाः।
तस्मादिभष्यन्दमुदीर्यमाणमुपचरेदाशु हिताय धीमान्॥ (सु.उ.त. 6/5)

प्रायः सभी प्रकार के नेत्र रोग अभिष्यन्द के कारण उत्पन्न होते हैं, इसलिए बुद्धिमान् वैद्य हित के लिए, उत्पन्न होने वाले अभिष्यन्द की शीघ्र ही चिकित्सा करें।

Scanned with CamScanner

8.1.1 वातज अभिष्यन्द

निस्तोदन स्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति॥ (सु.उ.त. 6/6)

वातज अभिष्यन्द में नेत्र में सूचीविद्धवत् वेदना, जकड़ाहट, रोमहर्ष (Hypersensitivity), संघर्ष (Foreign body sensation), परूषता या काठिन्य, सिर में पीड़ा, नेत्र का सूखा होना (Ocular dryness) तथा आँख से शीतल आंसू निकलते हैं।

वातेन नेत्रेऽभिष्यन्दे नासानाहोऽल्पशोफता। शङ्खक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम्॥
शुष्काल्पा दुषिका शीतमच्छमश्रु चला रुजः। निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राज्जनूनामिव सर्पणम्॥
अक्ष्याध्यामामिवाभाति सूक्ष्मैः शल्यैरिवाचितम् स्निग्धोष्णैश्चोपशनम् सोऽभिष्यन्दः-

(अ.हृ.उ.त. 15/1-3)

वातज अभिष्यन्द में नासानाह (Nasal obstruction), शंख, आँख, भ्रू और ललाट में सूचीवेधवत् पीड़ा होती है, कम्पन, फटने की सी वेदना होती है, नेत्र का मल शुष्क व अल्प होता है, आँख से ठण्डा और साफ पानी निकलता है, अस्थिर पीड़ा अर्थात् एक स्थान पर नहीं होती, कष्ट से रोगी आँख खोलता और बन्द करता है। चींटी के रेंगने की प्रतीती, आँख भरी सी प्रतीत होना, सूक्ष्म शल्य से व्याप्त प्रतीत होना, स्नेह व गर्म द्रव्य से रोगी को आराम प्रतीत होता है।

यह वातिक साध्य व्याधि है।

8.1.2 पैत्तिक अभिष्यन्द

वाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं वाष्पसमुच्छ्रयश्च।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पिताभिपन्ने नयने भवन्ति॥ (सु.उ.त. 6/7)

पित्तज अभिष्यन्द में नेत्र में दाह और पाक होता है (Burning Sensation), शीतल द्रव्य अच्छे लगते हैं, आँख से धुआँ निकलने की प्रतीती, आँसू की बहुलता, नेत्र से गर्म पानी निकलता है तथा आँख पीली होती है। यह पित्तज साध्य रोग है।

वाहो धूमायनं शोफः श्यावता वर्त्मनो बहिः। अन्त क्लेदोऽश्रु पीतोष्णं रागः पीताभदर्शनम्॥
क्षारोक्षितक्षताक्षित्वं पित्ताभिष्यन्दलक्षणम्॥ (अ.हृ.उ.त. 15/8)

इसमें आँख में जलन, धुआँ निकलने की प्रतीती, आँख के बाहर शोथ और श्यामवर्णता, अन्दर मैल होती है। आँख से पीला, गरम पानी निकलता है। आँख में लालिमा (Congestion) व देखने में पीली दिखाई देती है, आँख में जैसे क्षत में क्षार लगाने की तरह जलन होती है।

8.1.3 कफज अभिष्यन्द

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोफः कण्डूपदेहौ सिततातिशैत्यम्।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपनने नयने भवन्ति॥ (सु.उ.त. 6/8)

कफज अभिष्यन्द में उष्ण द्रव्य अच्छे लगते हैं, नेत्र में भारीपन, सूजन, कण्डू, नेत्र मल से लिप्त रहता है, देखने में नेत्र श्वेत और स्पर्श में शीत प्रतीत होता है तथा नेत्र से बार-बार पिच्छिल स्राव होता रहता है।

स्यन्दे तु कफसम्भवे। जाडयं शोफो महान् कण्डूर्निद्रानभिनन्दम्।
सान्द्रस्निग्धबहुश्वेतपिच्छावद्षिकाश्रुता॥ (अ.हृ.उ.त. 15/10-11)

कफज अभिष्यन्द में नेत्र में जड़ता, अधिक शोथ, खुजली होती है। रोगी को नींद आती है तथा अन्न में अभिलाषा नहीं होती। आंख से गाढ़ा, स्निग्ध मात्रा में अधिक, पिच्छिल आंसू निकलते है।

यह कफज साध्य व्याधि है।

8.1.4 रक्तज अभिष्यन्द

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिन्ने नयने भवन्ति॥ (सु.उ.त. 6/9)

रक्तज अभिष्यन्द में नेत्र से ताम्र वर्ण के आँसू निकलते हैं, आँख लाल होती है, चारों ओर नेत्र में लाल रंग की सिरायें दिखाई देती हैं तथा पित्तज अभिष्यन्द के लक्षण होते हैं।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

रक्ताश्रुराजीदूषीकारक्तमण्डलदर्शनम्। रक्तस्यन्देन नयनं सपित्तस्यन्दलक्षणम्॥

(अ.हृ.उ.त. 15/12)

रक्तज अभिष्यन्द में लाल आँसू निकलते हैं, लाल रेखायें दिखाई देती हैं, आँख में कीचड़, रक्त गोलाकर वस्तुएँ दिखती है और पित्तज अभिष्यन्द के लक्षण मिलते हैं।

चिकित्सा

प्रागूप एव स्यन्देषु तीक्ष्ण गण्डूपनावनम्।
कारयेदुपवासं च कोपान्दन्यत्रं वातजात्॥ (अ. हृ. उ. 16/1)

अभिष्यन्द के पूर्वरुपों में तीक्ष्ण गण्डूष, तीक्ष्ण नस्य और उपवास कराये परन्तु वातज अभिष्यन्द में यह न करें।

दाहोपदेहरागाश्रुशोफशान्त्यै विडालकम्।
कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः॥
रसाञ्जनयष्टयाह्वनतचन्दनसैन्धवैः। (अ. हृ. उ. 16/2)

सभी प्रकार के अभिष्यन्द में दाह, कीचड़, लालिमा, आंसू आना तथा सूजन की शांति के लिए विडालक करना चाहिए। यह लेप तेजपत्र, इलायची, मरिच, स्वर्णगैरिक, रसौंत, मुलहठी, तगर, चन्दन और सैन्धव से करना चाहिए।

वातज अभिष्यन्द और अधिमंथ की चिकित्सा

पुराणसर्पिषा स्निग्धौ स्यन्दाधीमन्थपीडितौ। स्वेदयित्वा यथान्यायं सिरामोक्षेण योजयेत्॥३॥
सम्पादयेद्वस्तिभिश्च सम्यक् स्नेहविरेचितौ। तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्च्योतनैस्तथा।
नस्यस्नेहपरीषेकैः शिरोबस्तिभिरेव च ॥४॥ (सु.उ.त. 9/3-4)

अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ से पीड़ित रोगी में पुराण घृत से स्नेहन करें, स्वेदन करके बाद में सिरामोक्षण करें। स्नेहन के बाद विरेचन, तत्पश्चात् वस्ति दें। तर्पण, पुटपाक, धूम्रपान, आश्च्योतन, नस्य, स्नेह परिषेक तथा शिरोवस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

पित्तज अभिष्यन्द और अधिमंथ चिकित्सा

पित्तस्यन्दे पैत्तिके चाधिमन्थे रक्तास्रावः स्रंसनञ्चापि कार्यम्।
अक्ष्णोः सेकालेपननस्याञ्जनानि पैत्ते च स्याद्यद्विसर्पे विधानम्॥ (सु.उ.त. 10/3)

पैत्तिक अभिष्यन्द तथा पैत्तिक अधिमंथ में रक्तविस्रावण, विरेचन दें। सेक, आलेप, नस्य, अंजन और पैत्तिक विसर्प की भाँति चिकित्सा करें।

गुन्द्रा, शालि चावल, पाषणभेद, दारुहरिद्रा, इलायची, नीलकमल, लोध्र, शर्करा, मधु, चन्दन, स्त्री क्षीर, हल्दी इत्यादि औषधियों से प्रतिसंस्कृत घी का तर्पण, सेक तथा नस्य में प्रयोग लाभप्रद हैं।

वाग्भट मतानुसार जटामांसी, पद्माख, रक्तचन्दन, मुलहठी से लेप करें।

कफज अभिष्यन्द और अधिमंथ चिकित्सा

स्यन्दाधिमन्थौ कफजौ प्रवृद्धौ जयेत् सिराणामथ मोक्षणेन।
स्वेदावपीडाञ्जनधूमसेक प्रलेपयोगैः कवलग्रहेश्च॥3॥
रुक्षैस्तथाऽऽश्च्योतनसंविधानैस्तथैव रुक्षैः पुटपाकयोगैः।
त्र्यहात्त्र्यहाच्चाप्यतर्पणान्ते प्रातस्तयोस्तिक्तघृतं प्रशस्तम्॥4॥
तदन्नपानञ्च समाचरेद्धि यच्छ्लेष्मणो नैव करोति वृद्धिम्।
धत्तूरपीलुवर्ककपित्थभङ्गैः॥5॥
स्वेदं विदध्यादथवाऽनुलेपं बर्हिष्ठशुण्ठीसुरकाष्ठकुष्ठैः॥ (सु.उ.त. 11/3-6)

कफज अभिष्यन्द तथा अधिमंथ में सिरामोक्षण करें। स्वेदन, अवपीड़न नस्य, अंजन, धूम्रपान, सेक, प्रलेप, कवल, रुक्ष औषधियों से बने क्वाथ का आश्च्योतन, रुक्ष पुटपाक और अपतर्पण का प्रयोग करना चाहिए। इसके पश्चात् तीन-तीन दिन के अन्तर पर प्रातःकाल कुष्ठाधिकारोक्त तिक्तघृत का पान करना चाहिए। कफ नाशक अन्न व पान का सेवन करें। धतूरा, पीलु, अर्क, कैथ से स्वेदन करना चाहिए। नेत्रबाला, सोंठ, सुरकाष्ठ (देवदारु) और कूट इनका नेत्रों पर लेप करना चाहिए।

वाग्भट मतानुसार मैनसिल, प्रियुंग और मधु से लेप करें।

रक्तज अभिष्यन्द और अधिमंथ चिकित्सा

मन्थं स्यन्दं सिरोत्पातं सिराहर्षञ्च रक्तजम्। एकैकेन विधानेन चिकत्सेच्चतुरो गदान्॥3॥
व्याध्यात्तांश्चतुरोऽप्येतान् स्निग्धान् कौम्भेन सर्पिषा। रसैरुदारेथवा सिरामोक्षेण योजयेत्॥4॥
विरिक्तानां प्रकामञ्च शिरास्येषां विशोधयेत्। वैरेचनिकसिद्धेन सितायुक्तेन सर्पिषा ॥5॥

(सु.उ.त. 12/3-5)

रक्तज अधिमन्थ, रक्तज अभिष्यन्द, सिरोत्पात और सिराहर्ष इन चारों रोगों की चिकित्सा एक ही क्रम से करें। कौम्भ घृत से स्नेहन करके, मांसरस का सेवन करें। सिरामोक्षण करें। अनन्तर विरेचन दें, शिरोविरेचक नस्य का प्रयोग करें। इसके लिए शिरोविरेचक औषधि से सिद्ध घृत चीनी के साथ प्रयोग करें।

ततः प्रदेहाः परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव।
आश्च्योतनाभ्यञ्जनतर्पणानि स्निग्धाश्च कार्याः पुटपाकयोगाः॥ (सु.उ.त. 12/6)

प्रदेह, परिषेचन, नस्य, धूम्रपान, आश्च्योतन, अभ्यङ्ग, तर्पण तथा स्निग्ध पुटपाक का प्रयोग करना चाहिए। अभिष्यन्द का Conjunctivitis के साथ साम्य किया जा सकता है।

Conjunctiva is thin, translucent, vascular mucous membrane which covers the undersurface of the lids and anterior part of the eye-ball upto the limbus.

Parts. It consists of following parts:

1. **Palpebral:** It covers the under surface of both upper and lower lids.
2. **Bulbar:** It covers the anterior surface of the eye ball.
3. **Fornices:** These are folds of the conjunctiva formed by the reflection of the mucous membrane. from the lids to the eye ball. It is loose but thick membrane.

Conjunctivitis

Conjunctivitis is the inflammation of conjunctiva characterized by hyperaemia and discharge.

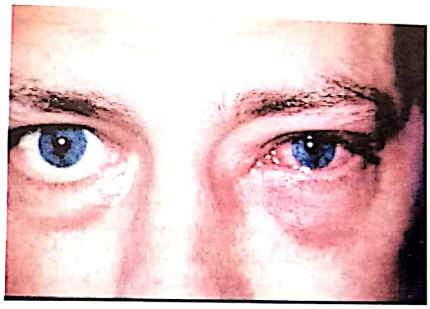

Fig. 5 - Conjunctivitis

Classification

Etiological classification

1. Infective: Bacterial, viral, fungal
2. Allergic Conjunctivitis
3. Traumatic Conjunctivitis
4. Irritative Conjunctivitis

Clinical Classification

1. Acute catarrhal or mucopurulent conjunctivitis
2. Acute purulent conjunctivitis
3. Chronic simple conjunctivitis
4. Angular conjunctivitis
5. Membranous conjunctivitis
6. Pseudo membranous conjunctivitis
7. Follicular conjunctivitis
8. Papillary conjunctivitis
9. Ophthalmia neonatorum

Some forms of conjunctivitis commonly seen are described below:

Scanned with CamScanner

Acute Mucopurulent Conjunctivitis:

It is the most common type of acute bacterial conjunctivitis characterized by marked conjunctival hyperaemia and mucopurulent discharge from the eye. It is contagious and often self limiting disease.

Causative Agents : Staphylococcus, Streptococcus and Pneumococcus.

Symptoms

- Feeling of foreign body sensation.
- Mild photophobia.
- Mucopurulent discharge from eyes.
- Coloured halos.
- Slight blurring of vision.
- Sticking of lids together particularly after the night sleep.

Signs

- Conjunctival congestion.
- Chemosis.

Treatment

- Frequent washing of eye with warm saline or clean water.
- Frequent instillation of antibiotic eye drops.

Purulent conjunctivitis (Acute blenorrhoea) - The condition is marked by profuse purulent discharge commonly caused by Gonococcus. It occurs in two forms. 1. Purulent conjunctivitis of new born (ophthalmia neonatorum) 2. Purulent conjunctivitis of adult.

Clinical picture: It can be divided into three stages:

1. **Stage of infiltration:** It lasts for 4 to 5 days and is characterized by :
   - Painful and tender eye-ball.
   - Chemosed conjunctiva
   - Lids are tense and swollen.
   - Discharge is watery or sanguinous.
   - Pre-auricular lymph nodes are enlarged.
2. **Stage of blenorrhoea:** It starts at fifth day and is characterized by purulent discharge. Other symptoms are increased but tension in the lids is decreased.
3. **Stage of slow healing:** During this stage, pain is decreased. Conjunctiva remains red and thickened and discharge diminishes slowly.

Treatment: Similar to acute mucopurulent conjunctivitis.

Acute membranous Conjunctivitis

It is an acute inflammation of conjunctiva characterized by the formation of true membrane the conjunctiva. It is caused by Corynebacterium diphtheriae.

Clinical features

The disease usually affects children between age of 2-8 who are not immunized against diphtheria.

Three stages are:

1. Stage of infiltration

- Severe ocular pain
- Scanty discharge
- Lids are swollen and hard
- Conjunctiva is red, swollen and covered by thick greyish-yellow membrane.
- Pre-auricular lymph nodes are enlarged.

2. Stage of suppuration

- Pain decreases
- Lids become soft
- Profuse discharge
- Sloughing off the membrane.

3. Stage of cicatrisation: The cicatrisation of conjunctiva may lead to xerosis and entropion.

Treatment

- Antidiphtheritic serum (ADS) and pencillin drops 5000 unit per ml are frequently instilled.
- Intramuscular injections of antidiphtheritic serum 10,000 units and crystalline pencillin 5 lacs unit are given 12 hourly.
- To prevent adhesions (symblepharon); contact shell should be used.

Acute pseudomembranous Conjunctivitis: It is characterized by formation of pseudomembrane which can be easily peeled off leaving behind intact conjunctival epithelium.

Treatment: Similar to mucopurulent conjunctivitis.

Simple chronic conjunctivitis: The condition is characterised by mild catarrhal inflammation of the conjunctiva. It often occurs as a continuation of an acute conjunctivitis in absence of adequate treatment.

Causes

- Chronic exposure to smoke, dust etc.
- Concretions, misplaced eye-lashes.
- Nasal infections.
- Metabolic disorders.
- Errors of refraction.

Scanned with CamScanner

Symptoms

- Burning sensation.
- Heaviness of the eyes.
- Difficulty in keeping the eyes open.
- Scanty mucoid discharge on the canthi.

Signs

- Congestion of posterior conjunctival vessels.
- Mild papillary hypertrophy of palpebral conjunctiva.
- The surface of conjunctiva looks sticky.

Treatment

- Elimination of the causative factor.
- Frequent application of antibiotic drops.

Angular conjunctivitis (Diplobacillary conjunctivitis)

It is type of chronic conjunctivitis characterized by excoriation of the skin of the lid margins at angle. The disease is caused by Morax - Axenfeld Gram -ve diplobacilli, arranged end to end in pairs. The organism liberates a proteolytic enzyme which macerates the epithelium of the lid margins.

Clinical features

- Itching.
- Burning sensation.
- Discomfort.
- Redness in the angles of eyes.
- Slight mucopurulent discharge at the angles.

Treatment

- Oxytetracycline eye ointment 1% 2-3 times a day.
- Zinc lotions 0.125-0.25% or zinc oxide ointment are also effective as they inhibit proteolytic ferment.

Simple Allergic Conjunctivitis

It is the inflammation of the conjunctiva due to allergic reaction. The conjunctiva is ten times more sensitive than the skin to allergens.

Etiology

- Exogenous allergens like pollens, vegetable and animal dust.
- Endogenous allergens - Bacterial protein from a septic focus particularly due to staphylococcus.

Symptoms

- Itching is the most prominent feature of allergic conjunctivitis.
- Irritation
- Lacrimation.
- Photophobia.

Signs

- Marked hyperaemia of conjunctiva
- Chemosis of conjunctiva
- Watery mucoid discharge
- Oedema of lids
- Eosinophils in conjunctival smear.

Treatment

- Elimination of allergens
- Vasoconstrictor e.g. adrenaline solution reduces the congestion.
- Antihistamine drugs (Antitistine privine 1%) instilled 5 to 6 times a day
- Disodium cromoglycate 2% is a mast cell stabilizer, thus preventing the release of histamine.
- Steroid eye drops should be avoided. However these may be used for short duration in severe cases.

Vernal Keratoconjunctivitis (VKC) or spring catarrh

It is recurrent, bilateral allergic inflammation of the conjunctiva having periodic seasonal incidence.

Etiology

It is a hypersensitive reaction of the conjunctiva to exogenous allergens and is mediated by IgE.

Age and Sex: 6-20 years, usually boys.

Season: Usually prevalent during summer and subsides in winter.

Symptoms

- Itching is the most common complaint.
- Thick, white mucous discharge
- Burning sensation
- Foreign body sensation
- Lacrimation

Types

- Palpebral form
- Bulbar form
- Mixed form.

Palpebral form

It is relatively more common form. It is characterized by the presence of hard, flat topped papillae separated by furrows, giving a cobble stone appearance.

- The colour of papillae is bluish white.
- Eosinophils are present in conjunctival smear
- White ropy discharge.

Scanned with CamScanner

Fig. 6 - Vernal Keratoconjunctivitis Cob

Bulbar form

- Dusky red triangular congestion of bulbar conjunctiva in palpebral area.
- Gelatinous thickened accumulation of tissue around the limbus.
- Discrete, chalky white, superficial raised spots along the limbus (Tranta's spots).

Mixed form: It shows combined feature of the both types.

Treatment

- Frequent instillation of steroid drops e.g. 0.1% dexamethasone.
- Disodium cromoglycate 2% drops 4-5 times a day.
- Non-steroidal antiinflammatory drugs [NSAIDs]. e.g. indomethacin, diclofenac can be used for long time.
- Recently topical cyclosporine 1% has been found to be useful in steroid resistant cases.

अधिमन्थ

वृद्धैरेतैरभिष्यवैर्नराणामक्रियावताम्। तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्र वेदनाः॥ (सु. उ. त. 6/10)

मिथ्या आहार-विहार का सेवन करने वाले मनुष्यों में अभिष्यन्द रोग के बढ़ने पर अधिमन्थ रोग होता है तथा इसमें नेत्र में तीव्र पीड़ा होती है।

अधिमन्थ का सामान्य लक्षण

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा। शिरसोऽर्द्धं य तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः॥

(सु. उ. त. 6/11)

अधिमंथ में ऐसा प्रतीत होता है कि मानों आंख निकाली जा रही हो। नेत्र में मथनी से मंथन सदृश पीड़ा होती है तथा सिर के आधे भाग में तीव्र वेदना होती है।

8.1.5 वातज अधिमन्थ

नेत्रमुत्पाट्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत्। संघर्षतोदनिर्भेद मांस संरब्धमाविलम्॥12॥
कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम्। शिरसोऽर्धञ्च येन स्यादधिमन्थः स मारुतात्॥13॥

(सु. उ. त. 6/12-13)

वातज अधिमंथ में नेत्र को निकाले जाने के समान तीव्र पीड़ा होती है। अरणी वा मथनी से नेत्र को जैसे मथा जा रहा हो ऐसा प्रतीत होता हैं। किरकिरापन, सूचीविद्धवत् वेदना, शस्त्र से काटने के समान वेदना, नेत्र के मांस का उपचित होना (Chemosis), नेत्र का आविल (कीचड़युक्त) होना, फटने के समान वेदना होती है, आध्मान (Tension), वेपथु (कम्पन) आदि व्यथाओं से युक्त होना तथा सिर के आधे भाग में तीव्र वेदना होती है।

अधिमन्थो भवेत्तत्र कर्णयोर्नवनं भ्रमः। अरण्येव च मथ्यन्ते ललाटक्षिभ्रुवावयः॥4॥

(अ.हृ.उ. 15/3-4)

वातज अभिष्यन्द की उपेक्षा करने से वातज अधिमंथ होता है। इसमें कर्णनाद, चक्कर आना, अरणी मन्थन के समान ललाट, आंख और भ्रू में वेदना होती है।

8.1.6 पित्तज अधिमन्थ

रक्तराजिचितं स्रावि वह्निनेवावदह्यते यकृतपिण्डोपमं दाहि क्षारेणाक्तमिव क्षतम्॥14॥
प्रपक्वोच्छूनवर्त्मान्तं सस्वेदं पीतदर्शनम्। मूर्च्छाशिरोदाहयुतं पित्तेनाक्ष्यधिमन्थितम्॥15॥

(सु.उ.त. 6/14-15)

पित्तज अधिमंथ में नेत्र लाल वर्ण की रेखाओं से व्याप्त हो जाता है, स्राव होता है, अग्नि से जलने के समान दाह होता है। नेत्र देखने में यकृत पिण्ड के सदृश ताम्र वर्ण हो जाता है, घाव में क्षार लगाने की तरह जलन की अनुभूति, वर्त्म का प्रान्त भाग पका हुआ तथा शोथ युक्त हो जाता है, पसीना आता है तथा रोगी को सभी वस्तुएँ पीली दिखाई देती हैं। मूर्च्छा तथा सिर में जलन होती है।

ज्वलदङ्गाराकीर्णाभं यकृत्पिण्डसमप्रभम्॥ अधिमन्थे भवेन्नेत्रम्- (अ.हृ.उ.त. 15/9)

आंख जलते हुए अंगारों से भरी तथा यकृत पिण्ड के समान नेत्र की कान्ति होती है।

8.1.7 कफज अधिमन्थ

शोफवन्नतिसंरब्धं स्रावकण्डूसमन्वितम्। शैत्यगौरवपैच्छिल्यदूषिकाहर्षणान्वितम्॥16॥
रुपं पश्यति दुःखने पांशुपूर्णमिवाविलम्। नासाध्मानशिरोदुःखयुत श्लेष्माधिमन्थितम्॥17॥

(सु.उ.त. 6/16-17)

कफज अधिमंथ में शोफ होता है व लालिमा कम होती है। स्राव, कण्डू, नेत्र स्पर्श में शीतल, भारी, पिच्छिल तथा मलयुक्त होता है। रोमांच युक्त (Hypersensitivity) एवं रोगी को धूलि से व्याप्त प्रत्येक पदार्थ कष्ट से दिखाई देता है। नेत्र मलपूर्ण, नासिका रूकी हुई तथा सिर में वेदना होती है।

अधिमन्थे नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमण्डलम्। प्रसेको नासिकाध्मानं पांसुपूर्णमिवेक्षणम्।

(अ.हृ.उ.त. 15/11)

वाग्भट के मत से कफज अधिमंथ में कृष्ण भाग दबा हुआ और शुक्ल भाग ऊपर को उठा हुआ होता है। नेत्र से निरंतर स्राव, नासिका रूकी हुई सी तथा आंख धूलिपूर्ण प्रतीत होती है।

8.1.8 रक्तज अधिमंथ

बन्धुजीवप्रतीकाशं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम्। रक्तास्रावं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः॥18॥
रक्तमग्नारिष्टवच्च कृष्णभागश्च लक्ष्यते॥ यद्दीप्तं रक्तपर्यन्तं तद्रक्तेनाधिमन्थितम्॥19॥

(सु.उ.त. 6/18-19)

Scanned with CamScanner

रक्तज अधिमंथ में नेत्र जपापुष्प के समान लाल वर्ण का हो जाता है, आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। नेत्र स्पर्श सहन नहीं कर सकता, रक्त वर्ण का स्राव होता है, सूचीविद्धवत् वेदना तथा रोगी सब दिशाएं अग्नि के समान लाल वर्ण की देखता है। नेत्र का कृष्ण भाग रक्त में डूबे हुए रीठे फल के समान दिखाई देता है। आंख जलती हुई तथा उसे सब वस्तुएं लाल दिखाई देती है।

मन्थेऽक्षि ताम्रपर्यन्तमुत्पाटनसमानरुक्॥13॥ रागेण बन्धूकनिभं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम्।
असृङ्निमग्नारिष्टाभं कृष्णमग्न्याभवर्शनम्॥14॥ अधिमन्था यथास्वं च सर्वे स्यंवाधिकव्यथाः।
शङ्खवर्त्मकपोलेषु कपाले चातिरूक्करा:॥15॥ (अ.हृ.उ. 15/13-15)

रक्तज अधिमंथ में नेत्र के किनारे लालवर्ण, उखाड़ने के समान वेदना होती है। नेत्र दोपहरिया फूल की तरह लाल वर्ण का, आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। नेत्र स्पर्श सहन नहीं कर सकता। कृष्ण भाग रक्त में भिगोये रीठे के फल सदृश होता है और सभी वस्तुएं अग्नि वर्ण के सदृश दिखाई देती हैं।

जिस जिस अभिष्यन्द से जो-जो अधिमंथ पैदा होता है, उस अभिष्यंद में जो-जो वेदनाएं होती है, अधिमंथ में उनकी तीव्रता हो जाती है। शंख, दांत, कपोल और कपाल में अत्यधिक पीड़ा होती है।

अधिमंथ साध्य रोग है।

अधिमंथ की चिकित्सा

अधिमंथ की उत्पत्ति का कारण सुश्रुत ने अभिष्यंद को माना है तथापि इसकी चिकित्सा अभिष्यंद के समान की जाती है। वातज अधिमंथ की चिकित्सा वातज अभिष्यंद के समान की जाती है। इसी प्रकार पित्तज अभिमंथ की चिकित्सा पित्तज अभिष्यंद के समान, कफज अधिमंथ की कफज अभिष्यंद तथा रक्तज अधिमंथ की रक्तज अभिष्यंद के समान चिकित्सा की जाती है।

अशान्तौ सर्वथा मन्थे ध्रुवोपरि वाहयेत्॥21॥ रुप्यं रुक्षेण गोवघ्न लिम्पेन्नीलत्वमागते।
शुष्के तु मस्तुना वर्तिर्वाताक्ष्यामयनाशिनी॥22॥ सुमनः कोरकाः शङ्खस्त्रिफला मधुकं बला।
पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा विव्येन वारिणा॥23॥ सैन्धवं त्रिफला व्योषं शङ्ख नाभिः समुद्रजः।
फेन ऐलेयंक सर्जो वर्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत्॥24॥ (अ.हृ.उ. 16/21-24)

चिकित्सा से अधिमंथ की शान्ति न हो तो भ्रुवों के ऊपर दाह करें।

सार रहित गाय की दही से चाँदी के ऊपर लेप करें। नील वर्ण का लेप हो जाए तथा सूख जाएँ तो मस्तु के साथ वर्ति बनावे। यह वर्ति वातज अधिमंथ नाशक है।

चमेली की कलियाँ, शंखनाभि, त्रिफला, मुलहठी, बला इन सभी को वर्षा के जल के साथ पीसकर वर्ति बनाएं। यह वर्ति पित्तज रक्तज अधिमंथ में प्रयोग करें। सैंधव, त्रिफला, त्रिकटु, शंखनाभि, समुद्रफेन, एलबालुक (मुसब्बर) राल इनकी वर्ति कफज अधिमंथ में प्रयुक्त करें।

अधिमंथ की साध्यासाध्यता

हन्याद् वृष्टिं सप्तरात्रात् कफोत्थोऽधीमन्थोऽसृक्सम्भवः पञ्चरात्रात्।
षड्रात्राद्वै मारुतोत्थो निहन्यान्मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव॥ (सु.उ.त. 6/20)

चिकित्सा न करने से कफज अधिमन्थ 7 दिन में, रक्तज अधिमन्थ 5 दिन में, वातज अधिमन्थ 6 दिन में तथा पित्तज तत्काल ही दृष्टि को नष्ट कर देता है।

अधिमन्थ की तुलना Glaucoma से की जा सकती है।

Glaucoma is a group of conditions that have a characteristic optic neuropathy associated with visual field defects and elevated intraocular pressure.

Pathophysiology of glaucoma revolves around the aqueous humour circulation.

Aqueous humour - It is derived from the plasma with-in the capillary network of the ciliary process. The rate of aqueous formation and its drainage are in a state of dynamic equilibrium and thus maintains normal intra ocular pressure (IOP) which ranges between 12 and 20 mm Hg. The normal outflow is by two routes:

1. **Conventional route (Trabecular outflow):** About 80% of the outflow is through this route. The aqueous humour flows to the posterior chamber. It then flows into anterior chamber via pupil and through the canal of schlemm drains to the episcleral veins.
2. **Unconventional route (Uveoscleral outflow):** About 20% of outflow is by this route. This is the second accessory exit through the ciliary body into the suprachoroidal space and is drained by venous circulation of the ciliary body, choroid and sclera.

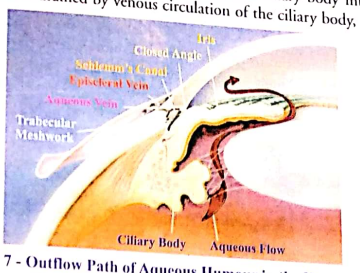

Fig. 7 - Outflow Path of Aqueous Humour in the Human Eye

Angle of Anterior Chamber

It plays an important role in the process of aqueous drainage, from anterior to posterior, it is formed of the following structures:

1. Schwalbe's line (Prominent end of Descemet's membrane of cornea)
2. Trabecular meshwork.
3. Scleral spur
4. Anterior most part of the ciliary body
5. Root of iris.

Clinically the various angle structures can be visualised by gonioscopic examination.

Classification

1. Developmental glaucoma
   (a) Congenital glaucoma (Buphthalmos) (b) Infantile glaucoma
2. Juvenile glaucoma

Scanned with CamScanner

3. Primary open-angle glaucoma (POAG)
4. Primary angle-closure glaucoma (PACG)
5. Secondary glaucoma

Congenital glaucoma manifests at birth or during the first year of life.

Infantile glaucoma occurs within first few years of life.

Juvenile glaucoma occurs between 3 and 16 years of age.

Primary open angle glaucoma: It is a chronic, slowly progressive optic neuropathy associated with elevated I.O.P. and visual field defects. It is more common than primary angle closure glaucoma and affects during 5-6th decade mainly.

Etiology-The etiology of POAG is not clear. The intraocular pressure increases due to decrease in the aqueous outflow across the trabecular meshwork due to trabecular sclerosis and loss of cells.

Risk factors of POAG include IOP, age, race, family history of glaucoma, myopia, diabetes and hypertension.

Clinical features-

The disease is insidious and usually asymptomatic and patients have non specific complaints such as headache, eyeache of mild intensity and frequent changes in presbyopic correction. Initially, the pupil is briskly reacting to light but later becomes sluggish.

The diagnosis depends on

Raised IOP

- Cupping of optic disk
- Visual field defects

An intraocular pressure of more than 21 mm of Hg on more than one occasion and there could also be an asymmetry of an intraocular pressure of more than 5mm Hg in the two eyes.

The optic disc changes include :

1. Vertically oval cup due to selective loss of neural rim tissue in the inferior and superior poles.

The tissue between the cup and disk margin is known as neuroretinal rim. Normally it has orange color. The rim is widest in the inferior disk regions followed by the superior, the nasal and the temporal disk region (ISNT rule)

2. Splinter haemorrhage may be seen on or near the disk in approximately one third of the glaucomatous patients.

3. Asymmetry of the cups.

Asymmetry of cup/disk ratio greater than 0.2 between the two eyes is generally seen in nearly 70% of patients with POAG.

4. Large cup i.e. 0.6 or more.The normal cup size is 0.3 to 0.4

5. Pallor areas on the disc.

6. Pulsation of the retinal arterioles may be seen at the disc margin.

7. Nasal shifting of retinal vessels which have the appearance of being broken off at the margin (Bayonetting sign)

Provocative tests

- **Dark room test :** The patient is placed in completely dark room for half an hour. If there is rise in I.O.P. more than 8 mm of Hg test is positive.
- **Mydriatic Test :** The patients eye is dilated with weak mydriatic. If the tension rises more than 8 mm of Hg, the test is positive.

Primary closed Angle Glaucoma (PACG)

This is a condition in which the intra ocular pressure is raised as a result of obstruction to the outflow of the aqueous humour by closure of a narrower angle of the anterior chamber.

Predisposing Factors

- It is common in 5th-6th decade.
- Women are more prone than males
- Usually bilateral.
- Usually the hypermetropic eye with shallow anterior chamber
- More common in anxious persons with unstable vasomotor system.

Clinical features

The clinical course is divided into following stages:

1. Prodromal stage
2. Stage of constant instability
3. Acute congestive stage
4. Chronic closed angle glaucoma
5. Absolute glaucoma

Prodromal Stage

- There are occasional attacks of raised intraocular pressure with blurring of vision.
- Coloured haloes due to corneal oedema
- Mild headache
- The eye remains white i.e. without congestion even though there may be transient sudden rise in I.O.P. upto 40-50 mm Hg.

Stage of constant instability

- The attacks of raised I.O.P. are more frequent and occur with regularity.
- Exaggeration of normal diurnal variation of intra ocular tension so that the intraocular pressure is raised in the late afternoon.

Acute congestive stage

- Profound diminution of vision
- Intense ciliary congestion
- Intense pain which radiates along the branches of the 5th nerve.
- Rainbow colored haloes around the light.
- Lacrimation, photophobia
- Pupil is semidilated.
- Optic disc is oedematous and hyperaemic.

Scanned with CamScanner

Chronic closed angle glaucoma

This stage can develop either after acute angle closure or when the angle closes gradually and IOP rises slowly. A gradual asymptomatic angle closure is known as creeping angle closure.

Clinical picture of chronic angle closure glaucoma resembles that of POAG. It presents a few symptoms : moderate rise of IOP, opticneuropathy and characteristic visual field defects.

Stage of absolute glaucoma

- The eye becomes painful and blind.
- The anterior ciliary veins are dilated.
- The anterior chamber is very shallow.
- The cornea is oedematous and may develop epithelial bullae (bullous keratopathy)
- The iris may show atrophic patches.
- The pupil is dilated and does not react to light and accommodation.
- The optic nerve head is deeply cupped.
- IOP is very high and eyeball is stony hard.

Treatment-

The treatment of glaucoma depends on the nrture and severity of each case. In general it cannot be cured but it can be controlled. Eye drops, pills, laser procedures and surgical operations are used to prevent furrther damage.

Types of eye drops-

1. Prostaglandin analogue-These increase the flow of aqueous humour out of the eye which reduces the pressure within the eye. These eye drops are usually used once a day. Side effects include

- Eye pain and irritation
- Dry eyes
- Sensitivity to light
- Conjunctival hyperaemia
- Blepharits
- Headrehes
- Iris pigmentation

Some types of prostaglandin analogues include :

Latanoprost Travaprost Bimatoprost

Beta-Blockers-They reduce intra ocular pressure by slowing down the production of aqueous humour in the eye. They are used once or twice a day and can cause side effects such as:

- Burning sensation
- It chy eyes.
- Dry eyes

However, they should no be used in patients with bronchial asthma and cardiovascular problems.

Some type of betablockers includes.

Timolol maleate-is a non selective beta-blocker used in 0.25 or 0.5% cencentration and administered twice daily.

Levobunolol-is a nonselective beta-blocker available in 0.25-0.5% concentration.

Betaxolol-is a selective beta blocker which blocks mainly the b_1-receptor.

Carbonic anhydrase inhibitors-They reducc the amount of aqueous humour produced in eye which reduces intraocular pressure. These drops are used two of three times a day and may cause :

- A bitter taste in mouth
- Dry mouth
- Nausea
- Eye irritation

Carbonic anhydrase inhibitor may be administered systemically or topically. Systemic Carbonic anhydrase inhibitors include :

Acetazolamide-It is generally administered orally in doses of 250 mg four times a day in the management of acute congestive glaucoma. Sustained action capsules of 500 mg have a prolonged effect. Parenteral acetazolomide can be administered in the dose of 5-10 mg per kg body weight.

Dichlorphenamide-(Daranide)

It has longer duration of time and is given 50mg twelve hourly.

Topical CAIs

Dorzolamide hydrochloride (2%)

It is administered 3 times daily.

Brinzolamide (1%) is used 2-3 times daily.

Hyperosmotic agents-They are of great use to treat acute forms of glaucoma.They act by drawing the water out of the eye and reduce the IOP. These medications must be used cautiously as they have significant side effects such as nausea, fluid accumulation in the heart or lungs (Congestive heart failure and pulmonary edema). Their use is prohibited in patients with uncontrolled diabetes, heart, kidney or liver problems. The commonly used hyperosmotic agents are glycerol, mannitol and isosorbide.

8.1.9. सशोफ अक्षिपाक

कण्डूपवेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः। दाह संघर्ष ताम्रत्वशोफनिस्तोदगौरवैः।
जुष्टो मुहुः स्रवेदच्चासमुष्णशीताम्बु पिच्छिलम्। संरम्भी पच्यते यश्च नेत्रपाकः त्व शोफजः॥

(सु. उ. त. 6/21)

सशोफ अक्षिपाक में नेत्र में कण्डू, नेत्र का मल युक्त होना, नेत्र का वर्ण पके हुए गूलर फल के समान दिखाई देना, दाह, संघर्ष, ताम्रवर्णता, शोफ, सुई चुभने के समान वेदना, नेत्र में भारीपन तथा नेत्र से बार-बार पिच्छिल, कभी गर्म, कभी ठण्डा स्राव बहता है।

यह साध्य त्रिदोषज रोग है।

–सशोफः स्यात्त्रिभिर्मलैः॥17॥ सरक्तैस्तत्र शोफोऽतिरुग्दाहष्ठीवनादिमान्।
पक्वोदुम्बरसङ्काशं जायते शुकलमण्डलम्॥18॥ अश्रुष्णशीतविशदपिच्छिलाच्छघनं मुहुः।

(अ. ह. उ. त. 15/17-19)

यह त्रिदोषज व्याधि है तथा इसमें शोफ, तीव्र पीड़ा, दाह, अत्याधिक स्राव होता है, आंख का श्वेत भाग पके हुए गूलर फल के समान हो जाता हैं नेत्र से बार-बार कभी उष्ण, कभी शीतल, कभी पिच्छिल, कभी निर्मल, कभी गाढ़ा स्राव निकलता है।

सशोफ और अशोफ अक्षिपाक की चिकित्सा

सशोफ श्चाप्यशोफश्च द्वौ पाकौ यौ प्रकीर्तितौ। स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तत्र विद्ध्वा सिरां भिषक्॥
सेकाश्चयोतननस्यानि पुटकांश्च कारयेत्॥ (सु. उ. त. 12/38)

सशोफ और अशोफ अक्षिपाक में रोगी का स्नेहन तथा स्वेदन कराके सिरावेध करने के पश्चात् सेक, आश्च्योतन, नस्य, पुटपाक का प्रयोग करें।

सर्वतश्चापि शुद्धस्य कर्त्तव्यमिदञ्जनम्॥ ताम्रपात्रस्थितं मासं सर्पिः सैन्धवसंयुतम्।
मैरेयं वाऽपि दध्येवं दध्युत्तरकमेव वा॥ (सु. उ. त. 12/39-40)

Scanned with CamScanner

शरीर का शोधन करके अंजन का प्रयोग करें। ताम्र के पात्र में एक मास रखा हुआ घी सैंधव लवण मिलाकर अंजन के रूप में प्रयोग करें। मैरेय (सुरा व आसव का एकत्रित भाग) को दही के ऊपर की मलाई में मिलाकर अंजन के रूप में प्रयोग करें।

मासं सैन्धवसंयुक्तं स्थितं सर्पिषि नागरम्। आश्च्योतनाञ्जन योज्यमबलाक्षीरसंयुतम्॥

(सु.उ.त. 12/43)

सैंधव लवण और सोंठ के चूर्ण को घृत में मिलाकर एक मास तक रख दे फिर उसे स्त्री दुग्ध के साथ मिलाकर आश्च्योतन और अंजन के रूप में प्रयोग करें।

सशोफे वाऽल्पशोफे च स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम्॥ रेकः स्निग्धे पुनर्व्राक्षापथ्याक्वाथत्रिवृद्घृतैः।
श्वेतरोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं तान्तवस्थितम्॥ उष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परम्।
वार्वीप्रपौण्डरीकस्य क्वाथो वाऽऽश्च्योतने हितः॥ (अ.हृ.उ. 16/32)

सशोफ व अशोफ नेत्रपाक में स्नेहन करके सिराव्यध करें। बाद में द्राक्षा तथा हरड़ के क्वाथ में निशोथ और घी मिलाकर विरेचन दें।

श्वेत लोध्र को घी में भूनकर चूर्ण करके पोटली में बांधकर गर्म पानी में मर्दन करें, यह शूल में परम लाभदायक है अथवा दारूहल्दी और प्रपौण्डरीक का क्वाथ आश्च्योतन में लाभप्रद है।

सन्धावांश्च प्रयुञ्जीत घर्षरागाश्रुरूग्हरान्॥ (अ.हृ.उ. 16/33)

आंख में करकरिमा, लालिमा, स्राव, वेदना को मिटाने वाले संधाव नामक योगों को प्रयुक्त करें।

ताम्रं लोहे – **मूत्रघृष्टं प्रयुक्तं नेत्रे सर्पिर्धूपितं वेदनाघ्नम्।**
ताम्रे घृष्टो गव्यदध्नः सरो वा युक्तः कृष्णासैन्धवाभ्यां वरिष्ठः॥
शंङ्ख ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः शम्याः पत्रैर्धूपितं तद्यवैश्च।
नेत्रे युक्तं हन्ति संधावसंज्ञं क्षिप्रं घर्षं वेदनां चातितीव्राम्॥

(अ.हृ.उ. 16/34-35)

लोहे के पात्र में ताम्र को गोमूत्र से घिसकर घी से धूपित करके प्रयोग करने से पीड़ा शांत होती है।

गाय के दही की मलाई को ताम्र पात्र में घिसकर पिप्पली और सैंधव से युक्तकर आंखों पर लगाना श्रेष्ठ लेप है। शंख को ताम्रपात्र में, माता के दूध से घिसकर, घी से स्निग्ध कर, शमी के पत्तों से तथा जौ से धूपित करें। यह संधाव संज्ञक लेप नेत्र की रगड़ और तीव्र वेदना को शान्त करता है।

8.1.10 अशोफ अक्षिपाक

शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोफजे॥ (सु.उ.त. 6/22)

अशोफ अक्षिपाक के लक्षण सशोफ अक्षिपाक के समान ही होते हैं किन्तु शोथ नहीं होता।

अल्पशोफेऽल्पशोफस्तु पाकोऽन्यैर्लक्षणैस्तथा॥ (अ.हृ.उ. 15/19)

वाग्भट ने 'अल्पशोफ' के नाम से वर्णित किया है तथा इसे शोफ रहित कहा है। बाकी सब लक्षण सशोफ अक्षिपाक के समान होते हैं।

यह साध्य त्रिदोषज रोग है।

अशोफ अक्षिपाक की चिकित्सा

इसकी चिकित्सा सशोफ अक्षिपाक के समान की जाती है।

आधुनिक मतानुसार सशोफ व अशोफ अक्षिपाक को Uveitis कह सकते हैं।

Uveitis is the inflammation of the Uveal tract. The Uveal tract is divided into 3 regions- iris, ciliary body and choroid. For clinical use, the terms anterior uvea (i.e, iris and ciliary body) and posterior uvea (i.e. choroid) are commonly used. Anterior uveitis is an inflammation of front part of the uveal tract; it includes inflammation of the iris (iritis) or inflammation of the iris and ciliary body (iridocyclitis). Posterior uveitis is an inflammation of the posterior part of uveal tract, behind the lens of the eye. It includes inflammation of the choroid (choroiditis) or the inflammation of the choroid and retina (chorioretinitis).

Uveitis

Uveitis may either persist for a short duration (acute) or for a long duration (chronic).

Anterior uveitis is classified as either granulomatous or non granulomatous. Uveitis is serious disease and may cause vision loss.

Causes

- Trauma
- Allergy
- Impaired immune mechanism.
- Corneal ulcer
- Herpetic infection
- Intraocular malignant tumour

Symptoms

- Severe pain
- Redness
- Photophobia
- Lacrimation
- Defective vision

Granulomatous Uveitis: It is characterized by the formation of nodules at the back of cornea and iris. The eye is mildly inflammed.

Non-granulomatous Uveitis: The cells on the cornea are smaller and there are no masses on the iris. This is a painful condition.

Signs

- Ciliary congestion
- Corneal oedema
- Keratic precipitates (KPs) are proteinaceous cellular deposits occuring at the back of cornea.
- Aqueous flare: These are dust like particles in anterior chamber. They are seen with beam of slit lamp.
- Hypopyon: In severe cases of iridocyclitis, hypopyon is present i.e. pus in the anterior chamber.
- Loss of normal pattern of iris
- Iris appears muddy.
- Synechiae: Adhesion of iris to the adjacent structures.
- Pupillary reactions become sluggish.

Scanned with CamScanner

Treatment

1. Treat the underlying cause.
2. Mydriatic drug e.g. 1% atropine drops 2-3 times a day.
3. Corticosteroids:
   a. Topical 0.1% betamethasone eye drops 4-6 times a day.
   b. Systemic e.g. Dexamethasone orally four times daily for 1-2 weeks.
4. Analgesics: They are useful in relieving pain.
5. Heat application reduces pain and increases blood circulation.

Posterior Uveitis

There is inflammation of the posterior uveal tract.

Etiology

- Same as anterior uveitis

Symptoms

- Defective vision • Photopsia • Metamorphosia (Distorted images)
- Black spots floating in the front of the eyes.
- Micropsia (Small image than actual size)
- Macropsia (Larger image than actual size)
- Positive scotoma i.e. perception of a fixed large spot in the field of vision.

Signs

- Vitreous opacity
- Yellowish areas with ill defined edges are seen deep to retinal vessels.

Treatment

Same as anterior uveitis.

8.1.11 हताधिमन्थ

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः शोषयति प्रसह्य।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः॥23॥
अन्तः सिराणां श्वसनः स्थितो वृष्टि प्रतिक्षिपन्।
हताधिमन्थं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः॥24॥ (सु.उ.त. 6/23-24)

अधिमन्थ की उपेक्षा करने से वात कुपित होकर नेत्र को शोषित कर देता है तथा नेत्र में तीव्र पीड़ा होती है। यह असाध्य रोग है।

सिराओं में स्थित प्रकुपित वात नेत्र को बाहर निकाल देता है तथा यह असाध्य रोग है।

हताधिमन्थः सोऽपि स्यात् प्रमादात्तेन वेदनाः। अनेकरूपा जायन्ते व्रणो वृष्टौ च वृष्टिहा॥

(अ.हृ.उ. 15/5)

अधिमन्थ की उपेक्षा करने से हो जाता है इसमें अनेक प्रकार की वेदनाएं होती है और आँख में दृष्टि नष्ट करने वाला व्रण हो जाता है।

सुश्रुत ने हताधिमंथ की दो अवस्थाएं प्रदर्शित की हैं–

प्रथम भेद में नेत्रगोलक सूख जाता है। दूसरे भेद में नेत्रगोलक बाहर उभरा सा दीखता है।

इस सूत्र के अनुसार हताधिमन्थ की तुलना Phthisis bulbi and proptosis के साथ की जा सकती है। श्लोक संख्या 23 Phthisis bulbi को तथा श्लोक संख्या 24 Proptosis के समान लक्षणों की वर्णन करती है।

भावप्रकाश मतानुसार यह वातोल्वण अधिमंथ की उपेक्षा से होता है और अत्यन्त उग्र पीड़ा के साथ नेत्र सूखकर नष्ट हो जाता है।

चिकित्सा

यह वातज असाध्य व्याधि है। हताधिमंथ असाध्य रोग होने से सुश्रुतादि आचार्यों ने इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया है परन्तु इसका चिकित्सा सूत्र वातज रोग होने के हेतु वातज अभिष्यन्द की तरह ही होता है।

प्रवनप्रभवा रोगा ये केचिद् दृष्टिनाशनाः। बीजेनानेन मेधावी तेषु कर्म प्रयोजयेत्॥ (सु.उ.त. 9/25)

Phthisis bulb

It is shrinkage of eye-ball due to marked hypotony (low tension).

Etiology

1. Perforated corneal ulcer.
2. Penetrating corneal injury.
3. Destruction of ciliary body as in chronic iridocyclitis.

Clinical features

1. No perception of light. 2. Eye-ball is shrunken 3. Cornea, iris are visible clearly.

Treatment

Enucleation and application of the artificial eye.

Proptosis

It is defined as an abnormal forward displacement of the eye ball beyond the orbital margins with the patient looking straight ahead. The term proptosis is synonymous with exophthalmos.

Classification

Unilateral, Bilateral, Acute, Intermittent, Pulsating.

Causes of unilateral Proptosis

- Congenital
- Traumatic
- Tumour of the orbit
- Paralysis of the extraocular muscles
- Varicosity of orbital veins.
- Endocrinal disturbance e.g. Grave's disease.

Scanned with CamScanner

Causes of Bilateral proptosis

- Developmental anomalies of the skull e.g. Oxycephaly.
- Cavernous sinus thrombosis
- Endocrinal exophthalmos
- Malignant tumours.

Causes of Acute proptosis

- Orbital haemorrhages.
- Fracture of medial wall of the orbit.

Causes of Intermittent proptosis

- Recurrent orbital haemorrhages.
- Vascular tumours.

Causes of pulsating proptosis

- Cartico-cavernous aneurysm i.e. communication between internal carotid artery and cavernous sinus.
- Saccular aneurysm of ophthalmic artery.

Clinical Examination

The patient is made to sit in front of the surgeon with head slightly tilted backwards and the position of apex of each cornea is compared on both sides.

Hertel's exophthalmometer can be used for this; a hand held instrument that records the position of the anterior corneal surface relative to the lateral orbital rim.

Clinical features

- Corneal exposure.
- Lid retraction
- Restriction of gaze.
- Diplopia.
- Conjunctival congestion.
- Visual loss [in case of optic nerve compression].

Treatment

- Optic nerve compression should be relieved promptly with the radiational therapy.

8.1.12 वातपर्याय

पक्ष्मद्वयाक्षिध्रुवमाश्रितस्तु यत्रानिलः संचरति प्रदुष्टः।
पर्यायशश्चापि रुजः करोति तं वातपर्यायमुदाहरन्ति॥ (सु.उ.त. 6/25)

जिस रोग में वायु दूषित होकर पर्याय (क्रम) से कभी पक्ष्मों में, कभी भ्रू में, कभी अक्षिगोलक में अवस्थित होकर संचरण करता हुआ पीड़ा उत्पन्न करता है, उसको वातपर्याय कहते हैं।

तद्वज्जिह्मं भवेन्नेत्रमूनं वा वातपर्यये॥ (अ.हृ.उ. 15/7)

वातपर्यय के लक्षण अन्यतोवात के समान होते हैं तथा इसमें नेत्र कुटिल तथा स्वाभाविक आकार से छोटी हो जाती है।

यह वातज साध्य व्याधि है।

वातपर्याय की चिकित्सा

रोगों यश्चान्यतोवातो यश्च मारुतपर्य्ययः। अनेनैव विधानेन भिषक्तावपि साधयेत्॥

अन्यतोवात तथा वातपर्याय में वातज अभिष्यंद के समान चिकित्सा करें। (सु.उ.त. 9/17)

पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजने। वृक्षादन्यां कपित्थे च पंचमूले महत्यपि॥
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चात्र घृतं पिबेत्। सिद्धं वा हितमत्राहुः पत्तूरार्त्तगलाग्निकैः।
सक्षीरं मेषशृङ्ग्या वा सर्पिर्वीरतरेण वा॥ (सु.उ.त. 9/18-19)

भोजन के पूर्व में घृत का पान करें। भोजन के साथ दुग्ध का सेवन करें। आकाशबेल, कपित्थ, वृहतपंचमूल (बिल्व, सोना पाठा, गम्भारी, पाढल, अरणी) इनको दुग्ध तथा कर्कट के मांसरस में मिलाकर, इनसे घृत सिद्ध कर पान करना चाहिए। पत्तूर, काली कटसरैया, अजमोदा, दुग्ध लेकर घृत सिद्ध करें।

मेढासीङ्गी, वीरतर्वादिगण की औषधियों से घृत सिद्ध कर प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक मत से वातपर्याय को Ocular pain कह सकते हैं।

8.1.13 शुष्काक्षिपाक

यत् कूणितं वारुणरुक्षवर्त्म विलोकने चाविलदर्शनं यत्।
सुवारुणं यत् प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि॥ (सु.उ.त. 6/26)

जिसमें नेत्र संकुचित, वर्त्म कठोर व रुक्ष हो, देखने में धुंधला दिखाई दे तथा नेत्र खोलने में भयंकर कष्ट हो, उस रोग को शुष्काक्षिपाक कहते हैं।

यह वातिक साध्य व्याधि है।

वातपित्तातुरं घर्षतोदभेदोपदेहवत्। रुक्षवारुणवर्त्माक्षि कृच्छ्रोन्मीलननिमीलनम्॥
विकूणनविशुष्कत्वशीतच्छशूलपाकवत्। उक्तः शुष्काक्षिपाकोऽयम्॥ (अ.हृ.उ. 15/16)

वात-पित्त के कारण यह रोग होता है। इसमें घर्षण, तोद, भेद, तथा आंख मैल से युक्त होती है, पलकें रुक्ष व दारुण (कठोर) होती हैं तथा कठिनाई से खुलती और बंद होती हैं। आँख संकुचित, शुष्क रहती है, रोगी को शीतल वस्तुओं की इच्छा होती है तथा आंख में शूल व पाक होता है।

शुष्काक्षिपाक की चिकित्सा

सैन्धवं वारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम्॥ स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम्।
पूजितं सर्पिषश्चात्र पानमक्ष्णोश्च तर्पणम्॥ घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना।
परिषेके हितश्चात्र पयः शीतं ससैन्धवम्। रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समायुतम्॥
सर्पिर्युतं स्तन्यघृष्टमञ्जनं वा महौषधम्॥ (सु.उ.त. 9/20-23)

सैंधव लवण, दारुहरिद्रा, सोंठ के चूर्ण को बिजौरे नीबू के रस से पीसकर, घृत मिलाकर फिर दुग्ध और जल मिलाकर अंजन के रूप में प्रयोग करें। जीवनीय घृत अथवा अणु तैल से नस्यकर्म करना चाहिए। परिषेक के लिए सैंधवलवणयुक्त शीतल जल हितकर है। हरिद्रा, दारुहरिद्रा से घृत सिद्ध कर सैंधव लवण से युक्तकर इसका सेवन करें और अंजन के रूप में प्रयोग करें। शुण्ठी को दुग्ध में घिसकर अंजन लगाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

वसा वाऽऽनूपजलजा सैन्धवेन समायुता॥ नागरोन्मिश्रिता किञ्चिच्छुष्कपाके तवञ्जनम्॥

(सु.उ.त. 9/24)

आनूप और जल में होने वाले प्राणियों की वसा में सैंधव लवण तथा शूण्ठी का चूर्ण मिलाकर अंजन करें।

शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम्। घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन वाऽणुना॥
परिषेको हितश्चात्र पयः कोष्णं ससैन्धवम्। सर्पियुक्तं स्तन्यपिष्टमञ्जनं च महौषधम्॥
वसा वाऽऽनुपसत्त्वोत्था किञ्चित्सैंधवनागरा। घृताक्तान् वर्पणे घृष्टान् केशान् मल्लकसम्पुटे।
दग्धवाऽऽज्योपिष्टा लोहस्था सा मषी श्रेष्ठमञ्जनम्। (अ.हृ.उ. 16/28-30)

शुष्काक्षिपाक में पुराण घृत का पान, जीवनीय घृत से तर्पण करें, अणु तैल का नस्य तथा सैंधव लवण मिश्रित कोष्ण दूध से परिषेक करें। सोंठ को माता के दूध में पीसकर घी मिलाकर अंजन करना हितकर है। वसा को सैंधव व सोंठ से युक्तकर अंजन करें।

मनुष्य के बालों को घिसें, चिकना करके फिर इस राख को दर्पण में घिसकर शरावों में रखकर जलावे। फिर इस राख में घी मिलाकर लोहपात्र में रखें। इस अंजन का प्रयोग करें।

आधुनिक मत से शुष्काक्षिपाक को Xerosis of eye कह सकते हैं।

XEROSIS OF EYE

It is dry, lustreless condition of the conjunctiva.

Etiology

1. Deficiency of tears (Commonest reason of the dry eye) e.g. Sjogren's syndrome.
2. Deficiency of conjunctival mucous which can be due to deficiency of Vit A.
3. Insufficient resurfacing of the cornea such as in paralysis of lids.
4. Irritating corneal surface e.g. as in healed corneal ulcer.
5. Abnormality of lipid layer.
6. Visual display terminal syndrome (VDTS): It is usually seen in persons wearing the contact lens and users of computer.

Symptoms

1. Irritation in eye 2. Burning sensation 3. Discomfort
4. Impaired vision in case of involvement of cornea

Types

It can be divided into two groups:

1. Parenchymatous Xerosis: In this type, there is cicatrical disorganization of the conjunctiva due to undue exposure to air as present in facial palsy or it is seen in cases of burns or membranous conjunctivitis.
2. Epithelial Xerosis: It occurs due to hypovitaminosis A. It is usually a part of xerophthalmia. There is presence of wrinkling, pigmentation and thickening of the conjunctiva.

Complications

- Corneal ulcers • Conjunctivitis • Blepharitis

Investigations

- Fluorescein staining: abraded areas are marked green.
- Schirmer test I: It measures the rate of tear formation.

The value less than 6 mm after 5 minutes is diagnostic of dry eye, normal value is 10-25 mm.

Treatment

1. Treatment of the cause
2. Use of artificial tear preparations (0.7% methyl cellulose or 0.3% hyperomellose) to be instilled at frequent intervals.

9.1.14 अन्यतोवात

यस्यावदूकर्ण शिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतोवा
कुर्याद्रजोऽति भ्रुवि लोचने वा तमन्यतोवातमुदाहरन्ति॥ (सु.उ.त. 6/27)

कुपित वात अवदू (कण्ठ), कर्ण, शिर, हनु अथवा मन्या में स्थित होकर वा अन्य स्थान में रहकर कभी भ्रू में, कभी नेत्रगोलक में तीव्र वेदना करती है, उस रोग को अन्यतोवात कहते हैं।

यह वातज साध्य व्याधि है।

मन्याऽक्षिशंखतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयन्। रुजं तीव्रामपैच्छिल्यरागशोफं विलोचनम्॥
सङ्कोचयति पर्यश्रु सोऽन्यतोवातसंज्ञितः। (अ.हृ.उ. 15/6)

वायु मन्या, आंख, शंख या अन्यत्र (शिर, कण्ठादि स्थान) पर रहकर तीव्र पीड़ा पैदा करती है। इसमें पिच्छिलता, लालीपन और शोफ नहीं होता तथा आंख में से आंसू निकलते हैं। इसकी संज्ञा अन्यतोवात दी गई है।

चिकित्सा

अन्यतोवात की चिकित्सा वातपर्याय के समान की जाती है।

आधुनिक मत से इसको Ocular pain कह सकते हैं।

9.1.15 अम्लाध्युषित

अम्लेन भुक्तेन विदाहिना वा संछाद्यते सर्वत एव नेत्रम्।
शोफान्वितं लोहितकं: सनीलैरेतादृगम्लाध्युषितं वदन्ति॥ (सु.उ.त. 6/28)

अम्ल पदार्थों के तथा विदाही पदार्थों के सेवन से नेत्र शोथयुक्त हो जाता है तथा देखने में लाल व नील वर्ण का होता है।

यह पैत्तिक साध्य व्याधि है।

अष्टांगहृदयकार ने इसको अम्लोषित कहा है।

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोल्बणैर्मलैः॥ शिराभिर्नेत्रमारुढः करोति श्यावलोहितम्।
सशोफदाहपाकाश्रु भृशं चाविलदर्शनम्॥ अम्लोषितोऽयम्- (अ.हृ.उ. 15/21-22)

Scanned with CamScanner

पित्त व रक्तप्रधान दोषों से अन्न का सार भाग अम्लीभूत होकर सिराओं से नेत्र में पहुँचकर उसे श्याव व रक्त वर्ण का कर देता है तथा आंख में शोफ, जलन, पाक, अश्रुस्राव होता हैं तथा नेत्र गन्दला होता है उसको अम्लोषित कहते हैं।

अम्लाध्युषित की चिकित्सा

एषोऽम्लाख्येऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ कार्यः सर्वः स्यात्सिरामोक्षवर्ज्यः।। (सु.उ.त. 10/13)

अम्लाध्युषित तथा शुक्तिका में सिरामोक्ष नहीं करना चाहिए तथा अन्य सब कर्म यथा नस्य, लेप, सेक इत्यादि करें।

सर्पिः पेयं त्रैफलं तैल्वकं वा पेयं वा स्यात् केवलं यत् पुराणम्। (सु.उ.त. 10/14)

अम्लाध्युषित में त्रिफला व तिल्वक घृत का पान अथवा पुराण घृत का पान करें।

अम्लोषिते प्रयुञ्जीत पित्ताभिष्यन्दसाधनम् । (अ.हृ.उ. 16/44)

अम्लोषित में पित्ताभिष्यन्द के समान चिकित्सा करें।

This can be correlated with allergic conditions of the eye.

9.1.16 सिरोत्पात

अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।
मुहुर्विरज्यन्ति च ताः समन्ताद् व्याधिः सिरोत्पात इति प्रदिष्टः।। (सु.उ.त. 6/29)

जिसमें नेत्र में वेदना रहित या वेदनायुक्त ताम्र वर्ण की रेखाएं हो जाती है तथा कुछ काल में वे रेखाएं लाल वर्ण की हो जाएं, उस व्याधि को सिरोत्पात कहते हैं।

यह रक्तज साध्य व्याधि है।

आचार्य वाग्भट ने सिरोत्पात और सिराहर्ष का वर्णन शुक्लगत रोगों में किया है।

सिरोत्पात की चिकित्सा

स्यादञ्जनं घृतं क्षौद्रं सिरोत्पातस्य भेषजम्। तद्वत्सैन्धवकासीसस्तन्याघृष्टं च पूजितम्।। (सु.उ.त. 12/15)

रसांजन, घृत और मधु खरल करके अंजन करना चाहिए। सैंधव लवण व कासीस को गौदुग्ध के साथ पीसकर अंजन करना चाहिए।

मधुना शङ्खनैपालीतुत्थदार्व्यः ससैन्धवाः।
रसः शिरीषपुष्पाच्च सुरामरिचमाक्षिकैः।
युक्तं तु मधुना वाऽपि गैरिकं हितमञ्जनम्।। (सु. उ. त. 12/16)

शङ्ख, मैनसिल, नीलतुत्थ, दारुहरिद्रा और सैंधव लवण इन्हें समान प्रमाण में लेकर मधु के साथ महीन पीसकर अंजन करें। सुरा, श्वेतमरिच, माक्षिक को शिरीष पुष्प के स्वरस के साथ घोट कर अञ्जन करें। स्वर्णगैरिक को मधु के साथ पीसकर अञ्जन करने से सिरोत्पात में लाभ मिलता है।

9.1.17 सिराहर्ष

मोहात् सिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु सिराप्रहर्षः।
ताम्राच्छमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च।। (सु.उ.त. 6/30)

अज्ञान से सिरोत्पात की उपेक्षा की जाए तो सिराप्रहर्ष रोग होता है। इसमें नेत्र से ताम्र वर्ण का गाढ़ा और स्वच्छ रक्त स्राव होता है तथा रोगी किसी भी पदार्थ को देखने में समर्थ नहीं होता है।

यह रक्तज साध्य रोग है।

सिराप्रहर्ष की चिकित्सा

सिराप्रहर्ष में सुश्रुत ने सिरोत्पात की तरह विभिन्न प्रकार के अंजनों का उल्लेख किया है।

सिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम्। मधुना ताक्ष्यर्जं वाऽपि कासीसं वा ससैन्धवम्।।
वेत्राम्लस्तन्यसंयुक्तं फाणितन्तु ससैन्धवम्।। (सु.उ.त. 12/17-19)

फाणित को मधु में मिलाकर अंजन करें। ताक्ष्यर्ज (रसांजन) को मधु से युक्त कर अंजन का प्रयोग करें। कासीस और सैंधव को मधु के साथ मिलाकर अंजन करें।

वेत्राम्ल (अम्लवेत), स्त्रीदुग्ध, राब, सैंधव लवण को मिलाकर अंजन करें।

आधुनिक मतानुसार सिराहर्ष का सामन्जस्य scleritis के साथ किया जाता है।

क्र. सं.	व्याधि	दोष प्राधान्य	चिकित्सा
1.	वातज अभिष्यन्द	वात	स्नेहन, स्वेदन, स्नेह विरेचन, वस्ति, स्निग्ध नस्य, तर्पण, शिरोवस्ति, धूमपान
2.	वातज अधिमंथ	वात	पूर्ववत
3.	पित्तज अभिष्यन्द	पित्त	स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण, अंजन, नस्य
4.	पित्तज अधिमंथ	पित्त	पूर्ववत्
5.	कफज अभिष्यन्द	कफ	तिक्त घृत, अवपीडन नस्य, सिरामोक्ष, रुक्ष आश्च्योतन, धूमपान, अंजन
6.	कफज अधिमन्थ	कफ	पूर्ववत्
7.	रक्तज अभिष्यन्द	रक्त	तिक्त घृत, विरेचन, प्रदेह, जलौकावचरण, स्निग्ध पुटपाक, तर्पण
8.	रक्तज अधिमंथ	रक्त	पूर्ववत्
9.	हताधिमन्थ	वात	असाध्य
10.	अन्यतोवात	वात	स्नेहन, स्वेदन, स्नेह विरेचन, पुटपाक, घृतपान, वस्ति, तर्पण
11.	वातपर्यय	वात	पूर्वदत
12.	अम्लाध्युषित	पित्त	त्रिफला, तिल्वक व पुराण घृतपान
13.	सशोफ अक्षिपाक	त्रिदोष	सिराव्यध, स्नेहन, स्वेदन, आश्च्योतन, नस्य, पुटपाक
14.	अशोफ अक्षिपाक	त्रिदोष	पूर्ववत
15.	शुष्काक्षिपाक	त्रिदोष	आश्च्योतन, नस्य, घृतपान, अंजन
16.	सिरोत्पात	रक्त	अंजन
17.	सिराहर्ष	रक्त	अंजन

Scanned with CamScanner

अध्याय-9

दृष्टिगत रोग

9.1 दृष्टिगत रोग संख्या

सुश्रुत ने दृष्टिगत रोग 12 माने हैं-

1. वातज तिमिर
2. पित्तज तिमिर
3. श्लैष्मिक तिमिर
4. रक्तज तिमिर
5. सन्निपातज तिमिर
6. संसर्गज तिमिर
7. पित्तविदग्ध दृष्टि
8. कफविदग्ध दृष्टि
9. धूमदर्शी
10. ह्रस्वजाड्य
11. नकुलान्ध्य
12. गम्भीरिका

वाग्भटमतानुसार दृष्टिगतम रोग सत्ताईस है।

1. वातज तिमिर
2. पित्तज तिमिर
3. कफज तिमिर
4. रक्तज तिमिर
5. संसर्गज तिमिर
6. सन्निपातज तिमिर
7. वातज काच
8. पित्तज काच
9. कफज काच
10. रक्तज काच
11. संसर्गज काच
12. सन्निपातज काच
13. वातज लिङ्गनाश
14. पित्तज लिङ्गनाश
15. कफज लिङ्गनाश
16. रक्तज लिङ्गनाश
17. संसर्गज लिङ्गनाश
18. सन्निपातज लिङ्गनाश
19. उष्णविदग्ध दृष्टि
20. पित्तविदग्ध दृष्टि
21. अम्लविदग्ध दृष्टि
22. धूमर
23. ह्रस्वजा
24. गम्भीरा
25. राज्यान्ध्य
26. औपसर्गिक लिङ्गनाश
27. नकुलान्ध्य

	व्याधि	दोष	चिकित्सा
1.	वातज तिमिर	वात	स्नेहपान, विरेचन, नस्य, तर्पण, पुटपाक, निरुह वस्ति, अनुवासन बस्ति
2.	पित्तज तिमिर	पित्त	स्नेहपान, विरेचन, सेक, लेप अंजन, नस्य, तर्पण
3.	कफज तिमिर	कफ	स्नेहपान, सिराव्यध, विरेचन, नस्य, अंजन, पुटपाक
4.	रक्तज तिमिर	रक्त	पित्तज तिमिर के समान
5.	सन्निपातज तिमिर	त्रिदोष	स्नेहपान, नस्य, अंजन, सिरोवस्ति
6.	परिम्लायि	पित्त, रक्त	तिमिर के समान चिकित्सा
7.	पित्त विदग्धदृष्टि	पित्त	पित्तज अभिष्यन्द के समान
8.	कफ विदग्धदृष्टि	कफ	कफज अभिष्यन्द के समान
9.	धूमदर्शी	पित्त	घृतपान, अंजन, नस्य, तर्पण
10.	ह्रस्वजाड्य	पित्त	असाध्य
11.	नकुलान्ध्य	त्रिदोष	असाध्य
12.	गम्भीरका	वात	असाध्य

मसूरदलमात्रांतु पञ्चभूतप्रसादजाम्।
खद्योतविस्फुलिङ्गाभांसिद्धां तेजोभिव्यैः॥3॥
आवृतां पटेलनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम्।
शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः॥4॥

(सु.उ.त. 7/3-4)

मसूरदल के समान आकृति अर्थात् द्विदल आकृति (Biconvex), पंचमहाभूतों के प्रसाद भाग से बनी हुई, खद्योत (जुगनू) तथा अग्निकण के समान आभा वाली, नाश रहित, तेज से युक्त, बाहर से कई पटलों से आवृत किन्तु विवर (छिद्र) के स्वरुप की तथा शीत आहार विहार जिसको हितकर हो उसे नेत्र चिकित्सक दृष्टि कहते हैं।

रोगांस्तदाश्रयान् घोरान् षट् च षट् च प्रचक्ष्महे।
पटलानुप्रविष्टस्य तिमिरस्य च लक्षणम्॥

(सु.उ.त. 7/5)

दृष्टिगत रोग बारह माने गये हैं तथा चारों पटलों में होने वाले तिमिर रोग का लक्षण वर्णित है।

सिराभिरभिसम्प्राप्य विगुणोऽभ्यन्तरे भृशम्।
प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्टौ व्यवस्थितः॥ अव्यक्तानि स रूपाणि सर्वाण्येव प्रपश्यति॥

(सु.उ.त. 7/6-7)

प्रकुपित दोष सिराओं से जाकर प्रथम पटल में अवस्थित होते हैं तब रोगी सभी वस्तुओं को अस्पष्ट देखता है।

उक्त लक्षण Refractive errors में मिल सकते हैं।

सिरानुसारिणि मले प्रथमं पटलं श्रिते। अव्यक्तमीक्षते रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः॥

(अ.हृ.उ. 12/1)

दोषो सिराओं से प्रथम पटल में आश्रित होने पर रोगी वस्तुओं को अस्पष्ट देखता है और कभी बिना कारण के स्पष्ट भी देखता है।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते। मक्षिका मशकान केशाञ्जालकानि च पश्यति।
मण्डलानि पताकाश्च मरीचिः कुण्डलानि च॥8॥ परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च।
दूरस्थान्यपि रुपाणि मन्यते च समीपतः॥9॥ समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात्।
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति॥10॥

(सु.उ.त. 7/9-10)

दोष द्वितीय पटल में आश्रित होने पर दृष्टि भ्रमित हो जाती है। रोगी को मक्खी, मच्छर, बाल और मकड़ी के जाले जैसा दिखाई देता है। मण्डल, ध्वजा, मृगतृष्णा, कुण्डलाकृति रचना, वर्षा, बादल और अंधकार दिखाई देता है। दूर की वस्तु समीप तथा पास की वस्तु दूर दिखाई पड़ती है। प्रयत्न करने पर भी रोगी सुई का छिद्र नहीं देख सकता।

इस प्रकार के लक्षण Progressive Cataract में मिल सकते है।

Scanned with CamScanner

प्राप्ते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति। भूतं तु यत्नादासन्नं दूरे सूक्ष्मं न नेक्षते॥
दूरान्तिकस्थं रूपं च विपर्यासेन मन्यते। दोषे मण्डलसंस्थाने मण्डलानीव पश्यति।
द्विधैकं दृष्टिमध्यस्थे बहुधा बहुधास्थिते। दृष्टेरभ्यन्तरगते ह्रस्ववृद्धविपर्ययम्।
नान्तिकस्थमधः संस्थे दूरगं नोपरि स्थिते। पार्श्वे पश्येन्न पार्श्वस्थे तिमिराख्योऽयमामयः॥

(अ.हृ.उ. 12/2-5)

दोष के दूसरे पटल में आश्रित होने पर न स्थित वस्तु को भी देखता है। नज़दीक की वस्तु को भी प्रयत्न से देखता है, दूर और सूक्ष्म वस्तु को नहीं देख सकता। दूर की वस्तु समीप तथा समीप की वस्तु दूर दिखती है। दोषों के मण्डल रूप में स्थित होने पर वस्तुओं को मण्डल के जैसे गोल देखता है। दोष की दृष्टि के मध्य में स्थिति होने पर एक वस्तु के दो रूप देखता है। दोषों के बहुत स्थानों पर स्थित होने पर एक वस्तु के अनेक रूप देखता है, दोष के दृष्टि के अन्दर आश्रित होने पर छोटे को बड़ा और बड़े को छोटा देखता है। दोषों के नीचे स्थित होने पर समीप की वस्तु को नहीं देखता तथा दोष के ऊपर स्थित होने पर दूर की वस्तु नहीं देख सकता। दोष के पार्श्व में स्थित होने पर पार्श्व की वस्तु नहीं देख सकता। इसको 'तिमिर' संज्ञा दी है।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते। महान्त्यापि च रूपाणिच्छादितानीव वाससा॥
कर्णनासाऽक्षियुक्तानि विपरीतानि वीक्षते। यथादोषञ्च रज्यते दृष्टिर्दोषे बलीयसि॥
अधः स्थिते समीपस्थं दूरस्थञ्चोपरिस्थिते। पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति॥
समन्ततः स्थिते दोषे सङ्कुलानीव पश्यति। दृष्टिमध्यगते दोषे स एक मन्यते द्विधा॥
द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद बहुधा चानवस्थिते। तिमिराख्यः- (सु.उ.त. 7/12-15)

दोष तृतीय पटल पर स्थित होने से रोगी ऊपर की वस्तुओं को देख सकता हैं लेकिन नीचे की वस्तुओं को नहीं देख सकता। बड़ी वस्तुओं को कपड़े से आच्छादित देखता है। कर्ण, नासिका और अक्षि से युक्त व्यक्ति को उनके विपरीत अर्थात् उनसे रहित या विकल स्वरूप में देखता है। दोषों के बलवान होने से दृष्टि का रंजन हो जाता है (altered transparency of lens)। दोषों की स्थिति नीचे के हिस्से में हो तो समीप की वस्तुओं को नहीं देख सकता एवं दोष की स्थिति ऊपर हो तो दूर की वस्तुओं को नहीं देख सकता और पार्श्व में दोष स्थित होने पर पार्श्व की वस्तुओं को नहीं देख सकता। दोषों की चारों तरफ स्थिति होने पर सङ्कुल (परस्पर मिश्रित) वस्तु देखता है। दृष्टि के मध्य में दोषों की स्थिति होने पर एक वस्तु के दो रूप तथा दोष की स्थिति दृष्टि के दो स्थानों पर होने से एक वस्तु के तीन रूप देखता है, यदि दोष की स्थिति ठीक रूप से न हो, तो एक वस्तु के अनेक रूप देखता है। इस अवस्था को सुश्रुत ने तिमिर के नाम से कहा है।

उपरोक्त लक्षण Cataract की immature stage में मिल सकते हैं।

प्राप्नोति काचतां दोषे तृतीयपटलाश्रिते। तेनोर्ध्वमीक्षते नाधस्तनुचैलावृतोपम्॥
यथा वर्णं च रज्यते दृष्टिर्हीयेत च क्रमात्। (अ.हृ.उ.त. 12/6)

दोषों के तृतीय पटल में स्थित होने पर काच संज्ञा हो जाती है। रोगी ऊपर को देखता है, नीचे को नहीं देखता। वस्तु को पतले कपड़े से आच्छादित देखता है। दृष्टि के वर्ण का परिवर्तन होने पर दृष्टि शक्ति कम होती जाती है।

तृतीय पटल में दोष होने पर सुश्रुत ने 'तिमिर' संज्ञा दी है जबकि वाग्भट ने उसकी काच संज्ञा की है।

स वै दोषश्चतुर्थंपटलं गतः॥ रूणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः स उच्यते।
तस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरीक्षे च विद्युतः॥
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति। स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काच संज्ञितः॥

(सु.उ.त. 7/16-18)

दोष चतुर्थ पटल में स्थित होने पर उसकी संज्ञा 'लिङ्गनाश' होती है तथा दृष्टि पूर्णतः अवरुद्ध हो जाती है। रोग यदि पक्व नहीं है तो रोगी अन्धकार सा अनुभव करता है। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, बिजली को आकाश में देखता है तथा प्रकाशमान वस्तु को स्पष्ट रूप से देखता है।

इस रोग को लिङ्गनाश, नीलिका या काच कहते हैं।

तथाऽप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थं पटलं गतः॥ लिङ्गनाशं मलः कुर्वंत्र् छादयेद् दृष्टिमण्डलम्।

(अ.हृ.उ.त. 12/7)

उपेक्षा करने पर दोष चतुर्थ पटल में स्थित होकर दृष्टिमण्डल को ढककर लिङ्गनाश उत्पन्न कर देते हैं। आधुनिक विज्ञान से इसे Mature Cataract कह सकते हैं।

9.1.1 वातज तिमिर

तत्र वातेन रुपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति। आविलान्यरूणाभानि व्याविद्धानि च मानवः॥

(सु.उ.त. 6/19)

वातज तिमिर में रोगी प्रत्येक वस्तु को घूमती हुई सी, मलिन, ईषत् रक्तवर्ण और वक्र देखता है।

तत्र वातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति॥ चलाविलारूणाभासं प्रसन्न चेक्षते मुहुः।
जालानि केशन् मशकान् रश्मींश्चोपेक्षितेऽत्र च॥ काचीभूते दृगरूणा पश्यत्यास्यमनासिकम्।
चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं वक्रमृज्वपि मन्यते॥ वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रजोधूमावृतामिव।
स्पष्टारूणाभां विस्तीर्णां सूक्ष्मां वा हतदर्शनाम्। स लिङ्गनाशः- (अ.हृ.उ. 12/8-12)

वातज तिमिर में रोगी वस्तुएं को टेढ़ी-मेढ़ी देखता है। वस्तु को घूमती हुई, मलिन, अरुणवर्ण तथा स्पष्ट देखता है। जाला, बाल, मच्छर, किरणें देखता है। इस अवस्था की उपेक्षा करने पर वातज काच में परिवर्तित हो जाता है तथा दृष्टि का वर्ण अरुण भासता है और मुख को नासिका से रहित देखता है। चाँद, दीपक को बहुत रूप में देखता है। टेढे को सीधा तथा सीधे को टेढा देखता है। काच बढ़कर दृष्टि को धूल तथा धूम से आवृत कर देता है, दृष्टि स्पष्ट, अरुण वर्ण की, विस्तीर्ण या सूक्ष्म अथवा देखने में असमर्थ होती है। इस अवस्था को वातज लिङ्गनाश कहते हैं।

9.1.2 पित्तज तिमिर

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान। शिखिबर्हविचित्राणि नीलकृष्णानि पश्यति॥

(सु.उ.त. 7/20)

Scanned with CamScanner

पित्तज तिमिर में रोगी सूर्य, जुगनू, शक्रचाप (इन्द्रधनुष), विद्युत, मयूर के पङ्ख के समान विचित्र रूपों को तथा नील और कृष्ण वर्ण की वस्तुएँ देखता है।

पित्तजे तिमिरे विद्युत्खद्योतद्योतदीपितम्। शिखितित्तिरपिच्छभं प्रायो नीलं च पश्यति॥
काचे दृक् काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति। अर्केन्दुपरिवेषाग्निमरीचीन्द्रधनूंषि च॥

(अ.हृ.उ.त. 12/13-14)

पित्तज तिमिर में रोगी बिजली, जुगनू के सदृश आभा, मोर वा तीत्तर की पिच्छा के समान तथा प्रायः नीलवर्ण के द्रव्य देखता है। काच रुप में परिणत होने पर दृष्टि काच, नील वर्ण का हो जाता है, तथा वस्तुएं भी नीलवर्ण की देखता है तथा सूर्य, चन्द्रमण्डल, अग्नि की किरणें और इन्द्रधनुष देखता है। पैत्तिक लिङ्गनाश में दृष्टि भ्रमर के समान नील वर्ण की, तेजरहित और स्निग्ध होती है।

9.1.3 कफज तिमिर

कफेन पश्यदूषाणि स्निग्धानि च सितानि च। गौरचामरगौराणि श्वेताभ्रप्रतिमानि च॥
पश्चेवसूक्ष्माणयत्यर्थं व्यभ्रे चैवाभ्रसम्प्लवम्। सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः॥

(सु.उ.त. 7/21-22)

कफज तिमिर में रोगी द्रव्यों को स्निग्ध, श्वेतवर्ण, श्वेत चँवर के समान श्वेत और सफेद बादल सदृश श्वेत देखता है, आकाश में मेघ न होने पर भी मेघ चलते देखता है। छोटे पदार्थों को मोटे रूप में देखता है। संपूर्ण पदार्थों को जल में डूबा हुआ देखता है। पदार्थों को स्तम्भित (जकड़े हुए) सा देखता है।

कफेन तिमिरे प्रायः स्निग्धं श्वेतं च पश्यति। शङ्खेन्दुकुन्दकुसुमैः कुमुदैरिव चाचितम्।
काचे तु निष्प्रभेन्द्वर्कप्रदीपाद्यैरिवाचितम्॥ सिताभा सा च दृष्टिः स्याल्लिङ्गनाशे तु लक्ष्यते।
मूर्तः कफो दृष्टिगतः स्निग्धो दर्शननाशनः॥ बिन्दुर्जलस्येव चलः पद्मनीपुटसंस्थितः।
उष्णे सङ्कोचमायाति छायायां परिसर्पति॥ शङ्खकुन्देन्दुकुमुदस्फीटकोपमशुक्लिमा।

(अ.हृ. 12/16-19)

कफज तिमिर में रोगी प्रायः वस्तुओं को स्निग्ध और श्वेत देखता है। शंङ्ख, चन्द्रमा, कुन्द के फूल और कुमुद से व्याप्त सभी वस्तुओं को देखता है। काच में परिणित होने पर निस्तेज चन्द्रमा, सूर्य, दीपक आदि की भाँति देखता है। दृष्टि श्वेत वर्ण की दिखाई देती है। लिङ्गनाश में दृष्टिगत कफ कठिन एवं स्निग्ध हो जाता है तथा दिखाई देना बन्द हो जाता है। कमल के पत्र में स्थित जल बिन्दु के समान दृष्टि अस्थिर होती है। यह रोशनी में सिकुड़ता तथा छाया में विस्तृत होता है। शंङ्ख, कुन्द, इन्दु, कुमुद और स्फटिक की आभा के समान दृष्टि का वर्ण भासता है।

9.1.4 रक्तज तिमिर

तथा रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च। हरितश्यावकृष्णानि धूमधूम्राणि चेक्षते॥

(सु.उ.त. 7/23)

रक्तज तिमिर में रोगी वस्तुओं को रक्त वर्ण, अंधकार युक्त देखता है। हरित, श्याव, कृष्ण वर्ण तथा धूएँ से आच्छादित वस्तुओं को देखता है।

रक्तेन तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति। काचेन रक्ता कृष्णा वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति।
लिङ्गनाशेऽपि तादृग् दृङ् निष्प्रभा हतदर्शना॥ (अ.हृ.उ. 12/20-21)

रक्तज तिमिर में रोगी वस्तुओं को लाल वर्ण की तथा अंधकार से युक्त देखता है। रक्तज काच में दृष्टि लाला या कृष्ण वर्ण की हो जाती है, तथा उसे लाल या कृष्ण वर्ण की वस्तुएं दिखती हैं। रक्तज लिङ्गनाश में दृष्टि कृष्ण या लाल वर्ण तथा तेज से रहित एवम् देखने में असमर्थ होती है।

9.1.5 सन्निपातज तिमिर

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति। बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः॥
हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति॥ (सु.उ.त. 7/24)

सन्निपातिक तिमिर में रोगी विचित्र रूपों को देखता है तथा द्रव्य चारों ओर व्याप्त होते हैं। एक पदार्थ को बहुत रूप में या दो रूप में और चारों ओर द्रव्य देखता है। व्यक्ति को हीन या अधिक अंग से युक्त देखता है, इसी प्रकार प्रकाशमान वस्तु को देखता है।

संसर्गसन्निपातेषु विद्यात्सङ्कीर्णलक्षणान्। तिमिरादीनकस्माच्च तैः स्याद्व्यक्ताकुलेक्षणः॥
तिमिरे, शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते। (अ.हृ. 12/22)

सन्निपातिक तिमिर में सभी दोषों के मिश्रित लक्षण मिलते हैं। अकस्मात् रोगी कभी स्पष्ट एवम् कभी धुंधला देखता है। सन्निपातिक काच और लिङ्गनाश में दृष्टि में अनेक वर्ण उत्पन्न हो जाते हैं।

9.1.6 संसर्गज तिमिर (परिम्लायि)

पित्तं कुर्य्यात् परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा। पीता दिशस्तथोद्यन्तमादित्यमिव पश्यति।
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च॥ (सु.उ.त. 7/25)

प्रकुपित पित्त रक्त के तेज से मिलकर परिम्लायि रोग को करता है। रोगी सभी दिशाओं की पीत वर्ण का देखता है जैसे सूर्य उदय हो रहा हो। वृक्षों को जुगनू से व्याप्त या अन्य प्रकाशवान वस्तु से व्याप्त देखता है।

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचानलप्रभम्। परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लाय्यानीलश्च मण्डलम्।
दोषक्षयात् कदाचित् स्यात् स्वयं तत्र च दर्शनम्॥ (सु.उ.त. 7/28)

रक्त से उत्पन्न परिम्लायि रोग में दृष्टि का आकार मोटे काच जैसा हो जाता है एवम् दृष्टिमंडल म्लायि (म्लानता युक्त) तथा नील वर्ण का हो जाता है। दोषों के क्षय से कभी-कभी दिखाई पड़ने लगता है।

9.1.7-9.1.12 षडविध काच लक्षण

रोगोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टः पित्तात् परिम्लाय्यथवाऽपि नीलः।
कफात् सितः शोणातजस्तु रक्तः समस्तदोषोऽथ विचित्ररुपः॥ (सु.उ.त 7/27)

वातविकृति से दृष्टि का रंजन होने से उसका वर्ण लाल, पित्तविकृति से दृष्टि का रंजन होने से उसका वर्ण पीत, इसे परिम्लायि या नील कहते हैं तथा कफविकृति से दृष्टि का रंजन होने से उसका वर्ण श्वेत, रक्तविकृति से दृष्टि का रंजन होने से उसका वर्ण लाल तथा त्रिदोषज विकृति के कारण दृष्टि का रंजन होने से उसका वर्ण चित्र-विचित्र हो जाता है।

वाग्भट ने 6 प्रकार के काच और लिङ्गनाश के लक्षण तिमिर के लक्षण जाते हुए किए हैं।

Scanned with CamScanner

9.1.13-9.1.18 षड्विधलिङ्गनाश लक्षण

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा।। पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव वा।।

श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम्।। चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः।

सङ्कुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत्।। मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति।

प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम्।। दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे।

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि।। (सु.उ.त 7/29-33)

वातज लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल अरुण वर्ण का, चंचल और रुक्ष होता है। पित्तज लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल नील वर्ण, कांसे के समान उसकी आभा होती है तथा पीत वर्ण का होता हैं कफज लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल स्थूल, चिकना तथा शंख, कुन्द पुष्प, चन्द्रमा के समान पाण्डु वर्ण का होता है, हिलते हुए कमल के पत्र के समान होता है तथा धूप में अत्यंत संकुचित तथा छाया में विस्तृत हो जाता है। आंख दबाने पर दृष्टिमण्डल इधर-उधर चलता है। रक्तज लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल कमल के पुष्प के समान आभा लिए होता है तथा प्रवाल के समान लाल वर्ण का दिखता है। त्रिदोषज लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल अनेक वर्ण का होता है तथा वातादि दोषों के अनुसार इसमें लक्षण पाये जाते हैं।

तिमिर रोग की चिकित्सा

तिमिरं काचतां याति काचोऽप्यान्ध्यमुपेक्षया। नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद् द्रुतम्।।

(अ.हृ.उ 13/1)

तिमिर की उपेक्षा करने पर काच और काच की उपेक्षा करने पर लिङ्गनाश हो जाता है, इसलिए दारुण तिमिर रोग की शीघ्र चिकित्सा करें।

दोषानुरोधेन च नैकशस्तं स्नेहास्रविस्रावणरेकनस्यैः।

उपाचरेदञ्जनमूर्धवस्ति वस्तिक्रिया तर्पणलेप सेकैः।। (अ.हृ.उ 13/47)

दोष के अनुसार तिमिर में स्नेहपान, रक्तमोक्षण, विरेचन, नस्य, अंजन, शिरोवस्ति, वस्ति क्रिया, तर्पण, लेप, सेक करें।

हितं च विद्यात् त्रिफलाघृतं सदा कृतञ्च यन्मेषविषाणनामभिः।

सदाऽवलिह्यात्त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तज।। (सु. उ. त. 17/2)

तिमिर में त्रिफला घृत का प्रयोग लाभकारी होता है। मेषेशृङ्गी के फलों के कल्क तथा क्वाथ द्वारा सिद्ध किया घृत नेत्र रोगों में हितकारी होता है। पित्तज तिमिर में त्रिफला घृत को प्रचुर घृत के साथ लेना चाहिए।

समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तिः।

गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितं तु तैलं तिमिरेषु नावनम्।। (सु. उ. त. 17/32)

त्रिफला चूर्ण को तैल में मिलाकर वातज तिमिर में ले। कफज तिमिर में त्रिफला चूर्ण का शहद के साथ सेवन करें। गौ के गोबर के कल्क और क्वाथ में पकाया तैल को नस्य के रूप में प्रयोग करने से सभी प्रकार के तिमिर रोगों में लाभ होता है।

घृतं पुराणं त्रिफलां शतावरीं पटोलमुद्गामलकं यवानपि।

निषेवमाणस्य नरस्य यत्नतो भयं सुघोरा तिमिरान्नः विद्यते।। (सु.उ.त 17/48)

पुराण घृत, त्रिफला, शतावरी, पटोल पत्र, मूंग, आंवला, यव इन पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य को तिमिर रोग से भय नहीं होता है।

शतावरी पायस एवं केवलस्तथाकृतो वाऽऽमलकेषु पायसः।

प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोद कोत्तरो यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहति।। (सु.उ.त 17/49)

शतावरी से सिद्ध दूध की खीर, आंवले से सिद्ध दूध की खीर का सेवन, त्रिफला के क्वाथ में प्रचुर मात्रा में घृत मिलाकर सेवन और जौ को पानी में उबाल कर ओदन बनाकर सेवन करें।

जीवन्तिशाकं सुनिषण्णकं च सतण्डुलीयं वरवास्तुकञ्च।

चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टे हितं शाकुनजाङ्गलञ्च।। (सु.उ.त. 17/50)

जीवन्ती शाक, सुनिषण्णक, तण्डुलीयक, बथुआ, चिल्ली, छोटी मूली तथा जांगल पशु पक्षियों के मांस का सेवन करें।

वाग्भट ने तिमिर में विभिन्न प्रकार के घृतों का उल्लेख किया है:-

विवर्जयेत्सिरामोक्षं तिमिरे रागमागते। यन्त्रेणोत्पीडितो दोषो निहन्यादाशु दर्शनम्।। (सु.उ.त. 17/52)

तिमिर में राग प्राप्त हो जाने पर सिरामोक्षण न करें, यन्त्र से पीड़ित दोष दृष्टि को नष्ट कर देते हैं। जीवन्त्यादि घृत, द्राक्षादि घृत, पटोलादि घृत, त्रिफलादि घृत आदि।

भवन्ति याप्याः खलु ये षडामया हरेदसृक्तेषु सिराविमोक्षणैः।

विरेचयेच्चापि पुराणसर्पिषा विरेचनाङ्गोपहितेन सर्वदा।। (सु.उ.त. 17/28)

6 प्रकार के तिमिर याप्य है, उनमें सिरामोक्षण करना चाहिए, फिर विरेचक द्रव्यों के द्वारा पुराण घृत का पान कराके विरेचन कराना चाहिए।

ताप्यायोहेमयाष्ट्याह्वसिताजीर्णाज्यमाक्षिकैः।। संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी वरा वरा।

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी।। अपूपसूपसक्तून वा त्रिफला चूर्ण संयुतान्।

पायसं वा वरायुक्तं शीतं समधु शर्करम्।। प्रातर्भक्तस्य वा पूर्वमद्यात्पथ्यां पृथक्-पृथक्।

मृद्वीकाशर्कराक्षौद्रेः सततं तिमिरातुरः।। (अ.हृ.उ 13/16-19)

स्वर्णमाक्षिक, लौह, स्वर्ण भस्म, मुलहठी, मिश्री, पुराण घृत, मिलाकर मधु इनके साथ त्रिफला मिलाकर यथावश्यक लें अर्थात् किसी एक द्रव्य के साथ या दो द्रव्य या सब के साथ मिलकार त्रिफला का सेवन करें। त्रिफला के क्वाथ को घृत के साथ निरन्तर सेवन करना चाहिए। त्रिफला चूर्ण में मिले अपूप, सूप या सत्तू को खाएं। त्रिफला मिश्रित खीर को शीतल होने पर मधु तथा शर्करा से युक्त कर प्रातःकाल सेवन करें अथवा हरड़ को मृदीका, शर्करा, मधु से मिलाकर सेवन करें।

कृष्णसर्पवदने सहविष्कं दग्धमञ्जनमनिःसृतधूमम्।

चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नतारमपि रक्षति चक्षुः।। (अ.हृ.उ 13/38)

काले सर्प के मुख में अंजन और घी रखकर जलाए तथा इसे चूर्ण कर खस और तेजपत्र मिलाकर नेत्र में लगाएं। यह अतिशक्तिशाली है, तारा (Retina) के अलग हो जाने पर भी नेत्र की रक्षा करता है।

इसके अतिरिक्त वाग्भट ने कुक्कुटविडंजन, सर्पवसाद्यंजन, विभीतकांजन का तिमिर में प्रयोग बताया है।

Scanned with CamScanner

सदाऽवलिह्यात्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे॥
समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः।
गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितं तु तैलं तिमिरेषु नावनम्॥ (सु.उ.त. 17/31-32)

त्रिफला चूर्ण को पित्तज तिमिर में प्रचुर घृत में मिलाकर सेवन करें। वातज तिमिर में त्रिफला चूर्ण तिलतैल से सेवन करें तथा कफज में त्रिफला चूर्ण मधु के साथ सेवन करें। गौ के गोबर के क्वाथ में सिद्ध तैल का नस्य सेवन लाभप्रद है।

वातज तिमिर की चिकित्सा

सहाऽश्वगन्धाऽतिबलावरी शृतं हितं च नस्ये त्रिवृतं यदीरितम्।
जलोद्भवानूपजमांससंस्कृताद् घृतं विधेयं पयसो यदुत्थितम्॥ (सु.उ.त 17/34)

मुद्गपर्णी, अश्वगंधा, अतिबला, शतावरी से सिद्ध घृत का नस्य में प्रयोग करें। त्रिवृतादि अर्थात् त्रिवृत घृत, वसा, मज्जा से सिद्ध तैल का नस्य में प्रयोग करें अथवा जल में उत्पन्न होने वाले प्राणियों के मांस से संस्कृत दुग्ध को पूर्वोक्त मुद्गपर्णी आदि औषधियों में पकाकर नस्य दें।

गीध, सर्प, मुर्गा इनकी वसा को मुलेठी के चूर्ण के साथ मिश्रित कर अंजन करें।

पित्तज तिमिर चिकित्सा

हविर्हितं क्षीरभवं तु पैत्तिके ववन्ति नस्ये मधुरौषधैः कृतम्।
तत्तर्पणे चैव हितं प्रयोजितं सजाङ्गलस्तेषु च यः पुटाह्वयः॥ (सु.उ.त. 17/38)

घी को मधुर गण की औषधियों के साथ पकाकर नस्य दें। जांगल पशु पक्षियों के मांस को पुटपाक विधि से पकाकर नेत्र का तर्पण करें।

रसाञ्जन क्षौद्रसितामनः शिलाः क्षुद्राञ्जनं तन्मधुकेन संयुतम्। (सु.उ.त. 17/39)

रसौत, शहद, शर्करा, मैनशिल, मुलहठी को मिलाकर रसक्रिया बनाकर आंख में लगावें।

कफज तिमिर चिकित्सा

समागधो माक्षिकसैंधवाढ्यः सजाङ्गल स्यात् पुटपाक एव च।
मनः शिलात्यूषण शङ्ख माक्षिकैः ससिन्धुकासीसरसाञ्जनैः क्रियाः॥ (सु.उ.त. 17/43)

पिप्पली, शहद, सैंधवलवण और जांगल पशु पक्षियों के मास को मिलाकर पुटपाक बनाकर प्रयोग करें। मैनसिल, त्र्यूषण, शंख, मधु, सैंधव लवण, कासीस, रसांजन मिलाकर नेत्र में लगाएं।

सन्निपातज तिमिर चिकित्सा

यवञ्जनं वा बहुशो निषेचितं समूत्रवर्गे त्रिफलोदके शृते॥
निशाचरास्थितमेतदञ्जनं क्षिपेच्च मासं सलिलेऽस्थिरे पुनः।
मेषस्य पुष्पैर्मधुकेन संयुतं तदञ्जनं सर्वकृते प्रयोजयेत्॥ (सु.उ.त. 17/44-45)

सौवीरांजन को तपा-तपाकर बार-बार मूत्रवर्ग में, त्रिफला क्वाथ में बुझाकर निशाचर पक्षी की अस्थियों के खोखले भाग में भरकर एक मास तक बहते हुए जल में छोड़ दे पश्चात् इसमें मेषपुष्प व मुलेठी चूर्ण मिलाकर आंख में प्रयोग करें।

रक्तज परिम्लायि तिमिर की चिकित्सा

क्रियाश्च सर्वाः क्षतजोद्भवे हितः क्रमः परिम्लायिनि चापि पित्तहृत्।
क्रमो हितः स्यन्दहरः प्रयोजितः समीक्ष्य दोषेषु यथास्वमेव च॥ (सु.उ.त. 17/46)

रक्तज, परिम्लायि तिमिर में पित्तनाशक क्रम करें यथा तर्पण, नस्य, पुटपाक इत्यादि। दोष के अनुसार अभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

रागप्राप्तेष्वपि हितास्तिमिरेषु तथा क्रियाः। यापनार्थं यथोद्दिष्टाः सेव्याश्चपि जलौकसः।
(सु.उ.त. 17/54)

तिमिर में राग प्राप्त हो जाने पर जलौका के द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिए।

श्लैष्मिक लिङ्गनाश की शस्त्र विधि

श्लैष्मिके लिङ्गनाशे तु कर्म वक्ष्यामि सिद्धये। न चेदर्द्धेन्दुघर्माम्बुबिन्दुमुक्ताकृतिः स्थिरः॥
विषमो वा तनुर्मध्ये राजिमान् वा बहुप्रभः। दृष्टिस्थो लक्ष्यते दोषः सरुजो वा सलोहितः॥
(सु.उ.त. 17/55-56)

श्लैष्मिक लिङ्गनाश में चिकित्सा कर्म करने के पूर्व देखना चाहिए कि दृष्टिमणि पर अर्धचन्द्राकृति, पसीने के जल के बिन्दु समान अथवा मोती जैसा कोई चिह्न तो नहीं है अथवा स्थिर, विषम, पतला, बीच में रेखा युक्त या अनेक प्रभा वाला, पीड़ा युक्त और लाल वर्ण का कोई दोष दृष्टि मणि पर तो नहीं है।

विध्येत्सुजातं निःप्रेक्ष्यं लिङ्गनाशं कफोत्भवम्।
आवर्तक्यादिभिः षडभिर्विवर्जितमुपद्रवैः॥ (अ.हृ.उ. 14/2)

अच्छी प्रकार से पका हुआ कफज लिङ्गनाश जिसमें कुछ दिखाई न दे, जल के भंवर के समान चंचल, छः उपद्रवों से रहित लिङ्गनाश का वेधन करें।

स्निग्धस्विन्नस्य तस्याथ काले नात्युष्णशीतले।
यान्त्रितस्योपविष्टस्य स्वां नासां पश्यतः समम्॥ (सु.उ.त. 17/57)

रोगी को स्निग्ध करके मृदु स्वेदन कर्म करें। फिर न अधिक उष्ण न शीतल काल में रोगी के सिर को यन्त्रित करके उसे अपनी नासिका की ओर देखने को कहें।

मतिमान् शुक्लभागौ द्वौ कृष्णान्मुक्त्वा ह्यपाङ्गतः। उन्मील्य नयने सम्यक् सिराजालविवर्जिते॥
नाधो नोर्ध्वं न पार्श्वभयां छिद्रै दैवकृते ततः। शलाकया प्रयत्नेन विश्वस्तं यववक्त्रया॥
मध्यप्रदेशिन्यङ्गुष्ठस्थिरहस्तगृहीतया। दक्षिणेन भिषक् सव्यं विध्येत् सव्येन चेतरत्॥
(सु.उ.त. 17/59-60)

इससे कृष्णमण्डल मध्य में हो जाता है, कृष्णमण्डल से दो हिस्से शुक्ल भाग को छोड़कर अपाङ्ग की ओर सिराओं से रहित नेत्रगोलक में न अधिक नीचे, न ऊपर, न पार्श्व में किन्तु दैवकृत छिद्र में मध्यमाङ्गुली, प्रदेशिनी और अंगुष्ठ के सहारे यववक्त्रा शलाका के द्वारा दक्षिण हस्त से वाम नेत्र तथा वामहस्त से दक्षिण नेत्र में वेधन करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

वारिबिन्द्वागमः सम्यग् भवेच्छब्दस्तथा व्यधे। संसिच्य बिन्दुमात्रंतु योषितस्तन्येन कोविदः॥
स्थिरे दोषे चले वाऽपि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः। सम्यक् शलाकां संस्थाप्य भङ्गैरनिलनाशनैः॥

(सु. उ. त. 17/61-62)

सम्यक् वेधन होने पर विशिष्ट प्रकार की आवाज़ आती है तथा वेधन के स्थान से जल के बिन्दु के समान पदार्थ निकलता है बाद में उस स्थान को स्त्री दुग्ध से सिंचित करें। दोष स्थिर अथवा चल हो, बाहर की ओर से स्वेदित करना चाहिए।

शलाकाग्रेण तु ततो निंखलखेद दृष्टिमण्डलम्। विध्यतो योऽन्यपार्श्वेऽक्षणस्तं रुद्ध्वा नासिकापुटम्॥
उच्छिङ्घनेन हर्त्तव्यो दृष्टिमण्डलगः कफः॥ (सु. उ. त. 17/63)

शलाका के अग्रभाग से दृष्टि मण्डल का लेखन करें। पश्चात् दूसरी आंख जिसमें शस्त्र कर्म न हुआ हो नासाछिद्र को बंद करके छींकें जिससे कफ का निर्हरण हो जाता है।

निरभ्र इव घर्मांशुर्यदा दृष्टिः प्रकाशते। तदाऽसौलिखिता सम्यग् ज्ञेया या चापि निव्यर्था॥

(सु. उ. त. 17/64)

मेघ रहित आकाश में सूर्य के चमकने के समान दृष्टि चमकने लगती है तथा किसी प्रकार की पीड़ा न हो तो सम्यक लेखन समझें।

यदि दोष न निकले तो शरीर और नेत्र का स्नेहन, स्वेदन कर पुनः वेधन करना चाहिए। यदि रोगी को ठीक प्रकार से दिखने लगे तो धीरे-धीरे शलाका निकालकर, उस नेत्र को घृत से पूरित कर वस्त्र से पट्टी नेत्र में बांधे। तत्पश्चात् रोगी को धूम, वातरहित स्थान पर रहना चाहिए। उदगार, कास, थूकना, शरीर का कंपन वर्जित हैं। आहार का नियंत्रण करें।

प्रति तीसरे दिन पट्टबंधन खोलकर, वातघ्न कषाय से नेत्र का प्रक्षालन करें तथा वात का प्रकोप न हो तो शस्त्र कर्म के तीन दिन बाद नेत्र पर मृदु स्वेदन करें। दस दिन तक रोगी को नेत्र के हित के लिए अंजन, तर्पणादि कर्म करने चाहिए तथा यथाशक्ति लंघन करें। शलाका की लम्बाई आठ अंगुल एवं मोटाई अंगुष्ठ के उदर के समान तथा अन्तिम भाग पुष्प की कलिका के स्वरूप का तथा ताम्र, लौहे या स्वर्ण की शलाका होनी चाहिए।

उचित वेधन न करने से तथा अहित आहार-विहार का सेवन करने से नेत्र में लालिमा, शोथ, अर्बुद, चोष, मांस की वृद्धि, नीचे को देखना तथा अधिमन्थ आदि रोग हो जाते हैं।

दोषस्त्वधोऽपकृष्टोऽपि तरुणः पुनरुद्ध्वगः। कुर्यांच्छुक्लारुणं नेत्रं तीव्ररुङ्नष्टदर्शनम्॥
मधुस्तत्र सिद्धेन घृतेनाक्ष्णः प्रसेचनम्। शिरोबस्तिं च तेनैव दद्यान्मांसैश्च भोजनम्॥

(सु. उ. त. 17/78-79)

अपक्व लिङ्गनाश हो (Immature Cataract) तो शस्त्र से दोष को नीचे की तरफ खींचने पर वह दोष पुनः ऊपर जाकर नेत्र में सफेदी, लालिमा (Congestion), तीव्र पीड़ा, देखने में असामर्थ्य को पैदा करेगा। ऐसा हो तो मधुरगण की औषधियों के क्वाथ से सिद्ध घृत से नेत्र का सेंचन करे तथा इन्हीं द्रव्यों से शिरोबस्ति दें। भोजन के लिए मांसरस का प्रयोग करें।

दोषस्तु सञ्जातबलो घनः सम्पूर्णमण्डलः। प्राप्य नश्येच्छलाकाग्रं तन्वभ्रमिव मारुतम्॥

(सु. उ. त. 17/80)

पक्व लिङ्गनाश हो (Mature Cataract), स्थूल एवं गोल हो तब उस पर शलाका का अग्र भाग लगते ही दोष नष्ट हो जाते हैं जैसे हवा पतले मेघ को शीघ्र उड़ा देती है।

मूर्द्धाभिघातव्यायामव्यवायवमिमूर्च्छनैः। दोषः प्रत्येति कोपाच्च विद्धोऽतितरुणश्च यः॥

(सु. उ. त. 17/81)

तरुण दोष का वेधन होने पर, सिर पर आघात लगने से, व्यायाम करने से, मैथुन से, वमन से, मूर्च्छा से एवम् क्रोध करने से फिर से दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

तिमिर की साध्यासाध्यता

अरागि तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम्। कच्छ्रं द्वितीये रागि स्यात् ततीये याप्यमुच्यते॥

(सु. उ. त. 17/53)

राग रहित तथा प्रथम पटल में स्थित तिमिर साध्य होता है, द्वितीय पटल में स्थित तथा राग से युक्त तिमिर कृच्छ्रसाध्य होता है तथा तृतीय पटल में स्थित याप्य होता है।

आधुनिक मतानुसार तिमिर को Cataract कह सकते है।

Lens is a transparent, biconvex, crystalline structure suspended between iris and vitreous. It is suspended by the suspensory ligament of the lens or zonules of Zinn which is attached to ciliary body and equator of the lens. Diameter is 9-10 mm, thickness 4 mm, Refractive index 1.39 and weight is 250 mg and dioptric power is 15 to 18 D. Lens is enclosed in the elastic capsule. Underneath capsule is layer of cubical epithelium. The lens fibres consist of the superficial matter the cortex and the deeper part, the nucleus. The youngest fibres are in the cortex. As the age advances, the older fibres are pushed towards the centre of lens. In a normal eye, light passes through the transparent lens to the retina. Once it reaches the retina, light is changed into nerve signals that are sent to brain and images are seen.

CATARACT

Cataract is a clouding of the lens of the eye. Cataract is commonly seen in the old age.

If the lens is cloudy, blurred image is seen. The word cataract is derived from the latin word cataracta meaning water fall.

The lens grows in size continuously throughout life and in this respect it is unique among the organs of the body.As the lens fibres elongate and new ones form, the older ones are pushed towards the depth of the lens so that the youngest lens fibres are the most superficially located.

Aetiopathogenesis of cataract-

Cataract is caused by the degeneration and opacification of the lens fibres. The loss of transparency occurs because of abnormalities of the lens fibres. Any factor, physical or chemical, which disturbs the intra and extra cellular equilibrium of water and electrolytes tends to bring about opacification.

Fig. 8 - Cataract

Scanned with CamScanner

Causes

- Long term exposure to ultraviolet rays.
- Secondary effect of diseases such as Diabetes.
- Coagulation of proteins.

Classification

- Congenital & Developmental cataract
- Acquired cataract

(i) Senile cataract. (ii) Traumatic cataract.
(iii) Radiational cataract. (iv) Electric cataract. (v) Toxic cataract.

Morphological classification

(i) Anterior capsular cataract. (ii) Posterior capsular cataract.
(iii) Supranuclear capsular cataract. (iv) Nuclear capsular cataract.

Congenital and Developmental cataract

It is present at birth or in early childhood.

Etiology

- Maternal malnutrition.
- Maternal infection.
- Deficient oxygenation.

Clinical features

- Diminished vision
- White reflex in the pupillary area (Leucocoria).
- Plane mirror examination depicts black shadow against a red background in case of ISC (Immature senile cataract).

Clinical types

Punctate or blue-dot cataract: It is most common variety in which multiple, small, opaque and scattered dots are seen.

Zonular or lamellar cataract: It is characterized by the opacity of one zone of lens fibre while the rest is normal.

Coronary cataract: It commonly occurs at puberty. It is situated in the deep layers of cortex and superficial layers of nucleus. There are multiple club shaped opacities near the periphery of the lens.

Treatment

- No treatment is required if the vision is good .
- Complete bilateral cataract should be removed earliest.

Senile cataract: This is commonest type of acquired cataract.

Types

Cortical (soft cataract)

Nuclear (Hard cataract)

Cortical cataract is of further two types:

Cuneiform (70% of cases)

Cupuliform (5% of cases)

Clinical stages

1. **Stage of lamellar separation:** There is demarcation of cortical fibres due to separation by fluid wich can be demonstrated on slit lamp examination. The hydration causes change in the refractive index of the cortex. These changes are reversible.
2. **Stage of incipient cataract:** Wedge shaped spokes of opacity appear in the periphery of the lens with the clear areas in between.
3. **Intumescent (Immature senile cataract):** Progressive hydration causes swelling and opacification of lens. The lens appear greyish white but clear cortex is still present so iris shadow is seen.
4. **Mature senile cataract (MSC):** The entire cortex becomes opaque and lens become pearly white in colour.
5. **Hypermature senile cataract (HMSC):** When the mature cataract is left untreated; the stage of hypermaturity develops. Two types are:
   (i) **Hypermature morgagnian type:** The whole of cortical matter liquifies and appears milky. Nucleus is small, brownish and sinks by gravity.
   (ii) **Hypermature sclerotic type:** Cortex becomes disintegrated and the lens become shrunken due to leakage of water. The anterior capsule is wrinkled and thickened. **Iris** becomes tremulous (Iridodonesis).

Symptoms

- Glare: Intolerance to bright light.
- Coloured haloes
- Distortion of image
- Polyopia: Doubling or trebling of objects
- Black spots in the front of eyes.
- Diminished vision: It is progressive. The vision is reduced to hand movement or projection of rays in advanced stage of cataract.

Signs

Iris shadow: It is the shadow of the pupillary margin on the lens. When an oblique beam of light is thrown on the pupil, shadow is formed; until a clear lens matter is present. It is sign of immature cataract. When the lens is completely transparent; no iris shadow is formed.

Visual Acuity: Vision is diminished. In case of mature cataract, vision is reduced to perception of hand movement.

Oblique illumination examination: Shows the colour of lens in the pupillary area. Greyish appearance of lens is seen in the case of immature cataract. Pearly white appearance of the lens is seen in mature cataract.

Plane mirror examination: Plane mirror examination done at distance of 1m shows black shadow against a red background in case of immature cataract. No red glow is seen in mature cataract.

Distant direct ophthalmoscopy: Distant direct ophthalmoscopy is done by ophthalmoscope at distance of 22 cm. Immature cataract shows black shadow against red glow. Mature cataract shows no red glow.

Nuclear cataract (Hard cataract): There is sclerosis of central nuclear fibres but cortical fibres remain transparent. The nucleus becomes cloudy and obstructs the light rays. The lens appears brown or black due to deposition of melanin pigment. Iris shadow is present. The vision is reduced to finger counting or perception of light.

Scanned with CamScanner

Complicated cataract: It occurs as a result of pathology in the eye. The opacity at first starts in the posterior cortex in the form of rosette with polychromatic lustre. There is markedly impaired vision.

Traumatic cataract: Perforating corneal injuries and concussion cause traumatic cataract. Rosette cataract is present in the posterior cortex.

Diabetic cataract: The snow flake opacities appear in the cortex causing milky white appearance.

Cataract due to Drugs: Long continued application of powerful miotics can cause lenticular opacities under anterior capsule.

Treatment: Surgical procedure can be of two types: (i) Intracapsular lens extraction (ICCE) (ii) Extracapsular lens extraction (ECCE).

Extracapsular cataract extraction: In this technique major portion of lens is removed leaving behind intact posterior capsule. In intracapsular cataract extraction, the entire cataractous lens is removed alongwith the capsule.

ECCE is considered as procedure of choice over ICCE, however, in eye-camps ICCE is performed due to lack of facility for micro surgery. ICCE is contraindicated below the age of 40 years due to strong capsule. Posterior chamber intraocular lens implantation (PCIOL) can be done in ECCE. Post operative complications such as retinal detachment are less after ECCE.

Phacoemulification (P.E.) refers to modern cataract surgery in which lens of eye is emulsified with an ultrasonic technique and aspirated from the eye.

It is now-a-days preferred form of cataract removal. The technique utilizes small incision about 3.0 mm.

Advantages of Phacoemulsification over normal conventional surgery

In conventional surgery; incision is larger about 10-12 mm and requires stitches for closing. This larger incision takes 6-8 weeks to heal. Moreover, stitches can cause distortion of the normal curvature of cornea and thus can lead to blurred vision, whereas phaco-emulsification is self healing as the incision is very small. The wound is more stable and chances of complications are very less. The patients can resume their normal activity faster as compared to the conventional surgery.

9.1.19 पित्तविदग्ध दृष्टि

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टि पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः।
पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः॥
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते च।
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तात्यभावादपि तानि पश्येत्॥ (सु. उ. त. 7/34-35)

कुपित पित्त दृष्टि में पहुँचकर दृष्टि मण्डल को पीतवर्ण का कर देता है। रोगी सभी वस्तुओं को पीत वर्ण का देखता है। दोष तृतीय पटलगत होने से रोगी दिन में नहीं देख सकता, रात्रि को देख सकता है। रात्रि में दृष्टि पर शीत का प्रभाव होने से, पित्त की अल्पता होने से रात्रि को देख सकता है।

भवेत् पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना। (अ. हृ. उ. 12/15)

पित्तविदग्धदृष्टि में दृष्टि पीत वर्ण की होती है तथा सभी वस्तुएं पीली दिखाई पड़ती हैं।

पित्तविदग्धदृष्टि की चिकित्सा

रसाञ्जनरसक्षौद्रतालीशस्वर्णगौरिकम्। गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये॥ (सु. उ. त. 17/12)

रसौत, आमलकी स्वरस, शहद, तालीशपत्र, स्वर्णगैरिक को गाय के गोबर के रस से पीसकर अंजन बनाकर आंख में प्रयोग करें।

काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीरोध्रसाञ्जनैः। सक्षौद्रमंजनंतद्वद्धितमत्रामये सदा॥ (सु. उ. त. 17/15)

गम्भारी पुष्प, मुलेठी, दारुहरिद्रा, लोध्र, रसौत को चूर्ण बनाकर अंजन के रूप में प्रयुक्त करें।

दृष्टौ पित्तविदग्धायां विदग्धायां कफेन च।
पित्तश्लेष्महर कुर्याद् विधिं शस्त्रक्षतादृते॥ (सु. उ. त. 17/4)

पित्तविदग्धदृष्टि में पित्ताभिष्यन्दनाशक तथा कफविदग्धदृष्टि में कफाभिष्यन्दनाशक चिकित्सा करें किन्तु इन दोनों रोगों में सिरावेध नहीं करना चाहिए।

आधुनिक मतानुसार इसे Day blindness or Hamarlopia कह सकते हैं।

यह पित्तज साध्य रोग है।

HAMARLOPIA

Day blindness is characterized by insufficiency to visualize clearly in the bright light. It is known as Hamarlopia.

Causes

- Cones dystrophy.
- Central corneal opacity
- Genetic cause
- Pathological changes in the macula
- Macular burn.
- Central Nuclear cataract.
- Central Vitreous opacity
- Degeneration of cones.
- Central lens opacity.
- Central macular choroiditis.

Treatment

Treat the underlying cause.

9.1.20 श्लेष्मविदग्ध दृष्टि

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु॥
त्रिषु स्थितोऽल्प पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य।
दिवा स सूर्यानुगृहीतचक्षुरीक्षेत रूपाणि कफाल्पभावात्॥ (सु. उ. त. 7/37-38)

श्लेष्मविदग्ध दृष्टि में रोगी सभी पदार्थों को श्वेत देखता है। कफ तीनों पटलों में स्थित होने पर नक्तान्ध्य हो जाता है। दिन में सूर्य के तेज से कफ के अल्प हो जाने से रोगी दिन में देख सकता है।

यह कफज साध्य रोग है।

वाग्भट ने श्लेष्मविदग्ध दृष्टि रोग का उल्लेख नहीं किया है।

परन्तु दोषान्ध का वर्णन किया है जिसका कफ विदग्ध दृष्टि से साम्य संभव है तथा दोनों Night Blindness का अर्थ देते हैं।

श्लेष्मविदग्धदृष्टि की चिकित्सा

हरेणु मगधाजास्थिमज्जैलायकृदन्वितम्। यकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये॥ (सु. उ. त. 17/23)

रेणुका (निर्गुण्डी बीज), पिप्पली, बकरी की अस्थि और मज्जा, इलायची और बकरी का यकृत लेकर पीसकर अंजन के रूप में लगाएं।

नस्यसेकाञ्जनालेपपुटपाकैः सतर्पणैः। आद्ये तु त्रैफलं पेयम् सर्पिस्त्रवृतमुत्तरे॥
तैल्वकं चोभयोः पथ्यं केवलं जीर्णमेव वा। (सु. उ. त. 17/5)

नस्य, सेक, अंजन, आलेप, पुटपाक, तर्पण के लिए पित्तविदग्ध दृष्टि में त्रैफलघृत का प्रयोग करें, कफविदग्धदृष्टि में त्रैवृत घृत, तैल्वक घृत और पुराण घृत का प्रयोग करें।

Scanned with CamScanner

कुब्जकाशोकशालाम्रप्रियङ्गुनलिनोत्पलैः। पुष्पैहरेणुकृष्णाह्वापथ्याऽऽमलकसंयुतैः॥
सर्पिर्मधुयुतैश्चूर्णैर्वेणुनाड्यमवस्थितैः। अञ्जयेद् द्वावपि भिषक् पित्तश्लेष्मविभावितौ॥ (सु. उ. त. 17/8-9)

संवती पुष्प, अशोक, शाल, आम, प्रियंगु, नलिन, कमल, हरेणुका, पिप्पली, हरड़ और आंवले को लेकर बांस की नल में रखकर अंजन बनाकर पित्त और कफ विदग्धदृष्टि में प्रयोग करें।

आधुनिक मतानुसार इसे Night blindness कह सकते हैं।

NIGHT BLINDNESS

Night blindness is inability to see in dim light or darkness due to impaired function of special vision cells (namely the rods).

Night blindness is also called nocturnal amblyopia/ nyctalopia. Early night blindness causes prolongation of dark adaptation time.

Causes

- *Macular degeneration*
- *Xerophthalmia, Retinal detachment.*
- *Retinitis pigmentosa*
- *Peripheral cortical cataract.*
- *Chronic simple Glaucoma*
- *Deficiency of vitamin A*
- *Pathological Myopia*
- *Congenital. Congenital night blindness is disorder in which rod cells in retina gradually lose their ability to respond to the light.*
- *Peripheral chorio-retinitis*
- *Advanced open angle glaucoma*

Symptoms

- *Difficulty in seeing in dim light.*
- *Increased dark adaptation time.*
- *Poor vision in reduced light.*

Treatment

- *Management of the underlying cause.*

9.1.21 धूमदर्शी

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः।
स धूमकान् पश्यति सर्वभावांस्तं धूमदर्शीति वदन्ति रोगम्॥ (सु. उ. त. 7/39)

शोक, ज्वर, अधिक परिश्रम, शिर-शूल के कारण जिस व्यक्ति की दृष्टि अभिहत अर्थात् दूषित हुई हो, वह व्यक्ति सभी पदार्थों को धुएँ से आच्छादित देखता है।

यह साध्य पैत्तिक रोग है।

वाग्भट ने इस रोग का धूमर के नाम से उल्लेख किया है।

शोकज्वरशिरोरोग संतप्तस्यानिलादयः। धूमाविलां धूमदृशं दृशं कुर्युः स धूमरः॥ (अ. हृ. उ. 12/27)

शोक, ज्वर, शिरोरोग से पीड़ित पुरुष में वातादि दोष दृष्टि को धुएँ के समान मलिन कर देते हैं तथा सभी दिशाओं को धुएँ से आवृत देखता है।

धूमदर्शी चिकित्सा

युञ्जयात्सर्पिधूमदर्शी नरस्तु शेषं कुर्याद्रक्तपित्ते विधानम्।
यच्चैवान्यत् पित्तहृच्चापि सर्वं यद्वीसर्पे पैत्तिके वै विधानम्॥ (सु. उ. त. 10/16)

धूमदर्शी में रोगी घृत का प्रयोग करें तथा रक्तपित्तघ्न चिकित्सा क्रम का प्रयोग करें। अन्य कर्म भी पित्तनाशक हों जैसे शीतल लेप, सेक, विरेचनादि तथा पैत्तिक विसर्प में जो चिकित्सा विधान का उल्लेख किया गया है उनका सेवन करें।

धूमराख्याम्लपित्तोष्णविदाहे जीर्णसर्पिषा। स्निग्धं विरेचयेच्छीतैः शीतैर्दिह्याच्च सर्वतः॥
गोशकृद्रसदुग्धाजयैर्विपक्वं शस्यतेऽञ्जनम्। स्वर्णगैरिकितालीसचूर्णावापा रसक्रिया॥
मेदाशावरकानन्तामंजिष्ठदार्वियाष्टिभिः। क्षीराष्टाशं घृतं पक्वं सतैलं नावनं हितम्॥
तर्पणं क्षीरसर्पिः स्यादशाम्यति सिराव्यधः। (अ. हृ. उ. 13/91-93)

धूमर, अम्लविदग्ध, पित्तविदग्ध और उष्णविदग्ध में पुरातन घृत से स्निग्ध की शीतल औषधियों से विरेचन दें तथा शीतल वस्तुओं का लेप करें। गोबर का रस,दूध और घी से पकाया अंजन प्रशस्त है। स्वर्णगैरिक, तालीशपत्र के चूर्ण से बनी रसक्रिया का प्रयोग करें। मेदा, शावरलोध, सारिवा, मंजीठ, दारुहल्दी, मुलहठी, दूध आठ भाग इनसे घृत और तैल सिद्ध कर नस्य लें। घृत से तर्पण करें तथा सिरामोक्षण करें।

आधुनिक मतानुसार इसे Smoky/Blurred Vision कह सकते हैं।

Etiology

- Errors of the refractive media like Myopia, hypermetropia.
- Inflammatory conditions of the eye.
- Immature cataract.
- Glaucoma.
- Corneal oedema.
- Uveitis.
- Retinal lesions.

Management

- Treatment of the underlying cause.

9.1.22 ह्रस्वजाड्य

स ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छाद् ह्रस्वानि रूपाणि च येन पश्येत्॥ (सु.उ.त. 7/40)

ह्रस्वजाड्य में रोगी दिन में कठिनाई से देखता है तथा सभी वस्तुओं को आकार में छोटा देखता है। यह पैत्तिक असाध्य रोग है।

दृष्टि पित्तेन ह्रस्वाख्या सा ह्रस्वा ह्रस्वदर्शिनी॥ (अ.हृ.उ. 12/15)

पित्त से दृष्टि छोटी हो जाती है तथा स्वभाविक वस्तुएं भी आकार में छोटी दिखती हैं।

सुश्रुत और वाग्भट ने इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया है।

ह्रस्वजाड्य के लक्षणों के अनुसार इसे आधुनिक मतानुसार Micropsia, Night blindness के सापेक्ष रख सकते हैं।

MICROPSIA

A defect of vision in which objects appear to be smaller than their actual size.

Causes of micropsia

- Macular lesions.
- Use of morphine and heroin.
- Hypermetropic refractive status.
- Migraine, epilepsy.

Treatment

- Cure the underlying cause.

Scanned with CamScanner

अत्र वर्जयेत्॥ बिना कफलिङ्गनाशान् गम्भीरां ह्रस्वजामपि।
षट् काचा नकुलान्धश्च याप्याः शेषास्तु साधयेत्।
द्वादशेति गदा दृष्टौ निर्दिष्टाः सप्तविंशतिः॥ (अ. हृ. उ. 12/32-33)

कफज लिङ्गनाश को छोड़कर वातज, पित्तज, रक्तज, संसर्गज, त्रिदोषज, औपसर्गिक लिङ्गनाश, गम्भीरा, ह्रस्वजा असाध्य है। छः काच, नकुलान्ध्य याप्य है तथा शेष बारह रोग छः तिमिर तथा कफज लिङ्गनाश, रात्र्यन्ध, पित्तविदग्ध, उष्णविदग्ध, अम्लविदग्ध, धूमदर्शी साध्य हैं।

9.1.23 नकुलान्ध्य

विद्योतते येन नरस्य दृष्टि र्दोषभिपन्ना नकुलस्य यद्वत्।
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत् स वै विकारौ नकुलाध्यसंज्ञः॥ (सु. उ. त. 7/41)

तीनों दोषों से युक्त जिस (व्यक्ति) का दृष्टिमण्डल नेवले की तरह चमकता हो तथा दिन में नाना वर्ण के द्रव्यों को देखता है, उस व्याधि को नकुलान्ध्य संज्ञा दी गई है।

डल्हण मतानुसार 'दिवा स पश्येदिति वचनाद्रात्रौ न पश्यति।'

अर्थात् रोगी दिन में देख सकता है परन्तु रात्रि में नहीं देख सकता।

यह त्रिदोषज असाध्य रोग है।

द्योत्यते नकुलस्येव यस्य दृङ् निचिता मलैः।
नकुलान्धः स तत्राह्नि चित्रं पश्यति नो निशि। (अ. हृ. उ. 12/23)

दृष्टि में संचित दोषों के कारण जिसमें दृष्टि नेवले की भांति चमकती है, उसे नकुलान्ध्य रोग कहते हैं तथा रोगी दिन में चित्र-विचित्र रूप देखता है, रात्रि में नहीं देख सकता है।

नकुलान्धो त्रिदोषोत्थे तैमिर्यविहितो विधिः॥ (अ. हृ. उ. 13/83)

त्रिदोषज नकुलान्ध में तिमिर में कहीं चिकित्सा करें।

आधुनिक मतानुसार नकुलान्ध्य को Night blindness कह सकते हैं।

9.1.24 गम्भीरिका

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टासङ्कुच्यतेऽभ्यन्तरतश्च याति।
रूजावगाढा च तमीक्षरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ (सु. उ. त. 7/42)

वायु के कारण आंख विकृत हो जाती है, संकुचित हो जाती है तथा नेत्रगोलक भीतर की ओर धंस जाता है। इसमें तीव्र पीड़ा होती है, इसे गम्भीरिका कहते हैं।

यह वातिक असाध्य व्याधि है।

वाते तु सङ्कोचयति वृक्सिराः। दृडमण्डलं विशत्यन्तर्गम्भीरा दृगसौ स्मृता॥ (अ. हृ. उ. 12/12)

वायु दृष्टि की सिराओं को संकुचित करती है तथा दृष्टिमण्डल अन्दर की ओर धंस जाता है, इसे गम्भीरा दृष्टि कहते हैं।

सुश्रुत मतानुसार नक्तान्ध्य चार प्रकार का है:

- श्लेष्मविदग्ध दृष्टि
- धूमदर्शी
- ह्रस्वजाड्य
- नकुलान्ध्य

नक्तान्ध्य में प्रयुक्त विशिष्ट योग

विपाच्य गोधायकृदर्द्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना।
निषेवितं तद् यकृदञ्जने निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयखलु॥ (सु. उ. त. 17/24)

गोधा के यकृत के बीच में चीरकर, पिप्पली से भरकर मिट्टी से लेप करके अग्नि में पकाए, तत्पश्चात् इस यकृत का सेवन करें तथा इस पिप्पली का चूर्णाजंन रूप में प्रयोग करने से निश्चित ही नक्तान्ध्य नष्ट होता है।

तथा यकृतच्छागभवं हुताशेन विपाच्य सम्यङ्मगधा समन्वितम्।
प्रयोजितं पूर्ववदाश्वसंशयं जयेत्क्षपाऽऽन्ध्यं सकृदञ्जनाद्नृणाम्॥ (सु. उ. त. 17/25)

बकरी के यकृत को बीच में से चीरकर पिप्पली से भरें, तत्पश्चात् अग्नि में पाक करके, यकृत का सेवन करें तथा पिप्पली का अंजन रूप में प्रयोग करने से नक्तान्ध्य नष्ट हो जाता है।

प्लीहा यकृच्चाप्युपभीक्षते उभे प्रकल्प्य शूल्ये घृततैलसंयुते।
ते सार्षपस्नेहसमायुतेऽञ्जनं नक्तान्ध्यमाश्वेव हतः प्रयोजिते॥ (सु. उ. त. 17/26)

गोधा, बकरी के प्लीहा, यकृत को घृत और तैल से युक्तकर लौह शलाका में पिरो कर अग्नि में सेक कर भक्षण करें तथा उन्हें सरसों के तैल से पीसकर अंजन लगाना चाहिए। यह योग नक्तान्ध्य नाशक है।

बाह्य रोग

बाह्य कारण से दो प्रकार के लिङ्गनाश होते हैं; सनिमित्त और अनिमित्त।

9.1.25 सनिमित्त लिङ्गनाश

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ निमित्तत श्चाप्यनिमित्ततश्च।
निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापान्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैश्च॥ (सु. उ. त. 7/42)

सनिमित्त लिङ्गनाश सिर के अभिताप से होता है तथा इसमें अभिष्यन्द के लक्षण पाए जाते हैं।

9.1.26 अनिमित्त लिङ्गनाश

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्वराणाम्।
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्ययस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः।
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः॥ (सु. उ. त. 7/43-44)

देवता, ऋषि, गन्धर्व, बड़े सर्प को देखने से तथा प्रकाशवान पदार्थ को देखने से दृष्टि नष्ट हो जाती है, उसे अनिमित्त लिङ्गनाश कहते है। नेत्र स्पष्ट दिखाई देते है तथा दृष्टि वैदूर्यवर्ण अर्थात् प्राकृत वर्णयुक्त एवम् विमल (तिमिर, काच से रहित) होती है।

यह दोनों असाध्य रोग हैं।

आधुनिक मतानुसार इसका साम्य optic atrophy से कर सकते हैं।

Optic atrophy-The condition refers to degeneration of optic nerve. The injury to nerve fibres in any part of the course from the retina to lateral geniculate body leads to their degeneration and subsequent optic atrophy.

Primary optic atrophy-The condition implies to simple degeneration of the optic nerve fibres without any complicating process within the eye. Hydrocephalus, tabes dorsalis, compressive space occupying lesions in the brain may produce a primary optic atrophy.

Primary Optic Atrophy occurs without antecedent swelling of optic nerve head. It may be caused by lesions affecting the visual pathways at any point from the retrolaminar portion of Optic Nerve to the lateral geniculate body. Lesions anterior to the optic chiasm result in unilateral optic atrophy whereas those involving the chiasma and optic tract will cause bilateral changes. Optic nerve fibres degenerate in an orderly manner and are replaced by columns of glial cells without alteration in the architecture of the optic nerve head. In primary atrophy, the disc in grey or white. The edges are

Scanned with CamScanner

sharply defined, the stippling of lamina cribrosa is seen and the surrounding retina looks normal. Cup is normal and retinal vessels are normal.

Secondary optic atrophy-Also known as postneuritic atrophy results from injury or direct pressure affecting the visual nerve fibres in any part of course of optic nerve. In secondary optic atrophy the optic disk is waxy gray, lamina cribrosa is not seen and cup is filled. The edges are blurred, retina is unhealthy and retinal vessels are narrowed. It is preceded by long standing swelling of optic nerve head and causes include chronic papilloedema, anterior ischaemic optic neuropathy and papillitis .The surrounding retina shows pigmentary disturbances which are more common at macula.

Consecutive optic atrophy-It occurs following destruetion of ganglion cells secondary to degenerative disease of retina such as retinitis pigmentosa, pathological myopia, retinal detachment and occlusion of central retinal artery. In this case, the disc has a yellow waxy appearance, the edges are less sharply defined, vessels are markedly contracted.

औपसर्गिक लिङ्गनाश-

सहसैवाल्पसत्वस्यपश्यतो रूपमद्भूतम्॥ भास्वरं भास्करादि वा वाताद्य नयनाश्रिताः।
कुर्वन्ति तेजः संशोष्य दृष्टिं मुषितदर्शनाम्। वैदूर्यवर्णं स्तिमितां प्रकृतिस्थामिवाव्यथम्।
औपसर्गिक इत्येष लिङ्गनाशः– (अ. हृ. उ. 12/30-31)

अचानक थोड़े सत्व वाला व्यक्ति द्वारा अद्भुत चमकते हुए या सूर्यादि प्रकाशवान वस्तु को देखने से वातादि दोष नेत्र में आश्रित होकर तेज को सुखाकर दर्शन शक्ति को नष्ट कर देते हैं। दृष्टि वैदूर्य वर्ण के समान निर्मल, निश्चल, स्वाभाविक और पीड़ारहित होती है, यह औपसर्गिक लिङ्गनाश है।

9.1.27 दोषान्ध

अर्केऽस्तमस्तकन्यस्तगभस्तौ स्तम्भमागतः॥ स्थगयन्ति दृशं दोषा दोषान्धः स गदोऽपरः॥
दिवाकरकरस्पृष्टा भ्रष्टा दृष्टिपथान्मलाः॥ विलीनलीना यच्छन्ति व्यक्तमत्राह्नि दर्शनम्।
(अ. हृ. उ. 12/24-25)

सूर्यास्त के समय स्तम्भित हुए दोष दृष्टि को ढक लेते हैं। इस रोग को दोषान्ध कहते हैं। दिन में सूर्य की किरणों के स्पर्श से दोष पिघल कर लीन हो जाते हैं जिससे व्यक्ति दिन में देख सकता है।

आधुनिक मतानुसार इसे Night blindness कह सकते हैं।

9.1.28 अम्लविदग्ध दृष्टि

भृशमम्लाशनाद्दोषैः सान्नैर्या दृष्टिराचिता॥ सक्लेदकण्डूकलुषा विदग्धाऽम्लेन सा स्मृता।
(अ. हृ. उ. 12/28)

अम्ल पदार्थों के सेवन से, दृष्टि रक्त युक्त वातादि दोषों से व्याप्त होने के कारण क्लेद युक्त, कण्डू तथा मलिनता से युक्त होती है, उसको अम्लविदग्ध कहते हैं।

अम्लविदग्ध की चिकित्सा पित्तविदग्ध के समान करनी चाहिए।

9.1.29 अभिघातज लिङ्गनाश

विदीर्यते सीदति हीयते वा नृणामभीघातहता तु दृष्टिः॥ (सु. उ. त. 7/45)

अभिघात से हत हुई मनुष्य की दृष्टि विदीर्ण हो जाती है, दब जाती है अथवा बिल्कुल नष्ट हो जाती है।

9.1.30 उष्णविदग्ध दृष्टि

उष्णातप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात्। त्रिदोषरक्तसंपृक्तो यात्यूष्मोर्ध्वं ततोऽक्षिणी॥
दाहोषे मलिनं शुक्लं महन्त्याविलदर्शनम्॥ रात्रावाध्यं च जायेत विदग्धोष्णेन सा स्मृता॥
(अ. हृ. उ. 12/26-27)

उष्णता से तप्त हुए व्यक्ति का एकदम शीतल जल में प्रवेश करने से तीनों दोष रक्त से युक्त होकर, शरीर की उष्मा ऊपर जाकर नेत्र में जलन, ओष, मलिनता, दिन में धुंधला दिखाई देना तथा रात्रि में बिल्कुल न दिखाई देना लक्षण पैदा करती हैं।

9.1.31 SQUINT

A set of six extraocular muscles control the movement of each eye. The set has four rectus muscles i.e. superior rectus, inferior rectus, medial rectus and lateral rectus and two obliques, superior and inferior oblique.

The four rectus muscles have a common origin from the annulus of zinn which encloses the optic foramen. The superior and medial rectus muscles are closely adherent to the dural sheath of the optic nerve. This causes the classical pain during upward and downward movement of eyeball in retrobulbar neuritis.

All the four rectus muscles are inserted to sclera anterior to equator of globe by flat tendons about 10mm broad at differant distances from the limbus as under:

Medial rectus	:	5.5 mm
Inferior rectus	:	6.5 mm
Lateral rectus	:	6.9 mm
Superior rectus	:	7.7 mm

The superior oblique arises from the periosteum of the body of sphenoid bone just above and medial to the optic foramen. The inferior oblique arises from the orbital plate of maxilla just lateral to the orifice of the nasolacrimal duct. Both the oblique muscles are inserted behind the equator of globe.

The third cranial nerve supplies the superior, inferior and medical rectus along with the inferior oblique muscle. The fourth cranial nerve innervates the superior oblique and sixth nerve supplies the lateral rectus muscle.

Ocular Movements

Uniocular eye movements are called duction whereas binocular movements are known as versions. Duction could be inward (adduction), outward (abduction), upward (supraduction) and downward (infraduction), incycloduction (rotatory movement along the anteroposterior axis in which superior pole of the cornea moves medially), excycloduction (rotatory movement along the anteroposterior axis in which superior pole of the cornea moves laterally).

Versions could be conjugate i.e. both eyes moving together or disconjugate (The movements of two eyes in opposite directions). In these movements the muscles which contract together are called synergists ; those which suffer inhibition are called antagonists. There are two laws which govern the ocular movements:-

Hering law of equal innervation :- Equal and simultaneous innervation flows from the brain to a pair of synergistic (yoke) muscles during differant binocular movements.

Sherrington law of reciprocal innervation :- states that during ocular motility increased flow of innervation to the contracting muscles is accompanied by decreased flow of innervation to the relaxing antagonist muscle.

Scanned with CamScanner

Cardinal direction of gaze	Yoke muscle pairs
Dextroversion	Rt lateral rectus and Lt medial rectus.
Levoversion	Lt lateral rectus and Rt medial rectus
Dextroelevation	Rt superior rectus and lt inferior oblique
Levoelevation	Lt superior rectus and Rt inferior oblique
Dextrodepression	Rt inferior rectus and left superior oblique
Levodepression	Lt inferior rectus and Rt superior oblique

Strabismus (Squint)

Normally, the image of an object falls on the fovea of each eye, but in certain eyes image falls upon the fovea of one eye but not on the fovea of the other. This condition whera there is misalignment of the visual axis of the two eyes is called squint.

Classification of strabismus-

Broadly strabismus can be classified as below:

(i) Apparent squint (Pseudostrabismus)

(ii) Latent squint (Heterophoria)

(iii) Manifest squint (Heterotropia)

1. Concomitant squint 2. Incomitant squint

Pseudostrabismus-In this condition, visual axes are parallel but the eyes seem to have squint due to epicanthal fold or abnormal angle kappa. An apparent divergent squint is found in high hypermetropia as a result of positive angle kappa while a negative angle in high myopia gives an apparent convergent squint. The angle kappa is defined as the angle between the visual axis (line connecting the point of fixation, nodal point and fovea) and the pupillary axis (line passing through the center of pupil perpendicular to the cornea) The angle is positive when it is found nasally and negative when found temporally. A positive angle kappa of 5° is usually found in an emmetropic eye.

Heterophoria-(Latent squint) is a condition in which the tendency of eyes to deviate is kept latent by fusion. When the two eyes are dissociated by covering one eye, the deviation gets manifest in the covered eye. Heterophoria can be of four types esophoria, exophoria, hypophoria and cyclophoria.

Esophoria-The eyes have tendeny to converge. It may be

(i) Convergence excess type : It causes greater esophoria for near than for distance.

(ii) Divergence weakness type : It presents greater esophoria for distance than for near.

Exophoria-The eyes have a tendency to diverge. It may be

(i) Convergence weakness type : It causes exophoria for near than for distance

(ii) Divergence excess type : It presents greater exophoria for distance than for near.

Hyperphoria-The eyes have a tendency to deviate vertically resulting in vertical misalignment of the visual axes. The vertical deviations are expressed in terms of the relative position of the two eyes.

Cyclophoria-It is a torsional rotation of eyes occuring around the anteroposterior axis of the eyeball. When the 120'Clock meridian of cornea rotates nasally, it is called incyclophoria and when it rotates temporally it is called encyclophoria.

Symptoms-

- Headache, eyeache
- Blurring and running of letters while reading.
- Difficulty in changing the focus from neart to distant objects of fixation or vice versa.
- Momentary diplopia.

Diagnosis-Testing for vision. Refractive error may be responsible for deviation.

Cover uncover test-In this test, one eye is covered with an occluder and the other is made to fix an object. In the presence of heterophoria, the eye under cover will deviate. After a few seconds, the cover is quickly removed and the movement of the eye which was under cover is observed. The direction of movement of the eyeball tells the type of heterophoria e.g. the eye will move outward in the presence of esophoria.

Treatment-Generally, small degrees of esophoria or exophoria do not need any treatment. The refractive error should be properly corrected .In case of asthenopia with convergence deficiency, the amplitude of convergence can be increased by a simple exercise using a pencil. A pencil is gradually brought towards the nose until its tip is seen double. The patient is advised to look at a distant object after every 30 seconds to relax the accommodation. The exercise should be done three times a day for three weeks.

Prescription of prism in glasses-Prism is prescribed with apex towards the direction of deviation.

Concomitant squint-It is a type of manifest squint in which the amount of deviation in the squinting eye remains unaltered in all the directions of gaze and there is no limitation of ocular movements.

Etiology-

- Disturbances in muscular equilibrium.
- Defective vision in one eye such as high ametropia, opacities in the media.
- A change in the normal balance between accommodation and convergence.

Classification-Concomitant squint can be classified into three types :

a) Convergent squint (esotropia)

b) Divergent squint (exotropia)

c) Vertical squint (hypertropia)

These are further classified into many subtypes.

The measurement of angle of deviation is roughly estimated by Hirschberg corneal reflex test. A light from a torch is thrown from a distance of 33cm on the patient's eye, reflexes are normally located at the center of the cornea. When the reflex is situated at the margin of the pupil, the deviation is nearly 15°, at the limbus about 45° and midway between the pupillary margin and the limbus about 30°. The precise measurement can be done on synoptophore.

Treatment-

1. Full spectacle correction should be prescribed for regular use.
2. Occlusion therapy. It is indicated in the presence of amblyopia.
3. Orthoptic exercises.
4. Squint surgery-There are basically two surgical approaches for the correction of squint, strengthening of weak muscle by resection i.e. shortening the muscle and recession (shifting the insertion posteriorly).

Incomitant squint-It is a type of heterotropia in which the amount of deviation varies in different directions of gaze. It includes the following conditions :

(i) Paralytic squint

(ii) A and V pattern heterotropias

(iii) Restrictive squint

Scanned with CamScanner

Paralytic strabismus-It refers to ocular deviation due to complete or incomplete paralysis of one or more extraocular muscles.

A and V pattern heterotropia-The terms A or V pattern squint are labelled when the amount of deviation in squinting eye varies by more than 10° and 15° between upward and downward gaze.

A and V esotropia-In A esotropia the amount of deviation increases in upward gaze and decreases in downward gaze. The reverse occurs in V esotropia.

A nd V exotropia-In A exotropia the amount of deviation decreases in upward gaze and increases in downward gaze. The reverse occurs in V exotropia.

Restrictive squint-In restrictive squint, the extraocular muscle is not paralyzed but there is mechanical restriction of extraordinary muscle due to absent muscle, tight or fibrosed muscles e.g. dysthyroid eye disease.

9.1.32 Amblyopia

It is unilateral or bilateral partial loss of sight in the absence of any organic disease of ocular media.

Etiology

Unilateral amblyopia

- Congenital error in the visual pathway
- High refractive error
- Retrobulbar neuritis.

Bilateral amblyopia

- Toxic agents like ethyl alcohol, tobacco.
- Hysteria

Types

1. **Strabismic amblyopia** - It is the most commonest type. It results from prolonged uniocular suppression. The correction of strabismus in early childhood prevents the occurrence of amblyopia.
2. **Anisometric amblyopia** which usually occurs when the difference in refractive error of the two eyes is more than 2.5 diopters.
3. **Stimulus deprivation amblyopia (amblyopia ex anopsia)** occur in children with cataract, corneal opacity and severe ptosis. The diseased eye does not receive visual stimulus and becomes lazy.

9.2 रेटिना के रोगों का ज्ञान (Diseases of Retina)

Hypertensive Retinopathy

It refers to the fundus changes occuring in patients suffering from hypertension.

The hypertensive narrowing in its pure form can only be seen in young individuals while in older patients arteriosclerotic changes are also seen. In simple hypertension without sclerosis, as seen in young patients, the retinal signs are few : a generalized constriction of the arterioles which appear to be pale, superficial flame shaped haemorrhages, cotton wool spots and hard exudates are absent. In hypertension with involutinary sclerosis occuring in older patients changes at the arteriovenous crossings are diagnostic. These include. Salu's sign, Bonnet sign and Gunn sign i.e. tapering of veins on either side of the crossings.

Classification

Keith and Wagner in 1939 have classified hypertensive retinopathy into following four grades-

Grade I

Slight generalised arteriolar narrowing.

Grade II

- Marked generalised arteriolar narrowing
- Deflection of veins at arteriovenous crossing (Salus' sign)

Grade III

This consists of Grade II changes plus:

- Copper wiring of arterioles
- Banking of veins distal to arteriovenous crossing (Bonnet sign)
- Flame shaped haemorrhages.
- Cotton wool spots.
- Hard exudates

Grade IV (Malignant Hypertension)

- Grade III changes
- Silver wiring of arterioles
- Papilloedema

Hypertensive retinopathy may cause loss of vision due to retinal oedema and macular haemorrhage. Malignant hypertensive retinopathy may take several months to resolve.

Treatment

Taking antihypertensive drugs results in remarkable improvement of the fundus however visual recovery is not complete.

Retinopathy in Toxaemia of Pregnancy:

Pregnancy induced hypertension (PIH) occurs in the later months of pregnancy i.e. 7-9 months. It has many characteristics of hypertensive retinopathy. It is disease of unknown etiology characterized by raised blood pressure, proteinurea and generalised oedema. Retinal changes occur if blood pressure rises above 160/100 mm of Hg and are marked when blood pressure rises above 200/130 mm of Hg.

There are three stages:

1. Stage of angiospasm

- Narrowing of retinal arteries
- Spasmodic contraction of arteries.

2. Stage of sclerosis of vessels

- Superficial haemorrhages
- Cotton wool spots

3. Stage of retinopathy

- Deep haemorrhages
- Retinal oedema
- Profuse exudation

Complications

- Loss of vision
- Loss of life of the mother and foetus

Treatment

Changes of retinopathy are reversible and disappear after the delivery, unless organic vascular disease is established.

- Control of high blood pressure
- Adequate antenatal care.
- Timely induction of labour
- Termination of pregnancy in case of severe case not responding to treatment.

Diabetic Retinopathy

It is major cause of blindness in elderly subjects and develops frequently in long standing cases of DM especially of more than 10 years duration. It refers to the retinal changes seen in patients with diabetes mellitus.

Scanned with CamScanner

Predisposing factors

1. **Duration of Diabetes:** It is most important determining factor. Approximately 50% of diabetic patients develop retinopathy after 10 years and about 80% after 15 years. It is seen much more in insulin dependent diabetes.
2. **Heredity:** Diabetes is transmitted as a recessive trait. The effect of heredity is more marked in the proliferative retinopathy.
3. **Sex:** Incidence is more in females.
4. **Severity of diabetic retinopathy** is usually related to duration of the disease and adequacy of blood sugar control.
5. **Pregnancy/Hypertension:** They may acclerate the changes of diabetic retinopathy.

Pathogenesis of Diabetes Mellitus.

The retina is protected from blood borne products by the inner blood retinal barrier which is formed by the intra-retinal microvasculature and by the outer blood retinal barrier formed from the retinal pigmental epithelium. The capillary endothelium and the retinal pigmental epithelium are both characterised by tight junctions between adjacent cells which effectively limit the pasage of solutes, proteins and fluids from the choroidal and intra retinal blood supplies.

During DR, the inner blood retinal barrier can become compromised and the blood components may leak into the retinal neuropile, observable on fundus imaging. Breakdown of blood retinal barrier in diabetes can lead to diabetic macular oedema which is the commonest cause of blindness in diabetes.

DR is the result of microvascular retinal changes. Hyperglycemia induces thickening of the basement membrane which leads to incompetence of the vascular walls. These damages changes the formation of the blood retinal barrier and also make the retinal blood vessels become more permeable. The lack of oxygen in the retina causes fragile new blood vessels in the retina which bleed easily. Fibrovascular proliferation can also cause tractional retinal detachment The new blood vessels can also grow into the angle of anterior chamber of the eye and cause neovascular glaucoma.

Classification : DR is conventionally divided into two broad categories 1. NPDR 2. PDR

Presently followed classification is as follows:

1. Non proliferative diabetic retinopathy (NPDR)
   - Very mild NPDR
   - Mild NPDR
   - Moderate NPDR
   - Severe NPDR
   - Very severe NPDR
2. Diabetic maculopathy
3. Proliferative diabetic retinopathy
4. Advanced diabetic eye diseases (ADED)

Non-proliferative diabetic retinopathy (NPDR)

It is the most common type of diabetic retinopathy. The earliest sign of NPDR is a capillary microaneurysm.

Ophthalmoscopic features are:

- Retinal haemorrhages
- Cotton wool spots
- Hard exudates
- Retinal oedema

- Microaneurysm
- Venous abnormalities i.e. looping, beading & dilatation
- Intraretinal microvascular abnormalities (IRMA)

Very mild NPDR

Few microaneurysms

Mild NPDR

Above finding plus :

- Retinal haemorrhages
- Hard exudates in one or two quadrants

Moderate NPDR

- Above findings seen in two or three quadrants.

Severe NPDR

Above findings seen in all four quadrants and at least one of following signs:

- Cotton wool spots
- Venous beading > 2 quadrants
- IRMA > one quadrant

Very severe NPDR

- Same as above and at least 2 or 3 plus signs of severe NPDR are present.

Diabetic maculopathy

Changes in macula may be associated with NPDR or PDR. Involvement of fovea by oedema or hard exudates is the most common cause of visual impairment in diabetic patients. It is of three types: focal, diffuse and ischaemic.

(1) **Focal maculopathy:** It is characterised by:
- Microaneurysms
- Haemorrhages
- Macular oedema
- Hard exudates

(2) **Diffuse exudative maculopathy:** It is characterised by:
- Diffuse retinal oedema.
- Thickening of posterior pole

(3) **Ischaemic maculopathy:** It is characterised by :
- Marked visual loss with microaneurysms
- Haemorrhages
- Few hard exudates

Proliferative diabetic retinopathy (PDR)

It develops in more than 50% of cases after about 25 years of onset of disease. Proliferative changes are a response to the release of vascular endothelial growth factor (VEGF) from ischaemic retina. Neovascularization is the hallmark of PDR.

Features are:

- Neovascularization on optic nerve head and along the major temporal retinal vessels.
- Formation of irregular fibrovascular membrane on the surface of retina and in the vitreous.
- Contraction of these bands may lead to tractional retinal detachment and blindness.

4. Advanced diabetic eye disease

It is end result of uncontrolled proliferative diabetic retinopathy. It is marked by complications such as vitreous haemorrhage, retinal detachment and neovascular glaucoma.

Treatment

1. Antidiabetic drugs reduce severity of changes of retinopathy.
2. **Photocoagulation:** Photocoagulation by argon, diode or krypton laser is used as follows:

Scanned with CamScanner

(i) **Panretinal photocoagulation (PRP) or Scatter laser:** It is indicated in severe cases of proliferative diabetic retinopathy. It consists of applying 1200-1600 spots, each 500 µm: in size and 0.1 second duration from the centre of fovea extending peripherally to the equator. It causes the destruction of ischaemic retina.

(ii) **Focal argon laser burns:** They are applied to individual microvascular formations in the centre of hard exudate ring in focal exudative maculopathy.

Surgical Treatment: Vitrectomy is indicated in vitreous haemorrhage and retinal detachment.

Senile Macular Degeneration or Age Related Macular Degeneration (ARMD)

It is major cause of blindness above the age of 50 years. It is an age related, bilateral and non-hereditary degeneration. It involves the choriocapillaries, Bruch's membrane, retinal pigment epithelium and photoreceptors.

Besides advanced age, family history female gender, hypertension, malnutrition, cigarette smoking, exposure to sunlight and cardiovascular disease are considered as risk factors. It is one of the leading causes of blindness in the world.

Types: It is classified into two types:

(i) Exudative (Wet) (ii) Non-exudative (Dry)

Exudative ARMD: It is responsible for only 10% cases of ARMD but is associated with rapidly progressive marked loss of vision.

Symptoms

- Sudden diminution of vision
- Drusens are small, yellowish deposits on Bruch's membrane derived from metabolic products of the visual receptors and retinal pigment epithelium deposited as mucopolysaccharides and lipids on Bruch's membrance. Drusens may be designated as small (less than 64 microns in diametre) intermediate (64 to 124 microns in diametre) and large (more than 124 microns in diametre) Intermediate and large drusen are pathognomonic of dry AMD.
- Retinal pigment epithelium detachment
- Subretinal neovascularization
- Metamorphopsia.
- Choroidal neovascularization
- Positive scotoma.

Non exudative ARMD: It is also called geographical ARMD and is responsible for 90% cases.

Symptoms

- Gradual loss of vision
- Pigment clumping
- Pigment atrophy in posterior pole
- Central black spots
- Multiple drusen

Treatment

There is no effective treatment for non-exudative ARMD.

-Antioxidant, vitamins and zinc supplements.

-Laser photocoagulation is effective in bleeding subretinal vessels. It may prevent further loss.

Laser photocoagulation is indicated in patients with exudative ARMD.

Retinitis Pigmentosa

A degeneration of retina, characterized by loss of visual receptors rods and cones. The disorder is inherited as an autosomal recessive trait.

It is usually accompanied by focal proliferations of adjacent retinal pigment epithelium and migrations of such cells into sensory retina, where they appear as pigmented interstitial cells (pigmentary retinopathy). It is bilateral, progressive and hereditary. Most patients have no other systemic disease (non syndromatic RP). In others there are others manifestations (syndromic RP) such as deafness (usher syndrome) or obesity, short stature, hypogonadism and polydactyly (Bardet Biedl syndrome).

Clinical Features

- Defective vision in twilight or night blindness
- Ophthalmoscopic findings are small jet black pigments resembling bone spicules with spidery outline appear in the entire retina.
- Retinal arterioles are attenuated
- Optic disk becomes pale and waxy

Complications

- Optic atrophy
- Complicated cataract.

Treatment

- It is unsatisfactory
- Low vision aids in the form of magnifying glasses.
- Genetic counselling is advised. There should be no consanguinous marriages.
- Laser prevents progression of disease.

Retinal Artery Occlusion (RAO)

It is an ocular emergency. There is obstruction to the arterial circulation of the retina.

Etiology

- Thrombosis or embolus the common site of orgin of embolus is from common carotid artery in the neck, aorta or endocardium of the heart.
- It commonly occurs in cases of hypertension, arteriosclerosis or Buerger's disease.
- Spasm of vessels as seen in toxaemia of pregnancy and quinine toxicity.
- Raised IOP may be associated e.g. acute angle pressure glaucoma.

Types

Central Retinal Artery Occlusion (CRAO)

Occurs at lamina cribrosa and thus entire retina is affected.

Branch Retinal Artery Occlusion (BRAO)

In this case, branch of retinal artery is obstructed. The retina distal to occlusion becomes oedematous with narrowed arterioles. The most common site of obstruction of branch retinal artery is superotemporal.

Symptoms

- Sudden, complete painless loss of vision in CRAO and permanent sectorial visual field defect in BRAO.

Signs

- Direct pupillary reflex is absent
- Retina becomes milky white due to oedema.
- Cherry red spot is seen at fovea due to vascular choroid shining through this thin retina.
- The columns of venous blood may break into red beads which move to and fro (cattle track appearance) by gentle pressure on the eye-ball.

Scanned with CamScanner

- **In some cases, despite obstruction of the central retinal artery, some degree of central vision is retained due to presence of cilioretinal artery which supplies the macular region.**

Treatment

Prompt treatment is essential as anoxic retina is irreversibly damaged in about 90 minutes.

(i) Digital ocular massage with the aim of dislodging the embolus to a peripheral vessel in the retina.

(ii) Vasodilators e.g. amyl nitrate inhalation.

(iii) Inhalation of mixture of 95% oxygen and 5% carbon dioxide.

(iv) Lowering the intraocular pressure by giving intravenous acetazolamide.

Retinal Vein Occlusion

It is more common than artery occlusion and occurs due to obstruction to the venous circulation of the retina due to thrombosis or embolus.

Etiology

- Pressure on vein by sclerotic retinal artery where two share common adventitia i.e. just behind lamina cribrosa.
- Raised intraocular pressure
- Hyperviscosity of blood

Classification

(i) Central retinal vein occlusion (CRVO): It may be non-ischaemic or ischaemic stasis.

(ii) Branch retinal vein occlusion (BRVO)

Non ischaemic CRVO (Venous stasis retinopathy)

It is most common clinical variety. It is characterised by:

- Mild visual loss
- Few superficial flame shaped haemorrhages
- Mild papilloedema
- Sheathing around main veins.

Treatment: Not required. The condition resolves in about 50% of cases. However, course of oral steroids for 10-12 weeks is effective.

Ischaemic CRVO (Haemorrhagic retinopathy)

There is complete occlusion of central retinal vein. It is characterised by:

- Marked visual loss
- Congestion and tortuosity of retinal veins.
- Massive retinal haemorrhages (Tomato splash appearance)
- Numerous soft exudates
- Disc is oedematous and hyperaemic
- Sheathing around the veins in the late stages
- Neovascularization of retina.
- Relative afferent pupillary defect in the defected eye.

Branch retinal vein occlusion (BRVO)

It is more common than the central vein occlusion. The superior temporal vein is the most commonly affected. In branch vein occlusion, oedema and haemorrhages are limited to the area drained by the affected vein. Vision is affected when the macular area is involved.

Treatment

There is no specific treatment for an ischaemic central vein occlusion. Pan retinal photocoagulation may prevent neovascularization. Grid laser photocoagulation is recommended in macular oedema in central retinal vein occlusion.

Retinal Detachment

It is separation of neurosensory retina proper from the pigment epithelium.

Classification

1. Primary or simple (rhegmatogenous) detachment.
2. Secondary (non rhegmatogenous) detachment.

Rhegmatogenous RD: It is usually due to break in the retina in the form of hole or tear, which allows the fluid from the vitreous to seep through and raise the retina from its bed.

Etiology - It is still not clear. The predisposing factors are :

- Direct trauma
- Myopic patients have liquified vitreous, hence they are predisposed to develop RD.
- It is more common in patients with primary open angle glaucoma and aphakia.
- Retinal degenerations.

Symptoms

- Sudden painless loss of vision. (when the detachment is large and central)
- Black spots in the front of eyes.
- Photopsia (flashes of light in the front of eyes).

Signs

- External examination of eye is normal.
- Detached retina shows grey reflex and is raised above the surface.
- Detached retina is thrown into multiple folds which oscillate with the movement of eye.
- One or more holes commonly in the upper temporal region.
- Retinal vessels are dark with no central light reflex.

Treatment

- Drainage of sub-retinal fluid
- Sealing of retinal breaks with cryocoagulation, photocoagulation or diathermy.

Non-rhegmatogenous Retinal detachment

It is always secondary to the ocular disease.

Non rhegmatogenous retinal detachment is classified into two types

1. Exudative retinal detachment
2. Tractional retinal detachment

Exudative Retinal Detachment

In this type, retina is pushed away due to neoplasm or fluid beneath the retina.

Inflammatory or neoplastic lesions like retinoblastoma are etiological factors of exudative retinal detachment.

Etiology.

- Toxaemia of pregnancy, renal hypertension.
- Accumulation of fluid e.g. blood or exudate.
- Neoplasms, inflammation of choroid.
- Blood dyscrasias.

Clinical features

- Photopsia is absent
- Absence of retinal break
- Diminution of vision

Tractional Retinal Detachment

It occurs due to contraction of the membrane in the vitreous that pulls away the sensory retina from the retinal pigment epithelium.

Scanned with CamScanner

Etiology

- Proliferative diabetic retinopathy
- Eale's disease
- Trauma
- Retinopathy of prematurity

Clinical Features

- Presence of vitreoretinal bands
- Retinal breaks are absent
- Detached retina assumes a concave configuration.

Treatment

Exudative retinal detachment may undergo spontaneous regression following absorption of the fluid. Enucleation is done in case of intraocular tumour.

- Tractional retinal detachment requires pars plana vitrectomy.

Optic Neuritis: It is inflammation of optic nerve. Clinically, it is characterized into three groups papillitis, retrobulbar neuritis and neuroretinitis.

Etiology

1. Demyelinating disease is the most common cause e.g. multiple sclerosis.
2. Viral infections: mumps, measles, poliomyelitis etc.
3. Systemic granulomatous inflammation such as tuberculosis.
4. Toxic
5. Idiopathic
6. Autoimmune vascular disorders such as SLE.

Papillitis is an inflammation of the intraocular part of the optic nerve.

Clinical features

1. Loss of vision
2. Pupillary light reflex is sluggish
3. The disk is hyperemic and swollen with blurred margins.
4. The veins are dilated and tortuous.
5. Central or centrocecal scotoma is a common visual field defect.
6. Impairment of colour vision.
7. Haemorrhages and exudates appear upon the disk.

Retrobulbar Neuritis: It is an inflammation of the retrobulbar part of the optic nerve.

Clinical features

The disease is usually unilateral and is marked with sudden and profound loss of vision.

- Ocular movements are painful
- Marcus-Gunn pupil i.e. pupil dilates on showing light.

3. Depression of light brightness
4. The depth perception particularly for moving objects is impaired (Pulfrich's phenomenon).

Neuroretinitis

Papillitis associated with retinitis is called neuroretinitis. It occurs in children and is more often bilateral. It presents features of papillitis associated with a macular star with multiple exudates.

Treatment of optic neuritis

1. Systemic administration of corticosteroids.

अध्याय-10

अंधता निवारण प्रभृति

10.1 परावर्तन जन्य विकार

The normal eye, known as an emmetropic eye, can sufficiently refract light rays from an object 6 m (20 ft) away to focus clear image on the retina. Many people, however, lack this ability because of improper refraction. Among these abnormalities are:

- Myopia
- Hypermetropia
- Astigmatism

Emmetropia: It is condition in which parallel rays of light from infinity come to focus on the retina with accommodation at rest. The average power of a normal emmetropic eye is +58 to 60 D.

Errors of Refraction (Ametropia): It is condition in which parallel rays of light do not come to focus upon retina, with accommodation at rest.

Etiology and Types

1. **Axial ametropia:** There is abnormal length of the eye-ball.
   Myopia-Too long Hypermetropia-Too short
2. **Curvature ametropia:** There is abnormal curvature of the refracting surfaces of the cornea or lens.
   Myopia - Increased curvature Hypermetropia - Flatter than the normal
3. **Index ametropia:** There is abnormal refractive index of the media.
   Myopia - Too high Hypermetropia - Too low
4. **Abnormal position of the lens.**
   Myopia - Forward displacement Hypermetropia - Backward displacement

Myopia

Also known as short sightedness : is the dioptric condition of the eye in which the accommodation at rest, incident parallel rays of light come to a focus anterior to light sensitive layer of retina. At birth, eyes are small and hypermetropic but as growth proceeds they increase in size and become emmetropic. If the lengthening of the eye-ball continues, myopia occurs.

Scanned with CamScanner

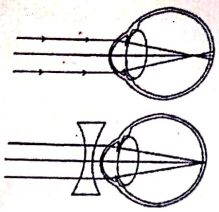

Types

Congenital (Developmental) Myopia: It is rare and is present at birth. It is usually stationary. Usually the error is about 8 to 10 dioptres. Bilateral myopia may be associated with convergent squint.

Simple myopia: It is the most common type of myopia. There are no degenerative changes in fundus and it does not progress after adolescence and seldom exceeds 5 to 6 D.

Pathological Myopia: It is degenerative and progressive myopia which manifests in early childhood. The refractive error rapidly increases during the period of active growth and may reach 20 to 30 D by the age of 25 years. The condition has a strong hereditary tendency and is more common in women than in men. It is associated with excessive accommodation.

Symptoms

1. Indistinct distant vision is the most common symptom.
2. Black spots are seen floating before the eyes.
3. Flashes of light may be seen
4. Headache and eye-strain may occur due to problem of convergence.

Signs

1. Large myopic disc with temporal crescent.
2. Degenerative changes in the retina and choroid.
3. Chorioretinal atrophic patches at the posterior pole.
4. In very high degree of myopia, the posterior pole of the eye-ball may herniate backwards producing a posterior staphyloma.
5. Eyes are often prominent with dilated pupil.

Complications

- Retinal haemorrhages
- Retinal detachment
- Degenerative changes in the vitreous
- Complicated cataract.

Treatment

1. Prescription of suitable spherical concave lenses.
2. Care should be taken to read in good illumination and at proper distance (25 cm).
3. Operative.

Radial keratotomy: Multiple peripheral cuts are made in cornea in order to flatten the increased curvature of the cornea. This is obsolete now.

Excimer laser: It shapes and flattens the central part of cornea.

Epikeratophakia: It is procedure in which lenticule of donor tissue is used to alter the surface topography of the cornea.

Hypermetropia (Hyperopia): Also known as long sightedness; is the refractive state of the eye wherein parallel rays of light coming from infinity are focussed behind the retina with accommodation being at rest.

hypermetropic eye

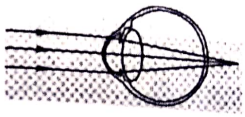

corrected with lens

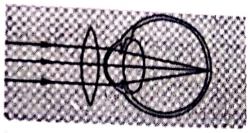

Types

1. **Latent hypermetropia:** It is overcome by the normal tone of ciliary muscle and detected only when the ciliary muscle is paralyzed with atropine.
2. **Manifest hypermetropia:** It is detected without paralysing the ciliary muscle.
   (i) **Facultative** can be corrected by the patient's accommodative effort.
   (ii) **Absolute** which cannot be corrected by patient's accommodative effort.

Symptoms

1. **If hypermetropia** is low, there is no visual symptom as the error is corrected by the tone of ciliary muscle.
2. **Asthenopic symptoms:** They are result of sustained accommodative effort of the patient. These include:
   - Heaviness of lids
   - Fronto-temporal headache
   - Mild photophobia
   - Dull pain in the eye
   - Lacrimation

Scanned with CamScanner

3. Blurring of vision for near work.
4. In high hypermetropia, patient complains of dimness of vision both for near and distant objects.

Signs

1. Size of eye-ball is smaller
2. Anterior chamber is shallow
3. Fundus examination

Pseudopapillitis: Hyperaemic disc with blurred margins.

4. The retina may shine as a whole (Shot silk appearance) due to greater brilliance of light reflections.

Complications

1. Recurrent styes, chalazia and blepharitis
2. Accommodative convergent squint may develop.

Treatment

Prescribing suitable spherical convex lenses.

Astigmatism

It is type of refractive error in which parallel rays of light from infinity cannot converge to a point focus. Refraction differs in different meridians of the eye.

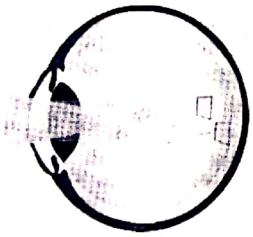

Etiology

1. Variation in the curvature of cornea, lens or both in different meridians.
2. Partial dislocation of the lens.

Types

1. Regular Astigmatism. 2. Irregular Astigmatism.

Regular Astigmatism

The astigmatism is regular when the refractive power changes uniformly from one meridian to another.

Types of Regular Astigmatism 161

1. **With the rule astigmatism:** In this type two principal meridia are placed at right angles to one another but vertical is more curved than the horizontal meridian.
2. **Against the rule astigmatism:** Here the horizontal meridian is more curved.
3. **Oblique astigmatism:** Two principal meridian are not horizontal and vertical though these are at right angles to one another (e.g. 45° and 135°).
4. **Bioblique astigmatism:** In this type; two principal meridian are not at right angle to each other.

Refractive types of Regular astigmatism

1. **Simple astigmatism:** Here one meridian is emmetropic while the other is myopic or hypermetropic.
2. **Compound astigmatism:** When both meridians are either myopic or hypermetropic.
3. **Mixed astigmatism:** When one meridian is myopic and other is hypermetropic.

Irregular Astigmatism: It is characterized by an irregular change of refractive power in different meridia.

Symptoms

1. Defective vision 2. Blurring of objects 3. Asthenopic symptoms

Treatment

1. Prescribing the appropriate cylindrical lens.

10.2 Care of the eyes

For good eye care, the following points should be kept in mind.

1. **Healthy eating** - Eat foods rich in vitamin A, C and E. Eat lots of green leafy vegetables. Lentils, eggs, peanuts, corn oil are good for the eyes.

   Avoid red meat, saturated fat and foods rich in high sugar content.

   Drinking plenty of water helps to keep eyes fresh.
2. **Eye exercises** - Blink your eyes several times. Roll eyeballs clockwise and anticlockwise and take a deep breath.
3. **Do not rub your eyes** - If there is foreign body sensation, do not rub rather splash fresh water several times to wash out dirt and secretions from the conjunctival sac.
4. **Clean your eyes** - Water is the best means to cleanse eyes.
5. **Protect your eyes from the sun.** Wear sunglasses when out in the bright sun.
6. **Maintain proper reading distance**

   Do not read in poor light or very closely.

   Read in a good posture

   Hold the book at least 40 cm away.
7. **Give your eyes adequate rest.** Good sleep of 7 to 8 hours provides relaxation required for healthy eyes.

Scanned with CamScanner

8. **Regular eye check up** - Periodical eye check up is must. It can correct error of refraction which causes eye strain and headache.
9. **Using computers**
   Decrease brightness of the monitor
   Don't Look continuously towards the screen
   Try to blink 12 to 15 times every minute
10. **Contact lens users**
    Rinse properly while taking out or putting them in their cases.
    Select top quality lenses.
11. Rub your palms against each other till they become warm.
    Cover the eyes with warm palms for about a minute.
    Palming soothens your eye.
12. Massage the area around the eyes in circular movement to increase the blood circulation in that area.
13. Do not read in the moving vehicle.

नेत्र स्वास्थ्य रक्षा के उपाय

ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आलोचिक पित्त का स्थान से यह चक्षु व बुद्धि दोनों प्रकार के ज्ञान का आयतन है। इसकी रक्षा में विशेष तत्पर रहना परमावश्यक है।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्। (अ.हृ.सू. 2/4)

वाग्भट ने सूत्र स्थान में दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहा है कि नेत्रों की रक्षा के लिए प्रतिदिन सौवीरांजन डालना चाहिए।

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मणो भयम् योजयेत्सप्तरात्रेऽस्मात्स्रावणार्थे रसाञ्जनम्॥

(अ.हृ.सू. 2/5)

नेत्र तेजोमय है तथा आलोचक पित्त का स्थान है। इसको कफ का सदैव भय है। इसलिए सात-सात रात्रि के बाद कफ स्रवण हेतु रसांजन का प्रयोग करना चाहिए।

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा। दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥

(अ.हृ.सू. 2/8)

अभ्यंग का नित्य प्रयोग करें क्योंकि यह जरा, श्रम व वात नाशक, दृष्टिप्रसादक, आयुपोषक, निद्राकर एवं वाणी को दृढ़ता देने वाला होता है।

शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्॥ (अ.हृ.सू. 2/8)

सिर पर, कानों में और पांवों के तलवों में तैल का विशेष प्रयोग करना चाहिए।

उष्णाम्बुनाऽधः कायस्य परिषेको बलावहः। तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहत्केशचक्षुषाम्॥

गर्म जल से शिर स्नान करने से बालों और आंखों का बल नष्ट होता है। गर्म पानी से शरीर के निचले भाग का परिषेक करना बलदायक है।

सर्वथेक्षेत् नादित्यं न भारं शिरसां वहेत्॥ नेक्षेत प्रततं सूक्ष्मवीप्तामेध्याप्रियाणि च॥

(अ.हृ.सू. 2/37)

सूर्य और सूक्ष्म वस्तुओं को तथा सिर से भार ढोना नेत्रों के लिए हानिकारक है।

तत्र यः स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां च बलजननार्थं
वृष्टिप्रसादजनार्थं वा स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्य शब्दः। (सू.चि. 40/22)

स्नेहन नस्य का प्रयोग नेत्रों को निर्मलता प्रदान करता है।

जो नस्य शिरशून्यताहर, ग्रीवा, स्कंध एवं वक्ष को बल देने वाला, दृष्टि को बल देने वाला होता है उसे स्नेहन नस्य कहा गया है।

पादप्रक्षालनं पादमलरोग श्रमापहम्। चक्षुः प्रसादनं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्धनम्।

(सु.चि. 24/69)

नेत्र रक्षा के लिए सुश्रुत ने पादप्रक्षालन, पाद अभ्यंग तथा पैरों में जूते धारण करने का महत्व बताया है। पैर धोने से पैर के मल, रोग तथा थकावट दूर होती है। नेत्रों को निर्मल बनाता है, बल प्रदान करता है तथा राक्षसों का नाश और प्रसन्नता को पैदा करता है।

निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः श्रमसुप्तिनुत्॥ पादत्वङ्मृदुकारी च पादाभ्यङ्ग सदा हितः।

(सु.चि. 24/70)

पादाभ्यंग निद्राकर, देहसुखकर, थकावट व सुन्नता दूर करने वाला तथा पाद त्वचा को मृदु बनाने वाला तथा सदा हितकारी होता है।

पादरोगहरं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्धनम्॥ सुखप्रचारमोजस्यं सदा पादत्रधारणम्।
आनारोग्यमनायुष्यं चक्षुषोरूपघातकृत्॥ पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चङ्क्रमणं नृणाम्।

(सु.चि. 24/71-72)

पैरों में जूते धारण करना पाद रोगहर हैं, बलप्रद है, राक्षसों का नाशक है, प्रीति बढ़ाता है, सुख व ओजवर्धक है। बिना जूतों के भ्रमण करना रोग व अल्पायु का कारण है व नेत्र ज्योति नाशक है।

10.3 Common surgical / parasurgical procedures in ophthalmology

(Anaesthesia methods for Eye)

1. **Facial nerve block**
   (a) 0' Briens' method - 5 cc of anaesthetic is injected on the neck of mandible just below the condyle. The facial nerve is paralysed so that patient is unable to close the lids due to paralysis of orbicularis oculi muscle.
   (b) Van lints method - local anaesthetic is injected near the outer canthus of the eye.
2. **Ciliary block by retrobulbar injection**
   1-2 cc of anaesthesia is injected into neighbourhood of ciliary ganglion behind the eye-ball. It causes anaesthesia of deeper structures like iris and lowers the intraocular pressure.

Scanned with CamScanner

3. **Retrobulbar block:** It is administered by injecting 2 ml of anaesthetic solution with or without adrenaline into the muscle cone behind the eye-ball. The needle is inserted through the inferior fornix or skin of outer part of lower lid with the eye in primary gaze. The needle is first directed straight backwards, then slightly upwards and inwards towards the apex of orbit upto depth of 2.5 to 3 cm.

4. **Peribulbar anaesthesia** - It is much safer alternative method. The patient looks up straight at the ceiling and 5 ml of anaesthetic is injected from the lateral part of lower lid.

Evisceration

Indications:

- Bleeding anterior staphyloma
- Panophthalmitis (inflammation of whole eye-ball).
- Penetrating injury of the globe.

Skin of lids is sterilised with savlon lotion and lids are separated with universal eye speculum. A circumcorneal incision is made in bulbar conjunctiva all round the limbus. The conjunctiva is separated from the globe upto the fornices. A circular incision is made in limbus and whole cornea is removed. An evisceration scoop is introduced within the eye-ball and its contents are scooped out. Using curved scissors, the sclera is excised leaving behind only a 3 mm frill around the optic nerve.

10.4 राष्ट्रीय अन्धत्व निवारण कार्यक्रम

(National Programme for control of blindness)

NPCB :-

Poor vision and blindness increases the liability not only for that individual and the family but also for the nation as a whole. Every country dedicates a budget to control and eradicate blindness. In most cases, some vision can be restored with glasses & minimal medication & nutrition. World sight day is observed globally on oct 9th

Approximately, 314 million people suffer serious visual impairment. Of these, 45 million people are blind and 124 million have low vision. Yet, 75 per cent of blindness is preventable. It is important for everyone to have regular eye examination.

Patients with systemic illness like diabetes should be aware about eye problems associated with it. One should be aware about the age-related macular degenerations, cataract and glaucoma. People with family history of eye problems should have routine eye check up.

Without proper intervention, the number of people who are blind is likely to increase to 75 million by 2020 as per WHO.

Generally, blindness implies inability to perceive light. Blindness is defined as visual acuity of less than 3/60 or corresponding visual field loss in better eye with the best possible correction. This corresponds to loss of walk-about vision. Low vision corresponds to visual acuity of less than 6/18 in the better eye with best possible visual correction. Blindness can occur due to infections, non communicable diseases and penetrating injuries in the eye. Depending on the cause, upto 80% of blindness and serious visual field loss could be avoided. The main causes of avoidable blindness and serious visual impairment include trachoma, cataract and glaucoma. Cataract which refers to

clouding of crystalline lens is major cause of global blindness. Today an estimated about 20 million are blind from this condition. The national programme for control of Blindness was launched in year 1976 as a 100% centrally sponsored programme and incorporates the earlier trachoma control programme started in the year 1968. The strategy of the programme is as follows:

1. Strengthening service delivery
2. Developing human resources for eye care
3. Promoting public awareness and out reach facilities
4. Developing institutional capacity
5. To establish eye care facilities for every 5 lac persons.

In response to global need, WHO, Geneva, Switzerland, with the International Agency for the prevention of blindness (IAPB), London, a partnership of eye care organization, launched the vision-2020; The RIGHT to SIGHT Vision 2020- The Right to sight, A Global Initiative for the elimination of avoidable Blindness. Vision 2020 is based on the concept of broad coalition of all international and private organizations, which collaborate with WHO in the prevention of blindness. Vision 2020 will fight avoidable blindness through:

- Disease prevention and control
- Training of personnel
- Strengthening of existing eye-care infra-structure
- Use of appropriate technology
- Mobilization of resources
- To raise awareness among people and government about blindness.

At the apex, a national Institute of Ophthalmology (Dr. Rajendra Prasad Centre for Ophthalmic Sciences, AIIMS, New Delhi) has been established for training personnels, research and referral services. The mobile eye units are being promoted to arrange eye-camps for providing eye facilities especially in the remote areas. The establishment of eye banks is of great value in corneal grafting.

Plan of Action

- Extension of eye care services by eye camp approach.
- Establishment of peripheral sector for primary eye care i.e. posting a paramedical ophthalmic assistant at rural hospitals and organising refresher courses for doctors and other staff.
- Establishment of intermediate sector for secondary eye care. It includes treatment facilities at district and subdivisional levels.
- Mobile ophthalmic units.
- Organization of eye camps.
- Central (Tertiary) centre includes establishments of medical colleges, state eye hospitals.

Causes of blindness in India

1. Cataract 81 %
2. Refractive errors 7 %

Scanned with CamScanner

3.	Corneal opacity	3 %
4.	Glaucoma	2 %
5.	Nutritional deficiency	0.04%
6.	Trachoma	0.02%
7.	Others	7%

According to WHO estimates in 2002, the most common causes of blindness around the world are :

- Cataract 47.8%
- Glaucoma 12.3%
- Uveitis 10.2%
- Age related macular degeneration (ARMD) 8.7%
- Trachoma 3.6%
- Corneal opacity 5.1 %
- Diabetic Retinopathy 4.8%

Vision 2020 has targeted the following 5 avoidable eye disease;

1. Cataract 2. Trachoma 3. Onchocerciasis
4. Childhood blindness 5. Refractive errors

Control

1. Cataract surgeries should be increased.
2. There is need to correct refractive errors by prescribing spectacles.
3. The number of ophthalmic assistants should be strengthened.
4. Infrastructure and support for primary eye care.

Programmes

Trachoma Control Programme was launched in 1963 and was merged with NPCB in 1976.

Objectives

- Early diagnosis and treatment of trachoma.
- Mass campaigns with topical tetracycline.
- Improvement of ocular hygiene.

World Bank assisted Cataract Blindness control Project: It was launched is 1994 to reduce cataract in 7 states which in order of decreasing frequency are Uttar Pradesh, Tamil Nadu, Madhya Pradesh, Maharashtra, Andhra Pradesh, Rajasthan and Orissa.

Occupational eye-health services

objectives

Prevention and treating eye hazards in industries.

- Use of protective devices in industries and other occupations which can cause eye injury.
- Education on prevention of occupational eye hazards.

School eye health services: It includes early detection and treatment of refractive errors and eye infections.

Children should be examined before they enter school so that there are no undetected vision problems that might affect learning.

Vitamins A prophylaxis programme: was launched In 1970 and at present comes under NPCB. It aims at providing 2 lakh 1. U. of vitamin A orally between the age of 1-6 years.

Blindness can be prevented by :

(i) Eye health education through mass communication media.
(ii) Improving the nutrition and preventing vitamin A deficiency.
(iii) Training and rehabilitation of the visually handicapped.
(iv) Improving the safety conditions on roads, factories and home.
(v) Treating and controlling the organisms which cause the ocular infections.
(vi) Regular eye check up.
(vii) Timely and proper interventions in the eye problems.

10.5 नयनाभिघात Ocular Injuries

Ocular injury is an emergency and requires immediate medical or surgical intervention.

Classification

1. Mechanical injuries
   a. Perforating injuries b. Retained extraocular foreign body
   c. Contusional injuries
2. Chemical injuries
   a. Alkali burn b. Acid burn
3. Injuries due to physical agent
   a. Radiational b. Thermal c. Electrical
4. Indirect ocular trauma

Extraocular foreign bodies

Foreign body, a small particle of coal, dust, steel, glass, wings of insect and husk of seeds may be retained either in the sulcus subtarsalis or the cornea.

Symptoms-

- Discomfort • Profuse watering • Redness • Reflex blinking

Treatment

- Do not rub the eye as it may penetrate into deeper tissues.
- If in the conjunctiva, it is picked by a needle after application of the local anaesthetic.
- If in the cornea, it is gently scrapped off with the foreign body spud with its blunt end.
- After removal, pad and bandage with antibiotic eye ointment is applied for one day.

Scanned with CamScanner

Chemical injuries

- *Hot water, steam, molten metals can cause burn injuries. Poisonous gases such as mustard gas, lacrimator gas etc. may cause injury to the eye.*

Signs and Symptoms

- *Redness of the eye* • *Swelling of lids* • Photophobia
- *Lacrimation* • *Congestion of vessels.*

Complications

- *Symblepharon i.e. adhesion of the lid to the globe due to conjunctival ulceration.*
- *Corneal ulcer.*

Treatment

- Wash the eye thoroughly with plenty of cold water. Acids can be neutralized with weak alkalies e.g. soda bicarbonate solution. Alkalies can be neutralized with weak acids e.g. boric acid.
- If there is corneal erosion, treat it like a corneal ulcer.

Blunt injury

It may vary from simple corneal abrasion to an extensive rupture of the globe. They are caused by blunt objects such as a blow by the tennis ball.

Cornea

1. Abrasions of the cornea.
2. Blood staining of the cornea is due to associated haemorrhage into the anterior chamber.

Sclera

- Rupture of globe may occur

Iris and ciliary body

- Traumatic miosis, mydriasis, irregular pupil may be seen.
- Iridodialysis - iris is detached from its root at the ciliary body.

Lens

- Dislocation of lens into anterior or posterior chamber.
- Subluxation of lens due to partial rupture of zonule.
- Vossius ring is due to an impact of the iris onto the anterior surface of the lens.It consists of multiple brown granules of iris pigments arranged in a circular manner
- Total opacity of the lens.
- Rosette cataract situated in the posterior cortex.

Vitreous

- Liquefaction of the vitreous • Vitreous haemorrhage • Detachment of the vitreous

Choroid

- Choroidal haemorrhage, rupture or detachment may be there.

Retina

- Commotio retina or Berlin's oedema - There is milky white cloudiness at the posterior pole with cherry red spot in the centre.
- Detachment of the retina may occur.

Optic Nerve

This is usually associated with the fracture of base of skull. It may be in form of papillitis and avulsion of the nerve.

Perforating injury

Perforating injuries caused by sharp pointed objects may cause severe pyogenic infection in the eye or induce sympathetic ophthalmitis in the normal eye.

Signs and symptoms

- Photophobia and lacrimation
- Impairment of the vision.
- Eyeball is tender.
- Vitreous opacity may be present.
- Oedema of the optic disc is common.

Treatment

Topical corticosteroids, cycloplegics and antibiotics are administered.

Perforating injury with retained foreign body

A foreign body may penetrate the eye, especially when it strikes the eye with a high velocity. They mainly include minute particles of iron, steel, wood etc. It may get lodged on the iris, lens or vitreous. A metallic foreign body (iron or steel) induces specific tissue reaction. An electrolytic dissociation of metal disseminates it throughout tissues. The epithelial structures are usually most affected and they undergo degenerative changes.

Iron causes siderosis which is characterized by appearance of rusty oval patches on the anterior capsule of the lens. Copper induces reaction, chalcosis. The golden brown ring is formed in the deeper parts of periphery of cornea in the descemet's membrane known as Kayser fleischer ring. It is seen in Wilson's Disease.

The foreign body should be removed earliest.

Radiation injury

Exposure to an arc welding and direct or reflected sunlight from snow causes pain and ocular discomfort (snow blindness)

Treatment

Use of protective glasses and administration of topical cycloplegic, antibiotic ointment is done.

सुश्रुत उत्तर तंत्र 19 अध्याय में नयन अभिघात के कारणों तथा उनके निवारणार्थ चिकित्सा का उल्लेख मिलता है।

Scanned with CamScanner

अभ्याहते तु नयने बहुधा नराणां संरम्भरागतुमुलासु रूजासु धीमान्।
नस्यास्यलेपपरिषेचनतर्पणाद्यमुक्तं पुनः क्षतजपित्तजशुलपथ्यम।।
वृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्य्यात् स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः।
स्वेदाग्निधूमभयशोकरूजाऽभिद्यातैरभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत्।।

(सु.उ.त. 19/3-4)

बाहरी चोट, तीक्ष्ण अंजन आदि से मनुष्यों के नेत्रों पर आघात हो जाता है जिससे शोथ, लालिमा एवम् पीड़ा उत्पन्न होती है। ऐसे में वैद्य नस्य, आलेप, परिषेक, तर्पण आदि का प्रयोग करें तथा क्षतज एवम् पित्तज शूल के जैसे चिकित्सा करें एवम् स्निग्ध, मधुर शीतल उपचार का प्रयोग करें। अत्याधिक स्वेद, अग्नि सम्पर्क, धूम सम्पर्क, भय, शोक, पीड़ा आदि से अभिहत नेत्रों में भी उक्त चिकित्सा करनी चाहिए।

सद्योहते नयन एष विधिस्तदूर्ध्वं, स्यन्देरितो भवति दोषमवेक्ष्यः कार्य्यः।
अभ्याहतं नयनमीषवथास्य वाष्पसंस्वेवितं भवति तन्निरूजं क्षणेन।। (सु.उ.त. 19/5)

उक्त चिकित्सा सद्योहत नेत्राघात में ही लाभ करती है। अभिघात के एक सप्ताह पश्चात् वाताभिष्यन्द चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। नेत्र पर हल्की चोट से उत्पन्न अल्प पीड़ा में उस नेत्र पर उष्ण श्वास द्वारा स्वेदन से शीघ्र ही वह नेत्र पीड़ा रहित हो जाता है।

साध्यं क्षतं पटलमेकमुभे तु कृच्छ्रे, त्रीणि क्षतानि पटलानि विवर्जयेत्तु।।
स्यात् पिच्चितञ्च नयनं ह्यति चावसंन्न, स्रस्तं च्युतञ्च हतदृक् च भवेत्तु याप्यम्।
विस्तीर्णदृष्टि तनुरागमसत्प्रदर्शि साध्यं यथास्थितमनाविलदर्शनञ्च।। (सु.उ.त. 19/6-7)

नेत्र के प्रथम पटल में उत्पन्न क्षत साध्य, प्रथम व द्वितीय में कृच्छसाध्य तथा तीनों पटलों में उत्पन्न क्षत असाध्य होते हैं। पिच्चित, दबी हुई, शिथिल तथा च्युत आँख तथा दर्शन शक्ति रहित आँख याप्य होती है। जिसमें दृष्टि फैल गई हो, सूक्ष्म व पतली हो गई हो, लालिमा से युक्त हो एवं असत् ज्ञान कराने वाली दृष्टि भी याप्य होती है किन्तु नेत्र तथा उसके अवयव अपने स्थान पर स्थित हो एवम् स्वच्छ दिखाई देने वाली दृष्टि याप्य होती है।

प्राणोपरोधवमनक्षुतकण्ठरोधैरून्नम्यमाशु नयनं यदतिप्रविष्टम्।
नेत्रे विलम्बिनि विधिर्विहितःपुरस्तादुच्छिङ्घनं शिरसि वार्यवसेचनञ्च।। (सु.उ.त. 19/8)

यदि नेत्र अंदर की ओर अधिक प्रविष्ट हो गया हो, तो श्वास को शेककर, वमन क्रिया, छींक एवम् कण्ठावरोध से आँख को बाहर लाना चाहिए। नेत्र के बाहर आ जाने पर नासा से वायु भीतर खींचना तथा सिर पर शीतल जल का छिड़काव करना चाहिए।

भिन्नं नेत्रमकर्मण्यमभिन्नं लम्बते तु यत्।
तन्निवेश्य यथास्थानमव्याविद्धसिरं शनैः।।
पीडयेत् पाणिना सम्यक् पद्मपत्रान्तरेण तु।
ततोऽस्य तर्पणं कार्यं नस्यं चानेन सर्पिषा।। (सु. चि. 2/42-43)

भिन्न वा अभिघात युक्त नेत्र दर्शनादि कार्य नहीं कर पाता है। जो नेत्र बाहर निकल आया हो परन्तु भिन्न न हुआ हो, उसे शिराओं सहित पुनर्स्थापित करके, कमल पत्र रखकर हाथ से धीरे से दबायें। तत्पश्चात् साधित घृत से तर्पण करें।

आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च।।
जीवकर्षभकौ चैव पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
सर्वनेत्राभिघाते तु सर्पिरेतत् प्रशस्यते।। (सु. चि. 2/44-45)

मुलहठी, कमल, जीवक, ऋषभक को पीस कर कल्क बनायें व अजा घृत में पाक करें। यह नेत्राभिघात में प्रशस्त है।

नेत्रादिगत शल्य निर्हरण

सूक्ष्माक्षिव्रणशल्यानि क्षौमवालजलैहरेत्।। (अ. ह. सू. 28/39)

आंख में व्रज या सूक्ष्म शल्य हो तो उसे क्षौम (सूती वस्त्र), बाल अथवा जल से निकालना चाहिए। इसके अतिरिक्त कंठ में लाख आदि वस्तु फंसी हो तो सावधानी से नलिकास्य तप्त लौह शलाका से उसे स्पर्शकर पिघला कर व चिपका कर बाहर खींचें। मछली आदि का कांटा फंसने पर बालों की गुच्छी कर लम्बे धागे से बांध कर वामक द्रव्यों के साथ निगलवायें। वमन होने पर धागे को खींचने से शल्य निकल जायेगा। जो न निकाला जा सके, उसे आगे धकेल दें। कर्ण में जल भर जाने पर हथेली पर कुछ तैल व जल को मथ कर कान में डाल दें व उस कान को नीचे झुकाकर दूसरे कान पर हल्की थपकी दें। इससे जल निकल जायेगा। मक्खी आदि जाने पर लवण, जल, सिरका या कोष्ण जल डाल दें। कीट मृत हो जायेगा, तत्पश्चात् गूथवत निकाल दें।

✕ ✕ ✕

Scanned with CamScanner

अध्याय-11

क्रिया कल्प

शालाक्य तंत्र में क्रिया कल्प का विशेष महत्व है। क्रियाकल्प नेत्र, कर्ण, नासा तथा शिरोरोगों में विशेष महत्व रखता है। क्रिया अर्थात् चिकित्सा कार्य को कहते हैं तथा कल्प योग को कहते हैं अर्थात् क्रिया कल्प में विभिन्न प्रकार के योग यथा तर्पण, पुटपाक, सेक इत्यादि द्वारा चिकित्सा की जाती है। कौमारभृत्य, शल्यतन्त्र आदि में इस प्रकार की विशेष पद्धतियों का उल्लेख नहीं मिलता है। रोग के अनुसार इनका प्रयोग किया जाता है तथा इनको बनाने की विधि का भी वर्णन किया गया है। दोषानुसार इनकी मात्रा का उल्लेख है।

सुश्रुत ने इसके 5 प्रकार बताए हैं।

तर्पणं पुटपाकश्च सेक आश्च्योतनाञ्जने। तत्र तत्रोपविष्टानि तेषां व्यासं निबोध मे॥

(सु.उ.त. 18/4)

नेत्र रोगों में सुश्रुत ने पांच क्रिया कल्पों का उल्लेख किया है: तर्पण, पुटपाक, सेक, आश्च्योतन, अंजन।

सेक आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा। पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्॥

(शा.उ.ख. 13/1)

शाङ्र्गधर ने नेत्र रोगों की चिकित्सा के लिए सात उपक्रमों को उल्लेख किया है: सेक, आश्च्योतन, पिण्डी, विडालक, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन।

11.1 तर्पण

जो नेत्र की पुष्टि करें उसे तर्पण कहते हैं।

तर्पणकं नेत्रं तृप्तिकरं परम्।

नेत्रों की तृप्ति करने में तर्पण श्रेष्ठ है। (शा.उ. 3/38)

तर्पण योग्य निर्देश

नयने ताम्यति स्तब्धे शुष्के रूक्षेऽभिघातिते। वातपित्तातुरे जिह्मे शीर्णपक्ष्माविलेक्षणे॥
कृच्छ्रोन्मीलशिराहर्षशिरोत्पाततमोऽर्जुनैः। स्यन्दमन्थान्यतोवातवातपर्यायशुक्रकैः॥
आतुरे शान्तरागाश्रुशूलसंरम्भदूषिके। निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्द्धकाययोऽ।
काले साधारणे प्रातः सायं वोत्तानशायिनः।

(अ.हृ.सू. 24/1-3)

आंख के म्लान रहने पर, स्तब्ध, शुष्क, रूक्ष होने पर, चोट लगने पर, नेत्र में वात-पित्त जनित विकार होने पर, नेत्र के कुटिल (टेढ़ी) होने पर (Squint), पक्ष्म के बाल गिरने पर (falling of eye-lashes), नेत्र खोलने में कष्ट होता हो, सिराहर्ष, सिरोत्पात में, नेत्र के सामने अंधेरा आने से, अर्जुन, अभिष्यन्द, अधिमंथ, अन्यतोवात, वातविपर्यय तथा शुक्र रोग में तर्पण करना चाहिए।

आंख की लालिमा, अश्रु, शूल, शोथ तथा आंख की मैल शान्त हो जाए तब वमन, विरेचन और नस्य से शरीर एवम् सिर का शोधन करके, वायु रहित स्थान में, साधारण ऋतु में प्रातः या सायंकाल रोगी को चित्त लिटाकर तर्पण करें।

तर्पण द्रव्य - शीत ऋतु में तर्पण हेतु द्रव सुखोष्ण होना चाहिये। अनुष्णशीत तापमान ग्रीष्मकाल में उपयोज्य है। औषधि सिद्ध घृतमंड का प्रयोग प्रायः किया जाता है। प्रायः उष्ण वीर्य होने के कारण तैल द्वारा तर्पण नहीं किया जाता है। वाग्भट ने वातज अधिमंथ में काश्मर्यादि क्षीरपाक से, शुष्काक्षिपाक में जीवनीय घृत से, सर्वाक्षिरोग में सोंफ, हरीतकी, तुत्थ, मुलट्ठी, लोध्र की पोटली से कांजी के साथ तर्पण व दारुहरिद्रा जल को मधु में मिलाकर तर्पण करें।

तर्पण विधि

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः। आधारौ माषचर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ॥
समौ दृढावसम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः। पूरयेद् घृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदकेः॥
आपक्ष्माग्रात्ततः स्थाप्यं पञ्च तद्वाक्शतानि तु। स्वस्थे, कफे षट्, पित्तेऽष्टौ, दश वाते तदुत्तमम्।

(सु.उ.त. 18/6-8)

वायु के झोंकों से रहित स्थान पर तथा धूप, धूल से रहित स्थान में सुखदायक शय्या पर चित्त लिटा दें। दोनों नेत्र कोशों पर उड़द के गीले आटे से गोल, समान, दृढ (छिद्र रहित) तथा किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचने वाली पाली बनाएँ। उस पाली में गर्म पानी में द्रवित घृतमण्ड को नेत्रपक्ष्माग्र तक भर दें। इसे स्वस्थ पुरुष में 500 मात्रा तक, कफज रोगों में 600 मात्रा पर्यन्त, पित्त जनित रोगों में 800 मात्रा तक तथा वातज रोगों में 1000 मात्रा पर्यन्त धारण करें। हाथ को घुटने के चारों ओर घूमने में जितना समय लगता है या आंख के बन्द करने और खोलने में जितना समय लगता है, उतने समय को मात्रा कहते हैं। यह लगभग एक सेकण्ड के बराबर होता है।

रोगस्थानविशेषेणे केचित्कालं प्रचक्षते। यथाक्रमोपदिष्टेषु त्रीणयेकं पञ्च सप्त च॥
दश दृष्ट्यामथाष्टौ च वाक्शतानि विभावयेत्। ततश्चापाङ्गतः स्नेहं स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत्॥

(सु.उ.त. 18/9-10)

रोग के स्थान विशेष के अनुसार निम्नलिखित तर्पण धारण काल शस्त्रों में निर्दिष्ट है:

सन्धिगत रोगों में 300 मात्रा उच्चारण करने तक।

वर्त्मगत रोगों में 100 मात्रा ,उच्चारण करने तक।

शुक्लगत रोगों में 500 मात्रा उच्चारण करने तक।

कृष्णगत रोगों में 700 मात्रा उच्चारण करने तक।

दृष्टिगत रोगों में 1000 या 800 मात्रा उच्चारण करने तक, सर्वगत रोगों में 1000 मात्रा तक घृत मण्ड को नेत्र में भरे रखना चाहिए। तत्पश्चात् अपाङ्ग से स्नेह का स्रावण कराके नेत्र का शोधन करना चाहिए।

पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा कार्यम् अक्ष्णोः तुतर्पणम्। (सु.उ.त. 18/5)

तर्पण पूर्वाह्न या अपराह्न में करना चाहिये।

Scanned with CamScanner

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पन्चाहंचेष्यते परम्।

(सु.उ.त. 18/12)

न्यून दोष में एक दिन, मध्यम दोष में तीन दिन तथा प्रबल दोष में पांच दिन तर्पण करें।

नेत्र तर्पण काल कितने दिन के अन्तराल पर करणीय है–

इत्थं प्रतिदिनं वायौ पित्ते त्वेकान्तरं कफे। स्वस्थे च द्व्यन्तरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत्॥

(अ.हृ.सू. 24/10)

वातज रोग में प्रतिदिन, पित्तज रोग में एक दिन छोड़कर, कफज रोगों तथा स्वस्थ व्यक्ति में दो दिन छोड़कर तर्पण करें या जब तक सम्यक तर्पण लक्षण उत्पन्न हो तब तक तर्पण करें।

तृप्ति और अतृप्ति का लक्षण

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम्। तृप्ते विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रूजः॥

(अ.हृ.सू. 24/11)

प्रकाश की सहिष्णुता, स्वस्थता, निर्मलता तथा आंख में हलकापन होना सम्यक तृप्ति के लक्षण हैं। अतृप्ति में इससे विपरीत लक्षण होते हैं तथा अतितृप्ति में कफज रोग होते हैं।

तर्पण के पश्चात् कर्म

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः। यथास्वं धूमपानेन कफनस्य विशोधयेत्॥

(शा.उ.ख. 13/48)

स्नेह के कारण बढ़े हुए कफ को गर्म की हुई जौ की पीठी के उबटन से अथवा धूमपान से नेत्र का शोधन करें।

तर्पण का निषेध

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च। अशान्तोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते॥

(शा.उ.ख. 13/41)

दुर्दिन (आकाश में बादल हो), अत्यन्त उष्णकाल तथा शीतकाल में और चिन्ता, शारीरिक श्रम से थके हुए तथा भ्रम रोग से पीड़ित रोगियों की आँख में तथा आम दोष के उपद्रव रहने पर नेत्र में तर्पण न करें।

11.2 पुटपाक

पुटपाकस्तदैतेषु, नस्यं येषु च गर्हितम्। तर्पणार्हा न ये प्रोक्ताः स्नेहपानाक्षमाश्च ये॥
ततः प्रशान्तदोषेषु पुटपाक क्षमेषु च। पुटपाकः प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत्॥

(सु.उ.त. 18/19-20)

जिन अवस्थाओं में तर्पण किया जाता है उन्हीं नेत्र रोगों में पुटपाक का निर्देश किया जाता है। जिन रोगों में नस्य देना वर्जित है तथा स्नेहपान की अयोग्य अवस्थाओं में, पुटपाक अयोग्य है। नेत्र में दोषों की शान्ति हो जाने पर पुटपाक का प्रयोग करना चाहिए।

पुटपाक भेद

स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च स त्रिधा। हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनः।
दृष्टेर्बलार्थमिपरः पित्तासृग्व्रणवातनुत्॥

(सु.उ.त. 18/21-22)

स्नेहन, लेखन, रोपण; पुटपाक के यह तीन प्रकार है। अतिरूक्ष नेत्र में स्नेहन पुटपाक, स्निग्ध आंख में लेखन पुटपाक तथा दृष्टि वर्धन हेतु या पित्त रक्तज व्रण होने पर या वातयुक्त होने पर रोपण पुटपाक हितकारी है।

पुटपाक विधि

द्वौ बिल्वमात्रौ श्लक्ष्णस्य पिण्डौ मांसस्य पेषितौ। द्रव्याणां बिल्वमात्रन्तु द्रवाणां कुडवो मतः।
तदैकध्यं समालोड्यपत्रैः सुपरिवेष्टितम्॥ काश्मरी कमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः।
मृदावलिप्तमङ्गारैः खादिरैखकूलयेत्। कतकाश्मन्तकैरण्डपाटलावृषबादरैः।
सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वाऽपि युक्तितः॥ स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्यरसमादाय तं नृणाम्।
तर्पणोक्तेन विधिना यथावत्तचारयेत्॥

(सु.उ.त. 18/34-37)

दो मांस के पिण्ड लें जोकि श्लक्ष्ण और अच्छी प्रकार पीसे हुए हो तथा प्रत्येक का वजन एक-एक बिल्व होना चाहिए। । बिल्व (1 पल 4 तोले) प्रयुक्त द्रव्य की मात्रा । बिल्व हो तथा द्रव पदार्थ कुड़व (16 तोला) सभी को युक्त कर गोला बना लें, तत्पश्चात् गोले को गम्भारी, कुमुद, एरण्ड पत्र, कमल या केले के पत्र में लपेट कर चारों ओर से गीली मिट्टी लगाकर, सुखाकर खदिर की लकड़ी के कायेलों के निर्धूम अङ्गारों अथवा निर्मली, अश्मन्तक, एरण्ड, पाटला, बांस, बेर अथवा क्षीरी वृक्ष की लकड़ियों के निर्धूम अंगारों पर अथवा गोबर के निर्धूम अंगारों पर रखकर पकाना चाहिए, ठीक प्रकार से पक जाने पर, मिट्टी हटाकर स्विन्न गोले को दबाकर रस निकालें तथा तर्पण की विधि से प्रयुक्त करें।

स्नेहन पुटपाक

स्नेहमांसवसामज्जमेदः स्वाद्वौषधैः कृतः। स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्य्यो द्वे वाक्शते तु सः॥

(सु.उ.त. 18/23)

स्नेह, मांस, वसा, मज्जा, मेद और मधुर औषधियों से स्नेहन पुटपाक बनाया जाता है तथा स्नेहन पुटपाक को दो सौ गिनने तक धारण करें।

लेखन पुटपाक

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसम्भृतैः। कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः॥
समद्रुफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः। लेखनो वाक्शतं तस्यं परं धारणमुच्यते॥

(सु.उ.त. 18/24-25)

जागल पशुओं के यकृत के मांस तथा लेखन द्रव्य जैसे मरिच, सोंठ, ताम्र भस्म, शङ्ख भस्म, प्रवाल भस्म, सैन्धव लवण, कासीस, स्रोतोञ्जन, दही और मस्तु इत्यादि द्रव्यों को युक्त कर लेखन पुटपाक निर्मित किया जाता है। लेखन पुटपाक को धारण करने की अवधि सौ मात्रा है।

रोपण पुटपाक

स्तन्यजाङ्गलध्वाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः। लेखनात्त्रिगुणं धार्य्यः पुटपाकस्तु रोपणः॥ (सु.उ.त. 18/26)

दुग्ध, जांगल पशुओं का मांस, शहद, घृत और तिक्त द्रव्यों को मिलाकर रोपण पुटपाक बनाया जाता है। रोपण पुटपाक को लेखन पुटपाक की अपेक्षा तीन सौ गिनने तक धारण करें।

Scanned with CamScanner

पुटपाक अवधि

एकाहं वा द्व्यहं वाऽपि त्रयहं वाऽप्यवचारणम्। यन्त्रणा तु क्रियाकालाद् द्विगुणं कालमिष्यते॥

(सु.उ.त. 18/27-28)

कफज नेत्र रोगों मे एक दिन, पित्तज में दो दिन तथा वातज नेत्र रोगों में तीन दिन तक पुटपाक करना चाहिए। पुटपाक में यंत्रणा (पथ्य सेवन) काल चिकित्सा काल से दुगुना होता है।

पुटपाक में परिहार्य

तेजांस्यनिलमाकाशमावर्शं भास्वराणि च। नेक्षते तर्पिते नेत्रे पुटपाककृते तथा॥

(सु.उ.त. 18/29)

पुटपाक के बाद नेत्र को प्रकाशमान वस्तुएं, तेज वायु के झोंके, आकाश, काँच तथा चमकीले पदार्थों को नहीं देखना चाहिए।

सम्यक् पुटपाक लक्षण

प्रसन्नवर्णं विशदं वातातपसहं लघु। सुखस्वप्नावबोध्यक्षिपुटपाकगुणान्वितम्॥

(सु.उ.त. 18/31)

आंख का वर्ण साफ, मैल रहित, वात तथा आतप को सहने वाली, आंख हल्की हो जाती है, सुखपूर्वक निद्रा का आना तथा समयानुसार जाग्रत होना, ये सम्यक् पुटपाक के लक्षण हैं।

पुटपाक का अतियोग, हीनयोग लक्षण

अतियोगाद् रूज, शोफः पिडकास्तिमिरोद्गमः। पाकोऽश्रु हर्षणञ्चापि हीने दोषाद्गमस्तथा॥

(सु.उ.त. 18/32)

पुटपाक अतियोग होने पर आंख में पीड़ा, शोथ, पिड़िकाओं का होना, आंखों के सामने अंधकार आना लक्षण पैदा होते हैं। पुटपाक के हीनयोग पर आंखों में पाक, अश्रु आना, हर्षण तथा अन्य अपद्रव होते हैं।

पुटपाक में औषध पूरण निर्देश

कनीनके निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः। रक्ते पित्ते च तौ शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ॥

(सु.उ.त. 18/39)

चित्त लेटे मनुष्य का कनीनक संधि की ओर से रस का पूरण करना चाहिए। रक्त और पित्त प्रकोपक व्याधियों में प्रयुक्त द्रव्य शीत होना चाहिए तथा वात और कफ प्रकोपक व्याधियों में प्रयुक्त द्रव्य कोष्ण होना चाहिए।

आद्यन्तयोश्चाप्यनयोः स्वेद उष्णाम्बुचैलिकः। तथा हितोऽवसाने च धूमः श्लेष्मसमुच्छ्रितौ।

(सु.उ.त. 18/43)

तर्पण और पुटपाक के आदि और अन्त में गर्म पानी से स्वेद करना चाहिए तथा बाद में वृद्ध कफ को धूमपान द्वारा निर्हरण करना चाहिए।

11.3 सेक

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्ननयेन हितः। मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलात्॥

(शा.उ.ख. 13/2)

सभी प्रकार के नेत्र रोगों में रोगी की आंख बंद कराकर चार अंगुल से द्रवौषधि की सूक्ष्मधारा गिराने को सेक कहते हैं।

भेद

तौ त्रिधैवोपयुञ्जते रोगेषु पुटपाकवत्॥

(सु.उ.त. 18/45)

पुटपाक की भांति सेक के तीन भेद होते हैं:

स्नेहन, लेखन, रोपण

स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः लेखनश्च कफेकार्यस्तस्य॥

(शा.उ.ख 13/3)

वातज रोगों में स्नेहन, रक्तज तथा पित्तज रोगों में रोपण तथा कफज रोगों में लेखन सेक प्रयुक्त करें।

सेक मात्रा

सेकस्य द्विगुणः कालः पुटपाकात् परो मतः। अथवा कार्यनिर्वृत्तेरूपयोगो यथाक्रमम्॥

(सु.उ.त. 18/47)

सेक का धारणकाल पुटपाक से दुगुना है अथवा रोग शान्ति पर्यन्त यथादोषानुसार परिषेक का उपयोग करना चाहिए। अर्थात् स्नेहन सेक 400 मात्रा उच्चारण तक, लेखन सेक 200 मात्रोच्चरण तक तथा रोपण सेक 600 मात्रोच्चरण तक का होता है। परन्तु सेक के धारण काल में शाङ्गधर का मतभेद है।

षड्वावशतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे। वावशतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि॥

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चाव्ययिके गदे॥

(शा.उ.ख. 19/4)

स्नेहन द्रवों का सेक छः सौ वाक् मात्रा तक का, रोपण द्रवों को सेक चार सौ वाक् मात्रा तक करें तथा लेखन द्रवों का सेक तीन सौ वाक् मात्रा तक करना चाहिए। यह सेक दिन में करना चाहिए, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर रात्रि में भी प्रयुक्त करें।

योगायोगान् स्नेहसेके तर्पणोक्तान् प्रचक्षते॥

(सु.उ.त. 18/49)

स्नेहन (आश्च्योतन) और सेक क्रिया के सम्यक योग, हीन योग और मिथ्या योग के लक्षण तर्पण के योगायोगों समान समझने चाहिए।

यथादोषोपयुक्तन्तु नातिप्रबलभोजसा। रोगमाश्च्योतनं हन्ति सेकस्तु बलवत्तरम्॥

(सु.उ.त. 18/44)

यथादोषानुसार प्रयुक्त आश्च्योतन नातिप्रबल (कम बलवान) रोग को नष्ट कर देता है तथा सेक बलवान रोग को नष्ट कर देता है।

गत्वा सन्धिशिरोरोघ्राणमुखस्रोतांसि भेषजम्। उर्ध्वगात्रयने न्यस्तमपवर्तयते मलान्॥

(अ.हृ.सू. 23/7)

नेत्र में प्रयुक्त औषध नेत्र की संधियों, सिराओं, नासा, मुख के स्रोतों में जाकर ऊपर की ओर जाने वाले दोष को नीचे की ओर प्रवृत करता है।

11.4 आश्च्योतन

आश्च्योतनं सर्वाक्षिरोगोघ्वाद्य उपक्रमः।

(अ.सं.सू. 32/3)

सभी नेत्र रोगों में आश्च्योतन पहला चिकित्सा उपक्रम है।

Scanned with CamScanner

सर्वेषाक्षिरोगणामादावाश्चोतनं हितम्। रुक्तोदकण्डूघर्षाश्रुदाहरागनिबर्हणम्॥

(अ.हृ.उ.त. 23/2)

अक्षि के सभी रोगों में प्रथम आश्च्योतन करना हितकारी है। इससे पीड़ा, आंख में चुभन, कण्डू, रगड़, अश्रु आना, दाह और लालिमा का शमन होता है।

आश्च्योतन की विधि

निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम्॥ शुक्तौ प्रलम्बयाऽन्येन पिचुवर्त्त्या कनीनिके।
दश द्वादश वा बिन्दून् द्वयङ्गलादवसेचयेत्॥ ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः।
अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु॥ (अ.हृ.सू. 23/2-4)

रोगी को निर्वात स्थान में बैठाकर, तत्पश्चात् बायें हाथ से रोगी की आंख को खोलें। दाहिने हाथ में पकड़ी शुक्ति से अथवा फोहे से कनीनिक पर दस या बारह बिन्दुओं को दो अंगुल ऊंचे से औषध द्रव टपका दें। बाद में कोमल वस्त्र खण्ड से पोंछ दें। कफ वातजनित रोगों में कोष्ण जल में भिगोऐ वस्त्र से मृदु स्वेदन करें।

आश्च्योतन के भेद

सुश्रुत ने इसके तीन भेद कहे हैं: स्नेहन, लेखन, रोपण

हितः स्निग्धोऽतिरुक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनेः। दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रण वातनुत्॥

(सु.उ.त. 18/22)

स्नेहन आश्च्योतन अतिरुक्ष नेत्र में, लेखन आश्च्योतन स्निग्ध नेत्र में तथा रोपण आश्च्योतन दृष्टि को बल प्रदान करता है व पित्तरक्त व्रण नाशक व वात शामक है।

आश्च्योतन द्रव्य- शार्ङ्गधर ने वातिक रोगों में स्निग्ध, पैत्तिक में मधुर, शीत तथा कफज में उष्ण, रुक्ष द्रव्यों से आश्च्योतन का विधान किया है। सश्रुत ने त्रिफला को अभिष्यन्द में उत्तम माना है। स्त्रीदुग्ध को वातिक, पैत्तिक, रक्तज नेत्ररोगों में व दुग्ध, घी का आश्च्योतन पीड़ाहर माना है। त्रिफला का प्रयोग प्रायश नेत्र रोगों में लाभकर है। सोंठ, त्रिफला, नीम, अड़ूसा, लोध्र से कफज रोगों में आश्च्योतन दें। रसाञ्जन को "नेत्रयो परं हितम्" कहा गया है जो कि विशेषतः आमज व कफज नेत्र रोगहर है। द्रव्यों के गुणधर्मानुसार, अतिउष्ण व तीक्ष्ण द्रव्यों को छोड़कर, दोषानुसार नेत्र रोगों में आश्च्योतनार्थ प्रयुक्त किया जा सकता है।

मात्रा

लेखने सप्त चाष्टौ वा बिन्दवः स्नैहिके दश। आश्च्योतने प्रोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे॥

(सु.उ. 18/45)

लेखन आश्च्योतन की मात्रा सात या आठ बिन्दु, स्नेहन आश्च्योतन की मात्रा 10 बिन्दु तथा रोपण आश्च्योतन की मात्रा 12 बिन्दु है।

बिन्दु – तर्जनी अंगुली के दो पर्वों को द्रव पदार्थ में डूबाकर ऊँचा उठाने से गिरी हुई एक बूंद को बिन्दु कहते हैं।

करण काल

पूर्वापराह्णे मध्याह्ने रूजाकालेषु चोभयोः। (सु.उ.त. 18/47)

पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्न में आश्च्योतन करना चाहिए।

आश्च्योतनं न कर्त्तव्यं निशायां केनचित्कचित्।

आश्च्योतन रात्रि में कभी नहीं करना चाहिए। (भा.प्र.मध्यमखण्ड 62/15)

तयोरकालो रात्रि। कालस्तु सर्वमहर्वेदनोत्पतिर्वा।

आश्च्योतन का प्रयोग रात्रि में न करें अथवा जिस समय वेदना की उत्पत्ति हो, उसी समय करना चाहिए। (अ.सं.सू. 32/4)

धारण काल

आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतं हिता।

सभी प्रकार के आश्च्योतनों को 100 वाक् उच्चारण करने में जितना समय लगे, उतनी देर तक धारण करें। (शा.स. उत्तरखण्ड 13/10)

आश्च्योतन उपद्रव

अत्युष्णतीक्ष्णं रुग्रागदृङ्नाशायाक्षिसेचनम्। अतिशीतं तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः॥
कषायवर्त्मता घर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु। विकारवृद्धिमत्यल्पं संरंभपरिस्रुतम्॥

(अ.हृ.सू. 23/3-6)

अत्यन्त उष्ण वा तीक्ष्ण आश्च्योतन हो तो वह आंख में पीड़ा, लालिमा एवम् दर्शन शक्ति का नाश करता है, अत्यन्त शीतल आश्च्योतन सूचीवेधवत् पीड़ा, स्तब्धता और वेदना करता है। मात्रा में अधिक द्रव से वर्त्मों में रुक्षता, रगड़ तथा आंख खोलने में कष्ट होता है। अपरिस्रुत द्रव अर्थात् जो नेत्र के अन्दर ही रह जाए, नेत्र में क्षोभ पैदा करता है। मात्रा में कम द्रव्य विकार को बढ़ाता है।

11.5 अंजन

अंजन व्युत्पत्ति

"अनक्ति अनने इति अंजनम्"।

जिसके द्वारा लेप किया जाता है, उसे अंजन कहते हैं।

परिभाषा

अंजनं क्रियते येन तद द्रव्यं चाञ्जनम् मत्तम्॥ (भा.प्र. उत्तरार्द्ध 63/183)

अर्थात् जिन पदार्थों को आंख में लगाया जाता है उन्हें अंजन कहते हैं।

अंजन महत्ता

यथाहि कनकादीनां मणिनां विविधात्मनाम्। धौतानां निर्मला शुद्धिस्तैलचेलकचादिभिः।
एवं नेत्रेषु मर्त्यानामन्जनाश्च्योतनादिभिः। दृष्टिर्निराकुलाभाति निर्मले नभसीन्दुवत्॥

(च. सू. 5/15-16)

जिस प्रकार नाना प्रकार के सोना एवम् मणि आदि की शुद्धि तैल, कपड़ा और बाल आदि से साफ करने पर होती है उसी प्रकार आश्च्योतन एवम् अंजन आदि से निर्मल आकाश में चन्द्रमा के समान मनुष्यों के नेत्रों में निरापद दृष्टि होती है।

सौवीरांजनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्॥ (अ.हृ.सू. 2/5)

नेत्र के हित के लिए सौवीरांजन का नित्य प्रयोग करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्। योजयेत् सप्तरात्रेऽस्मात्स्रावणार्थं रसाञ्जनम्॥

(अ.हृ.सू. 2/5-6)

नेत्र तेजस्वरूप है अतः श्लेष्मा से विशेष रूप से भय रहता है इसलिए कफशामक कर्म नेत्र का प्रसादन (स्वस्थ) करने में हितकारी होते हैं। अतः कफ स्रावणार्थ सात रात्रि में एक बार आंखों में रसांजन का प्रयोग करना चाहिए।

अंजन भेद

गुण कर्म भेद से

लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा अञ्जनम्। (अ.हृ.सू. 23)

अंजन लेखन, रोपण और दृष्टिप्रसादन भेद से तीन प्रकार का होता है।

तत् तु लेखनं रोपणं स्नेहनं प्रसादनमिति भवति। (अ.सं.सू. 32)

अष्टांग संग्रहकार ने गुण कर्म के अनुसार अंजन के चार भेद माने हैं – लेखन, रोपण, स्नेहन, दृष्टिप्रसादन।

भैषज्यकल्पानुसार (स्वरूप भेद से)

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि तु। यथापूर्वं बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः॥

(सु.उ.त. 18/58)

गुटिका, रसक्रिया और चूर्ण भेद से अंजन तीन प्रकार का होता है। विद्वान पुरुष यथापूर्व को श्रेष्ठ बल मानते हैं अर्थात् गुटिका का प्रयोग बलवान दोष में, मध्य दोषावस्था में रसक्रिया और लघु दोषावस्था में चूर्ण अंजन प्रयोग में लाना चाहिए।

रस भेद से

षड्विधं वा प्रतिरसभेदादञ्जनम्। द्विविधमेव वा तीक्ष्णं मृदु च। (अ.सं.सू. 32/8)

रस भेद से अंजन छः प्रकार का है: मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय।

प्रभाव भेद से

प्रभाव भेद से अंजन दो प्रकार का है : मृदु एवं तीक्ष्ण।

तीक्ष्ण अंजन

जो नेत्र को विचलित करे अर्थात् जिसे लगाने से नेत्र से स्राव हो। यह तीक्ष्ण द्रव्यों के संयोग से बनता है यथा मरिच, तुत्थ। तीक्ष्ण अंजन लेखन गुणकर्म वाले होते हैं।

मृदु अंजन

जिसको लगाने से नेत्र से स्राव न हो। यह मृदु द्रव्यों के संयोग से बनाया जाता है।

रस शास्त्रीय वर्गीकरण

इसकी गणना उपरसों में की है।

गन्धाश्मगैरिककासीस काङ्क्षीतालशिलाञ्जनम्। कङ्कुष्ठश्चेत्युपरसा अष्टौ पारदः कर्मणि॥

(रस रत्न समुच्चय)

रसरत्नसमुच्चय में पांच प्रकार का अंजन वर्णित है।

यथा :

सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम्। स्रोतोञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनमेव च॥
नीलाञ्जनं च तेषां हि स्वरूपमिह वर्ण्यते।

(रस रत्न समुच्चय)

(i) सौवीरांजन (ii) स्रोतोञ्जन (iii) रसांजन (iv) पुष्पांजन (v) नीलांजन।

अंजन प्रकार तालिका

क्र. सं.	गुणकर्म भेद से से (सुश्रुत)	कल्पना भेद से (सुश्रुत)	प्रभाव भेद से (अ.सं.)	रस भेद से से (अ.सं.)	रस शास्त्रीय वर्गीकरण (र.र.स.)
1.	लेखन	गुटिका	तीक्ष्ण	मधुर	सौवीरांजन
2.	रोपण	रसक्रिया	मृदु	अम्ल	रसांजन
3.	प्रसादन	चूर्ण	मध्य (भा.प्र.)	लवण	स्रोतोञ्जन
4.	स्नेहन (अ.सं.)			कटु	पुष्पांजन
5.				तिक्त	नीलांजन
6.				कषाय	

निर्देश

दोषानुसार

यथादोषं प्रयोज्यानि तानि रोगविशारदैः। अञ्जनानि यथोक्तानि प्राह्णसायाह्नरात्रिषु॥

(सु.उ.त. 18/57)

दोषों के अनुसार चिकित्सक अंजनों को पूर्वाह्न, सायंकाल तथा रात्रि में प्रयुक्त करें अर्थात् कफज रोगों में प्रातः काल लेखनांजन प्रयोग करें, पैत्तिक रोगों में रात्रि के समय प्रसादक अंजन तथा वातज रोगों में सायंकाल रोपणांजन प्रयुक्त करें।

स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सौम्यत्वेन च तर्पिता। शीतसात्म्या दृगाग्नेयी स्थिरतां लभते पुनः।

(अ.हृ.सू. 23/18)

रात्रि में सोने से और समय के सौम्य होने के कारण तर्पित हुई शीत सात्म्य वाली दृष्टि नेत्र में प्रयुक्त किये तीक्ष्ण अंजन से पुनः स्थिरता प्राप्त करती है।

(च. सू. 5/14)

तस्मात् स्राव्यं निशायां तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते॥

स्राव्य अंजन का प्रयोग रात्रि में करना चाहिए। अर्थात् दिन में तीक्ष्ण अंजन प्रयोगार्थ नेत्र का स्राव होने से दुर्बल हुई दृष्टि सूर्य के प्रकाश को सहन नहीं कर सकती।

सायं प्रातर्वाऽञ्जनं स्यात्सदा नैव कारयेत्। नातिशीतोष्णवातभ्रवेलसयां सम्प्रशस्यते॥

(शा.उ.13/73)

आवश्यकतानुसार सायंकाल या प्रातः काल अंजन लगाएं। हर समय न लगाएं। न अधिक शीत, न अधिक उष्णकाल में, हवा न चलती हो, बादल न हो तब अंजन लगाना प्रशस्त है।

अंजन निषेध

नान्जयेद्भीतवमितविरिक्ताशितवेगिते। क्रुद्धज्वरिततान्ताक्षिशिरोरुक् शोक जागरे॥
अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः। अजीर्णेऽग्नर्कसन्तप्ते दिवासुप्ते पिपासिते॥

(अ.हृ.सू 23/24)

डरे हुए, वमन किये, विरेचन लिये, भोजन करने पर, वेग उपस्थित होने पर, क्रुद्ध एवम् ज्वर युक्त होने पर, चमकते रूप देखने से क्लान्त दृष्टि, शिर में वेदना, शोक, रात्रिजागरण, सूर्यास्त होने पर, सशिर स्नान करने पर, मद्य या धूम्रपान करने पर, अजीर्ण में, सूर्य से सन्तप्त होने पर, दिन में सोने पर, प्यास लगने पर अंजन नहीं करना चाहिए।

अंजन की मात्रा

कर्त्तव्यं मात्रया तस्मादञ्जनं सिद्धिमिच्छता॥ (सु.उ.त. 18/82)

चिकित्सा की सफलता हेतु मात्रानुसार अंजन का प्रयोग करें।

प्रभाव अनुसार

हरेणुमात्रां कुर्वीत वटी तीक्ष्णाञ्जने भिषक्। प्रमाणं मध्ये सार्द्धद्विगुणन्त मृदौ भवेत्॥

(भा.प्र.म 63/183)

तीक्ष्णांजन में एक मटर के बराबर गुटिका बनानी चाहिए। मध्यमांजन में डेढ़ मेटर के बराबर गुटिका बनानी चाहिए और मृदांजन में दो मटर के बराबर गुटिका बनानी चाहिए।

हरेणुमात्रा वर्त्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः। प्रसादनस्य चाध्यार्द्धा द्विगुणा रोपणस्य च॥

(सु.उ.त 18/56)

लेखन अंजन की वर्ति का प्रमाण एक हरेणु के बराबर तथा प्रसादन अंजन की वर्ति का प्रमाण डेढ़ हरेणु और रोपण अंजन की वर्ति का प्रमाण दो हरेणु के बराबर होना चाहिए।

रसाञ्जनस्य मात्रा तु यथावर्तिमिता मता॥ द्वित्रिचतुः चूर्णस्याप्यनुपूर्वशः॥

(सु.उ.त. 18/60)

रसाञ्जन की मात्रा अपनी निर्मित वर्ति के अनुसार होती है जैसे लेखन रसक्रियाञ्जन की मात्रा लेखन वर्ति के समान, रोपण रसाञ्जन की मात्रा रोपण वर्ति के समान और प्रसादन रसाञ्जन की मात्रा प्रसादन वर्ति के समान होती है। इसी प्रकार चूर्ण अञ्जन की मात्रा अनुपूर्व अर्थात् लेखनादिक्रम से दो, तीन और चार शलाकाएं समझनी चाहिए। लेखन चूर्णाञ्जन की मात्रा दो शलाका, रोपण चूर्णाञ्जन की तीन शलाका और प्रसादन चूणाञ्जन की मात्रा चार शलाकाएं होती है।

रसक्रिया तूत्तमा स्यात् त्रिविडङ्गमिता मत। मध्यमा द्विविडङ्ग सा हीन त्वेकविडङ्गिका॥

(भा.प्र.म 63/186)

रसक्रियाञ्जन की उत्तम मात्रा तीन वायविडंग के बराबर, मध्यम मात्रा दो विडंग के बराबर और ह्रस्व मात्रा एक विडंग के बराबर होती है।

क्र.स.	कल्पना	चूर्ण	गुटिका	रसक्रिया
1.	उत्तम	4 शलाका	2 मटर	3 वायविडंग
2.	मध्यम	3 शलाका	1.5 मटर	2 वायविडंग
3.	हीन	2 शलाका	1 मटर	1 वायविडंग

शलाका लक्षण एवम् प्रमाण

वक्त्रयोर्मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला। अष्टाङ्गुला तनुमंध्ये सुकृता साधुनिग्रहा॥
औदुम्बर्याश्मजा ताऽपि शारीरी वा हिता भवेत्॥ (सु.उ.त 18/62-63)

अंजन शलाका दोनों किनारों पर मुकुलाकार तथा मोटाई में मटर के बराबर एवम् आठ अङ्गुल लम्बी, मध्य में पतली तथा सुनिर्मित और सुग्राही होनी चाहिए।

अंजनपात्र तथा शलाकाएं

तेषां तुलयगुणान्येव विदध्याद्भाजनान्यपि। सौवर्ण्यं राजत शाङ्गं ताम्र वैदूर्यकांस्यजम्।
आयसानि च योज्यानि शलाकाश्च यथाक्रमम्॥ (सु.उ.त 18/61)

अंजनों को सुरक्षित रखने के लिए इनके समान गुण वाले पात्रों का प्रयोग करना चाहिए। मधुरांजन को स्वर्ण पात्र में, अम्लांजन को रजतपात्र, लवणाञ्जन को मेषशृंग के बने पात्र में, कषाय अंजन ताम्र या लोहे के पात्र में, कटु अंजन को वैदूर्य के पात्र में, तिक्तांजन कांस्य पात्र में और शीतांजन को नलादि से बने पात्र में मुँह बन्द कर रखना चाहिए।

अंजन विधि

वामेनाक्षि विनिर्भुज्य हस्तेन सुसमाहितः। शलाकया दक्षिणोन क्षिपेत् कानीनमञ्जनम्॥
अपाङ्गग्रं वा यथायोग्यं कुर्याच्चापि गतागतम्। वर्त्मोपलेपि वा यत्तदङ्गुल्यैव प्रयोजयेत्॥

(सु.उ.त 18/64-65)

बायें हाथ से आंख को खोलकर शलाका पर अंजन लगाकर दक्षिण हस्त से शलाका द्वारा कनीनक से अपाङ्ग की ओर अथवा अपाङ्ग से कनीनक की ओर अंजन लगाना चाहिए अथवा जिस प्रकार उचित लगे वैसे अंजन लगाएं। शलाका अंजन से लिप्त होनी चाहिए। वर्त्म पर अंजन लगाना हो तो अंगुली द्वारा लगाना चाहिए।

पश्चात् कर्म

तत्रोऽञ्जनानुगमनायानुन्मीलयन् शनैरन्तश्चक्षुः संचारयेत्। (अ.सं.सू. 32/15)

अंजन लगाने के बाद धीरे-धीरे नेत्र को खोले बिना भीतर घुमाए।

प्रत्यंजन

प्रसादन एवं च चूर्णस्तीक्ष्णाञ्जनातिसंतप्ते। चक्षुषिप्रयुज्यमानः प्रत्यजनं संज्ञा लभते॥

(अ.सं.सू. 32/15)

अंजन जब चूर्ण रूप में बनाया जाता है, प्रसादन के लिए तीक्ष्णाञ्जन से संतप्त नेत्र में प्रयुक्त किया जाता है, उसे प्रत्यंजन कहते हैं।

Scanned with CamScanner

शिरोवस्ति

मूर्द्ध तैलं पुनश्चतुर्धा भिद्यते। अभ्यंगः परिषेकं पिचुर्वस्तिरिति। यथोत्तर ते वलिनः...॥

(अ.सं.सू 31/16)

मूर्द्ध तैल के चार भेद है यथा: अभ्यंग, परिषेक, पिचु, शिरोवस्ति तथा यह उत्तरोत्तर बलवान है अर्थात् अभ्यंग से परिषेक व परिषेक से पिचु तथा पिचु से शिरोवस्ति अधिक गुणदायक है।

गुण

रोगान् शिरसि सम्भूतान् हत्वाऽतिप्रबलान् गुणन्। करोति शिरसो वस्तिरुक्ता ये मूर्द्धतैलिकाः॥

(सु.उ.त 18/49)

शिर में उत्पन्न बलवान रोगों को नष्ट करके, सिर में तेल लगाने से जो गुण होते है, उन गुणों को शिरोवस्ति करती है।

विधि तथा धारणकाल

शुद्धदेहस्य सायाह्ने यथाव्याध्यशितस्य तु। ऋज्वासीनस्य बध्नीयाद्वस्तिकोशं ततो दृढम्॥
यथाव्याधिशृतस्नेहपूर्णं संयम्य धारयेत्। तर्पणोक्तं दशगुणं यथादोषं विधानवित्॥

(सु.उ.त 18/50-52)

शरीर की शुद्धि करके सायंकाल यथारोगानुसार भोजन कराके जानु तक ऊंचे आसन में सीधा बिठा दें। फिर रोगी के सिर पर गाय अथवा भैंस के चमड़े से बना हुआ कोष दृढ़तापूर्वक बांध कर दोषानुसार औषधियों के क्वाथ से सिद्ध स्नेह से उसे पूर्ण कर दें। उड़द की पिट्ठी से छिद्र को बन्द कर स्नेह को धारण करना चाहिए। शिरोवस्ति को धारण करने की अवधी तर्पण से दस गुना है अर्थात् कफज रोगों में 6000 मात्रा उच्चारण तक, पैत्तिक रोगों में 8000 मात्रोच्चारण तक तथा वातिक विकारों में 10,000 मात्रोच्चारण तक धारण करें।

वस्ति कोष की लंबाई

द्वावशाङ्गुलविस्तीर्णं चर्मपटटं शिरासमम्। (अ.हृ.सू 22/28)

सिर के बराबर बारह अंगुल चौड़ा गाय या भैंस के चमड़े का वस्तिकोष निर्मित करें।

पश्चात् कर्म

स्कन्धादि मर्दयेत् मुक्तस्नेहस्य परमं सप्ताहं तस्य सेवनम्॥ (अं.हृ.सू 22/32)

शिरोवस्ति धारण करने के पश्चात् स्कन्ध, ग्रीवा आदि का मर्दन करें। स्नेह वस्ति का सात दिन तक प्रयोग करना चाहिए।

शिरोवस्ति सेवन काल

एवं त्रीणि पंच सप्त वा दिनादि योजयेदिति। (अ.सं.सू 31/16)

शिरोवस्ति तीन, पांच अथवा सात दिन तक करें।

विडालक

विडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जितः। तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत्।

(शा.उ.ख 13/30)

पक्ष्म को छोड़कर नेत्र के बर्हिभाग में वर्त्मों पर जो लेप किया जाता है, उसे विडालक कहते हैं तथा इसकी मात्रा मुखलेप के समान होती है।

तस्य मात्र परिज्ञेया मुखलेपविधावत्

विडालक में प्रयुक्त लेप की मात्रा मुखलेप के समान होती हैं। (शा.उ.ख 13/30)

पिण्डी

पिण्डी क्वलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः। (शा.उ.ख 13/21)

पिण्डी को कवलिका भी कहते हैं। औषध चूर्ण को वस्त्र में बांधकर नेत्र पर प्रयुक्त किया जाता है। इसका प्रयोग व्रणों पर भी किया जाता है। सब प्रकार के अभिष्यन्दों में पिंडी का प्रयोग करें।

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धव । धार्यांश्च क्षुषि संयोगात् शोथ कण्डूव्यथापहा॥

(शा.उ.ख 13/29)

शोथ व कण्डु रोग को हरने के लिए शुंठी व निम्ब पत्र में पानी व सैंधव मिलाकर पिण्डी के रुप में लगाए।

✕ ✕ ✕

Scanned with CamScanner

अध्याय-12

शालाक्य चिकित्सा में पंचकर्म

चरक व सुश्रुत संहिताओं में पंचकर्म का महत्व तथा विशद वर्णन उपलब्ध है। इसे चिकित्सार्ध तुल्य माना गया है।

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिताः लंघनपाचनैः।
ये जिताः संशोधनैः न तेषां पुनरुद्भवः॥ (च. सू. 28/47)

अर्थात् लंघन, पाचन, औषधयोगात् शमन आदि से जीते गये दोष पुनः प्रकुपित हो सकते हैं परन्तु संशोधन द्वारा शरीर से निष्क्रमित दोष पुनः प्रकुपित नहीं हो सकते हैं।

वृद्ध दोषों के लिये चरक ने कहा है-

तानि उपस्थित दोषाणां स्नेहस्वेदोपपादनैः।
पंचकर्माणि कुर्वीत मात्र कालौविचारयन्॥ (च. सू. 2/15)

लंघन, लंघनपाचन व दोषावसेचन प्रकार के चिकित्सा उपक्रमों में सर्वाधिक दोषहर "चतुष्प्रकारा संशुद्धि" अर्थात् वमन, विरेचन, आस्थापन वस्ति व नस्य है।

रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्यं अरोगता॥ (अ. हृ. सू. 1/20)

अर्थात् दोष वैषम्य ही रोग है। दोषों की समता अरोगता है। सिद्धान्ततः विषम दोषों को वमन, विरेचन, वस्ति के द्वारा जीता जा सकता है।

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्।
बस्ति विरेको वमनं तैलं घृतं मधु। (अ. हृ. सू. 1/25)

शरीर में वातादि दोषों के शमन के लिए प्रधान शोधन-क्रम से- वात के लिये बस्ति; पित्त के लिए विरेचन और कफ के लिए वमन है। वात के लिये प्रधान शमन औषध तैल, पित्त के लिए घृत तथा कफ के लिये मधु है।

यद्यपि वमनादि का प्रत्यक्ष प्रभाव शिर, अक्षि, नासिका, कर्ण, कंठ आदि पर उतना नहीं होता जितना कोष्ठ पर होता है परन्तु त्रिदोष की उत्पत्ति व संचयप्रकोपादि कोष्ठ से ही उत्पन्न हो शालाक्याधिकार की व्याधियों को जन्म देती है। पंचकर्म द्वारा उत्पत्ति स्थान पर ही जीते गये दोष शालाक्य व्याधियों की भी शांति अवश्य करेंगे। ऐसा रोगियों में प्रत्यक्ष भी देखा जाता है।

अनेक स्थान पर वृहदत्रयी द्वारा शालाक्य रोगों में पंचकर्म का प्रावधान किया गया है। प्रतिश्याय में उपनाह स्वेद व संकर स्वेद। श्रंगाटक, नासा, अक्षि रोगों में मधुयष्टी क्वाथ नस्य व तैल नस्य, वातज पीनस में तैलाभ्यंग व एरंडमूल सिद्ध तैल वस्ति, पित्तज पीनस में श्रंगवेरादि घृतपान व जात्यादि तैल व घृत नस्य, नासागत रक्तपित्त में कषाय, मधुर क्षीर, घृत नस्य, कफज पीनस में नाड़ी स्वेद, वातज शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन व रास्ना तैल नस्य, पित्तज शिरोरोग में मधुरतिक्त घृत नस्य व शिरोऽभ्यंग, कफज शिरोरोग में स्वेदन, तीक्ष्ण, नस्य व तीक्ष्ण वस्ति दी जा सकती है। शंखक रोग में घृत नस्य, अर्धावभेदक में अश्वगंधा घृत स्नेहपान, नाड़ी स्वेदन, दशमूल वस्ति व शिरोधारा दी जाती है। सूर्यावर्त में जीवनीय नस्य, मधुर विरेचन व शिरोऽभ्यंग, अनंतवात में बलालाक्षादि तैलाभ्यंग, मृदु स्वेदन व घृत नस्य दें। सभी प्रकार के पैत्तिक रोगों व पाक में यथावश्यक यथाविधि रक्तमोक्षण किया जाता है। कर्णशूल में बिल्व तैल से कर्णपूरण व नस्य, खालित्य पालित्य में लम्बी अवधि तक अणु तैल नस्य दें। उभय स्नेहन को वातिक अभिष्यंद, तिमिर आदि में, पुराण सर्पि पान को वातिक अधिमंथ व अभिष्यंद में लाभ कर कहा गया है। (सुश्रुत उत्तर 11/5)

सुश्रुत द्वारा अक्षिपाक, काच, तिमिर व अभिष्यंद में विरेचन को महत्वपूर्ण माना गया है। इसके लिये वातिक बाहुल्य रोग में एरंड तैल दूध के साथ, पित्तप्रधान में त्रिफला घृत व कफज रोगों में त्रिवृत यो का विरेचनार्थ उपयोग निर्दिष्ट है।

शिर स्थित प्रकुपित वात शमनार्थ वस्ति का महत्व है।

साम्यग्दत्तौ द्वितीयः तु मूर्धस्थं अनिलं जयेत्। (सु चि 37/72)

दृष्टिगत रोगों में वमन का निषेध है। धूमपान से कंठ, मुख, नासिका, शिर व अक्षि के शूल में लाभ होता है। परन्तु तिमिर में धूमपान निषिद्ध है। धातुनाशकर वातिक रोगों में मूर्धतैल यथा शिरोधारा, अभ्यंग, पिचु, नस्य आदि लाभप्रद हैं।

अध्याय-13

शालाक्य में उपक्रम

अग्निकर्म

शिरोरोग और अधिमंथ में भ्रू, ललाट और शंख प्रदेश में अग्नि कर्म करें।
वर्त्मगत रोग में दृष्टि को ढककर वर्त्म के रोम पर अग्नि कर्म करें।

सिराव्यध

सन्दर्भ-

सुश्रुत शारीरस्थान - 8

1. गलगण्ड में उरुमूल में स्थित सिरा का वेधन करना चाहिए।
2. जिह्वा और दंतरोगों में जिह्वा के नीचे रहने वाली सिरा में वेध करें।
3. तालुरोगों में तालु में सिरावेध करें।
4. कर्णशूल में कानों के ऊपर चारों ओर शिरावेध करें।
5. गंधाग्रहण, नासारोगों में नासाग्र भाग में शिरावेध करना चाहिए।
6. तिमिर, अक्षिपाक, अधिमंथ, शिरोरोग आदि नेत्र रोगों में नासा, ललाट, अपांग में सिरावेध करें।

शालाक्य में प्रयुक्त होने वाले बंध

संदर्भ- सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय -18

'व्रणालेपनबन्धविधि अध्याय'

संख्या-१४ (सुश्रुत)

वाग्भट ने 15 बंध माने है। (उत्संग अधिक माना है)

1. स्वस्तिक बंध - भ्रू, कर्णतल, सँधि
2. प्रतोली बंध - ग्रीवा
3. खटवा - हनु, शंख, गण्ड

4. चौन - नेत्र, अपांग
5. वितान - शिर
6. गोफणा - नासा, ओष्ठ, चिबुक (ठोडी)
7. पंचांगी - उर्ध्वजत्रुगत

शालाक्य में प्रयुक्त होने वाले शस्त्र

1. बडिश शस्त्र दंतशंकुआहरण For extraction of tooth
2. एषणी- अनुलोमन कर्म
3. सूची - सीवन कर्म

संदर्भ- सुश्रुत सूत्र स्थान अष्टम अध्याय शस्त्रावचारणीय

शालाक्य में प्रयुक्त होने वाले यंत्र

हस्त प्रधानतम यंत्र है।

संदर्भ- सुश्रुत सूत्र स्थान सप्तम अध्याय यन्त्रविधि

क्र. सं.	यन्त्र नाम	संख्या	प्रयोग
1.	ताल यंत्र	2	कर्ण, नासा और नाडी के शल्य
			निकालने के लिए।
2.	नाडी यंत्र-Ear and Nose speculum	20	स्रोतोगत शल्य निकालने के लिए, दर्शनार्थ, चूषणार्थ
3.	शलाका यंत्र	28	
(i)	गण्डूपद	2	एषण
(ii)	सर्पफण	2	व्यूहन
(iii)	शरपुंखा	2	चालन
(iv)	बडिश	2	आहरण
(v)	मसूर दल मात्र मुखी	2	स्रोतोगतशल्य निर्हरण
(vi)	कार्पासकृतोष्णीय	6	प्रमार्जन
(vii)	दर्व्याकृतिनी खल्लमुखानि	3	क्षारौषधिप्राणिधानार्थ
(viii)	जाम्बव वदनानि	3	अग्निकर्म
(ix)	अंकुश वदनानि	3	अग्निकर्म
(x)	कोलास्थिदलमात्रमुखी	1	नासा अर्बुद हरणार्थ
(xi)	कलायपरिमण्डल उभयतो मुकुलाग्रम	1	अंजनार्थ

✕ ✕ ✕

Scanned with CamScanner

अध्याय - 14

उपसर्गज नेत्र रोग

सुश्रुत ने औपसर्गिक रोगों का वर्णन करते हुये अभिष्यन्द का उल्लेख किया है यथा-

प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शनात् निःश्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनात् चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।।
कुष्ठं ज्वरः च शोफः च नेत्रभिष्यंद एव च।
औपसर्गिक रोगाः च संक्रामन्ति नरात् नरम्।। (सु. नि. 5/33, 34)

निकट सम्पर्क में रहना, शरीर को छूना, श्वास, साथ भोजन खाना, साथ में सोना व बैठना, वस्त्र, माला, लेपादि का साझा प्रयोग आदि करने से चर्म रोग, ज्वर, शोफ व नेत्र अभिष्यन्द व अन्य संक्रामक रोग एक मनुष्य से दूसरे में फैलते हैं।

नेत्र के भाग विशेषानुसार Conjunctivitis, keratitis, Iritis, आदि संक्रामक रोग हो सकते हैं।

नेत्र संक्रमण (Infectious & contagious eye diseases) बहुतायत में पाये जाते हैं।

मानव शरीर में निम्न प्रकार के संक्रमण पाये जाते हैं तथा नेत्रों को भी प्रभावित करते हैं-

(1) Bacterial जीवाणु जन्य (2) Viral विषाणु जन्य
(3) Fungal कवक जन्य (4) Protozoal
(5) Helminthic कृमिज

प्रमुख नेत्र संक्रमण निम्न हैं-

(1) Conjunctivitis यह श्वेत मंडल की झिल्ली का संक्रमण है जो कि Adenovirus द्वारा होता है। इसे Pink eye भी कहते हैं व बच्चों में प्राय: पाया जाता है। स्पर्श मात्र से यह दूसरे बच्चों में भी फैल जाता है। कभी-कभी Staphylococcus aureus जीवाणु द्वारा भी Conjunctivitis हो जाता है जो कि अधिक समय तक रहता है।

(2) Ocular Histoplasmosis syndrome एक कवक जन्य नेत्र संक्रमण (Fungal eye infection) है जो कि फुफ्फुस को प्रभावित करने वाली कवक से होता है। विकासित देशों में यह अधिक होता है व प्राय: लम्बे समय तक कोई लक्षण नहीं होता है। दशकों पश्चात् यह Fungus रेटिना में जाकर Macula को प्रभावित करती है

व Macular degeneration व Loss of central vision करती है। [illegible] 20 से 40 वर्ष के अमरीकी नागरिकों में यह रोग अधिक पाया जाता है।

(3) Chlamydia व Gonorrhoea प्राय: यौन रोग (STD) हैं तथा कभी-कभी Conjunctivitis उत्पन्न कर सकते हैं। नवजात शिशुओं में संक्रमित माता के प्रजनन अंगों के स्राव से यह रोग हो सकता है। संक्रमित व्यक्ति द्वारा यौनांगों का स्पर्श आँखों को छूने से Conjunctivitis उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी यह नेत्र के भीतर जाकर आंतरिक उपांगों को भी संक्रमित कर सकते हैं।

(4) Herpes Simplex एक विषाणुज त्वक रोग है परन्तु अक्षि के सम्पर्क में आने पर यह Corneal ulcers आदि गंभीर नेत्र संक्रमण कर सकता है। ऐसे 15 प्रतिशत रोगी [illegible] अंधत्व का शिकार हो सकते हैं।

(5) Bacterial Keratitis संक्रमण कृष्ण मंडल को प्रभावित करता है। यह कम प्रतिरोधक क्षमता वाले व Contact lenses प्रयोग करने वाले व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है।

इनके अतिरिक्त क्षय रोग, कुष्ठ, उपदंश Hepatitis B, Epstein Barr virus, Measles, Mumps, rubella द्वारा Conjunctivitis हो सकता है।

Eye Infections

अक्षि के भीतर भाग जैसे रेटिना आदि को प्रभावित करने वाले संक्रमण उपदंश, क्षय Herpes toxoplasmosis, sarcoidosis, gonorrhoea, HIV, cytomegalovirus आदि हैं। Tape worms द्वारा Conjunctivitis हो सकता है व Candida फफूंद द्वारा Conjunctivitis, Retinitis आदि को आशंका रहती है।

GL KUMAWAT

Scanned with CamScanner

नेत्र चिकित्सा एवं परीक्षा में उपयोगी यंत्र
(Eye Instruments)

Sterilization

Sterlization is the term referring to any process of removing or killing microbes from a desired surface or object.

Methods (1) Heat is the most widely method & the sun is the best source of universal sterilization. Steam heat as in autoclave is a popular method where steam at 121-134°C is applied at high pressure for a short duration as 3 to 15 minutes. Liquids require longer time. Autoclave can destroy fungi, bacteria, viruses & spores. 'Bioindicators' are used to test the efficacy of autoclaving. Geobacillus steurothermophilus spores are heat resistant & placed in autoclave objects, cultured later on & colour change noted for successful or failed sterilization. Flamming is a type of dry heat sterilization, used for small metal & glass objects.

(2) Chemical Sterilization is best for heat sensitive materials as biological specimen, electronics plastics etc. A high concentration as 10% of very reactive gases (Alkylating Agents), H_2O_2, ozone is given to the objects to be sterilized. Bleach as chlorine is good agent for household sterilization.

(3) Radiation Sterilization can be Ionising & Non- Ionising. UV rays are non Ionising radiation, useful for transparent objects, cabinets, etc but can damage polyethenes. Gamma rays are ionising Radiation which has deep penetration are best for disposable items. X rays are also a type of Ionising radiation.

1. **Wire speculum**

It is made of wire and has two limbs attached at one end.

Use: It is used to keep eye lids separate during any operation on eye-ball.

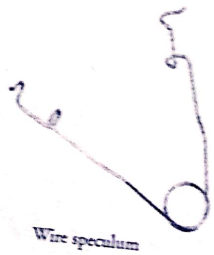

Wire speculum

2. **Corneo scleral forceps**

They have 1 × 2 tiny fine teeth at the tip.

Use: They are used to hold corneal or scleral flap for suturing during operation.

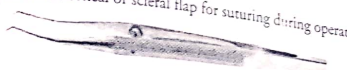

3. **Iris forceps**

These are tiny forceps with fine limbs having 1 × 2 teeth on the inner side of the limbs.

Use : For holding iris for the purpose of iridectomy.

4. **Epilation forceps**

These are small stout forceps with blunt and flat ends.

Use : These are used to epilate the cilia in trichiasis.

Epilation forceps

5. **Lens expressor**

It is a flat metal handle with rounded curve at one end.

Use : To apply pressure on limbus at 60' Clock position during the extraction of lens.

6. **Desmarre's retractor**

It is saddle shaped appliance folded on itself, at the end of a metal handle.

Use : It is used to examine the eye-ball in cases of children and marked blepharospasm.

भाग- 2

शिर, कर्ण, नासिका

एवं

कण्ठ रोग

GL KUMAWAT 9660968952

"खण्ड–ख"

Scanned with CamScanner